धनुहीं॥' (अ० १९१। ४) *'आयसु माँगि चरन सिरु नाई। चले हरषि सुमिरत रघुराई॥'* (कि० २३। ८) पुन: दिनकरकुलभूषणके स्मरणका तीसरा भाव यह है कि रघुवंश-विभूषण सबके हृदयके प्रेरक हैं, यथा—*'उर प्रेरक रघुबंस बभूषन।'* (७। ११३। १) अत: स्मरणसे वे यथार्थ मन्त्रकी प्रेरणा हृदयमें कर देंगे।

मयूख—१ *'करि बिचार तिन्ह मंत्र दृढ़ावा'* के अभ्यन्तर यह ध्वनि है कि कोई किसीको युद्धसे न फेरे अर्थात् यह विचार निश्चय हुआ कि कोई युद्धसे न फिरें। २—*'चारि अनी कपि कटकु बनावा'* के अन्तर्गत यह भाव है कि कपिकटकका चार व्यूह रचकर चारों दिशाओंमें युद्ध करनेकी आज्ञा दी। पश्चिम दिशामें चक्रव्यूह, दक्षिणमें नरव्यूह, पूर्वमें संडव्यूह और उत्तरमें महाप्रबल गरुड़व्यूह रचे। (प्रभुने बताया है कि लङ्कामें चार बाँके द्वार हैं जिनपर प्रबल रक्षक योद्धा नियुक्त हैं अत: इन्होंने उनसे मोर्चा लेनेके लिये चार दल बनाये।)

नोट—२ (क) *'जथा जोग',* यथा—*'जो जेहि लायक सो तेहि राखा।'* (अ० १८६) विशेष दोहा ३७ में देखिये। (ख) *'जूथप सकल बोलि तब लीन्हे'* इति। इस प्रकार जनाया कि सेनाके चार टुकड़े करके चार दिशाओंमें बाँट दिये, चारों दलोंके सेनापति चुनकर उनके अधीन सेना कर दी। तब १८ पद्म वा अधिक यूथप जो साथ हैं उनको बुलाया। इनकी गणना चार अनीमें नहीं की गयी है। इसीसे इनको पृथक् कहा।

प्रभु प्रताप कहि सब समुझाए। सुनि कपि सिंहनाद करि धाए॥ ६॥
हरषित रामचरन सिर नावहिं। गहि गिरि-सिखर बीर सब धावहिं*॥ ७॥

अर्थ—प्रभुका प्रताप कहकर सबको समझाया। उसे सुनकर वानर सिंहके समान गर्जन करके दौड़े॥ ६॥ वे प्रसन्न होकर श्रीरामजीके चरणोंमें सिर नवाते हैं और सब वीर पर्वत-शिखर लेकर धावा करते हैं॥ ७॥

नोट—१ *'प्रभु प्रताप.........'* इति। 'प्रताप' अर्थात् प्रभु समर्थ हैं, तुम चिन्ता न करना, राक्षसोंको मरा हुआ ही जानो, तुमको यश मिलना है, श्रीरामजी जीते-जिताये हैं। ये वही हैं जिनकी *'भृकुटि बिलास सृष्टि लय होई'* (पु० रा० कु०, रा० प्र०)। पुन: *'प्रभु प्रताप'* यह कि देखो हनुमान्‌जीने इसीके बलसे रावणपालित लङ्का जला डाली और इसी प्रतापके बलसे अङ्गदका पैर कोई न हटा सका, इत्यादि। इसी प्रकारका स्मरण कर तुम भी लड़ो, कुछ भय नहीं है, जय होगी। विशेष *'रामप्रताप सुमिरि मन माहीं।'* (६। १। ६) दोहा ३, तथा *'सुमिरि कोसलाधीस प्रतापा।'* (७५। १५) (ख) *'सिंहनाद करि धाए'* यहाँ कपि सिंह हैं, उनका गर्जन सिंहनाद है; राक्षस मत्त गजेन्द्र हैं, उनके कुम्भोंके विदारणार्थ दौड़े।

नोट—२ *'हरषित रामचरन सिर नावहिं.........'* इति। (क) हर्षित हैं क्योंकि प्रभुका प्रताप सुना है। दूसरे, ये वीर हैं, इन्हें रणोत्साह है। पुन:, कार्यके लिये प्रस्थान करते समय हर्ष कार्य-सिद्धि जनाता है, यह शकुन है—यथा—*'होइहि काज मोहि हरष बिसेषी'*—(सुं०) पुन:, स्वामीको प्रणाम हर्षपूर्वक करना ही चाहिये। यथा—*'रामहिं सुमिरत रन भिरत देत परत गुरु पाय। तुलसी जिनहिं न पुलक तन ते जग जीवन जाय॥'* (दो० ४२), *'गहि गिरि सिखर.........'* क्योंकि यही इनके आयुध हैं।

गर्जहिं तर्जहिं भालु कपीसा। जय रघुबीर कोसलाधीसा॥ ८॥
जानत परम दुर्ग अति लंका। प्रभु प्रताप कपि चले असंका॥ ९॥

अर्थ—सब रीछ और वानर गरजते और तरजते हैं। 'कोसलके राजा रघुवीरजीकी जय हो' इस प्रकार पुकारते हैं॥ ८॥ वे जानते हैं कि लङ्काका दुर्ग अत्यन्त दुर्गम है तो भी वे प्रभुके प्रतापसे निर्भय हो करके चले॥ ९॥

नोट—१ (क) 'दुर्ग' का अर्थ यहाँ 'दुर्गम, कठिन' है। यथा—*'कहि न जाइ अति दुर्ग बिसेषी'* (सुं० ३)। इसी तरह दूसरे दिनके युद्धमें कहा है कि—*'कोपि कपिन्ह दुर्घट गढ़ घेरा।'* (४८। ९) जो यहाँ 'दुर्गम' है, वही वहाँ 'दुर्घट'। मा० म० कार कहते हैं कि 'दुर्ग छ: प्रकारके हैं—'धनु, भू, जल, तरु, मनुज और

* यह अर्धाली का० में नहीं है। रा० गु० द्वि० इत्यादिमें है।

गिरि'—दुर्ग। गिरिदुर्ग सबसे श्रेष्ठ दुर्गराज है ऐसे दुर्गपर शत्रु बाधा नहीं कर सकता। लंका परम दुर्ग है अर्थात् गिरि-दुर्ग है।' (ख) *'प्रभु प्रताप कपि चले असंका'* इति। प्रतापके स्मरणसे निर्भयता आ जाती है। हनुमान्‌जी वाटिका उजाड़ने चले तब यह कहकर चले थे कि *'प्रभु प्रताप ते गरुड़हि खाइ परम लघु ब्याल'* (सुं० १६)। इसीसे रावणका प्रताप देख वे न डरे, यथा—*'देखि प्रताप न कपि मन संका। जिमि अहिगन महँ गरुड़ असंका॥'* (५। २०। ८) इसी प्रकार अङ्गद यह प्रताप कहकर चले थे कि *'स्वयं सिद्ध सब काजु नाथ मोहि आदर दिएउ',* इसीसे वे भी निःशङ्क थे, यथा—*'प्रभु प्रताप उर सहज असंका'* और *'गयेउ सभा मन नेकु न मुरा।'* तथा ये वानर भी प्रताप समझकर निःशंक हैं।

घटाटोप करि चहुँ दिसि घेरी। मुखहि निसान बजावहिं भेरी॥ १०॥

शब्दार्थ—**घटाटोप**=बादलोंकी घटा जो चारों ओरसे घेरे हो। बादलोंकी भाँति चारों ओरसे घेर लेनेवाला दल। '**निसान**'—यह नाम पड़ा क्योंकि इससे 'निःश्वन्' यह शब्द निकलता है=नगाडा=धौंसा। **भेरी**=बड़ा ढोल; नगाड़ा, ढक्का।

अर्थ—चारों ओरसे घिरे हुए मेघोंकी तरह चारों दिशाओंसे लंकाको घेरकर मुँहसे डंके और भेरी बजाते (उन बाजोंका-सा शब्द निकालते) हैं॥ १०॥

नोट—१ *'घटाटोप करि।'* अर्थात् चारों तरफसे घेर लिया, आच्छादित कर लिया कि कोई बचकर निकल न सके। पुनः ऐसा घेरा कि पवनका भी वहाँ प्रवेश न हो सके, यथा—'**सर्वतः संवृता लंका दुष्प्रवेशापि वायुना।**' (वाल्मी० ४१। ५३) रावणदलमें नगाड़े, भेरी, नफीरी इत्यादि जुझाऊ बाजे बज रहे हैं, यथा—*'बाजहिं भेरी नफीरि अपारा।'* (४०। ३) इनके पास बाजे नहीं हैं तो ये मुँहसे ही वैसा शब्द करते हैं। निशान और भेरीका गुण मुखमें स्थापन करना 'द्वितीय निदर्शना' अलंकार है।

दो०—जयति राम* जय लछिमन जय कपीस सुग्रीव।
गर्जहिं सिंहनाद† कपि भालु महाबल सीव॥ ३८॥

अर्थ—महाबलकी सीमा (हद) वे वानर-भालु सिंहके समान उच्चस्वरसे, 'रामचन्द्रजीकी जय हो! लक्ष्मणजीकी जय हो! और वानरराज सुग्रीवकी जय हो!' ऐसा गर्जन करते हैं॥ ३८॥

नोट—इसी प्रकारकी घोषणा हनुमान्‌जीने अपने प्रथम आगमनके समय की थी। सुं० १८ (६) देखिये। वही वानरयूथ कर रहे हैं। यथा—'**जयत्यतिबलो रामो लक्ष्मणश्च महाबलः। राजा जयति सुग्रीवो राघवेणाभिपालितः॥ इत्येवं घोषयन्तश्च गर्जन्तश्च प्लवंगमाः।**' (वाल्मी० यु० ४२। २०-२१)

बं० पा० का मत है कि—'तीन जयसे तीनों प्रबल शत्रुओं—रावण, कुम्भकर्ण और मेघनादका नाश गाया है।' पर, वस्तुतः लड़ाईमें दोनों ओर जय-जयकार होती है। श्रीरामदलमें इस ढङ्गसे होती है, यह कविने जनाया है। सुग्रीव वानरराज हैं अतः उन अपने स्वामीकी भी जय बोलते हैं और श्रीरामलक्ष्मणजी अपने स्वामीके भी स्वामी हैं और इन्हींके लिये लङ्कामें लड़ने आये हैं, अतः इनकी जय पुकारते हैं। २—यहाँ सबका युद्धमें उत्साह सूचित किया। (पु० रा० कु०) उत्साह स्थायीभाव है, गर्जन आदि अनुभाव हैं। ☞मिलान कीजिये—*'तुलसी बिलोकि कपिभालु किलकत ललकत लखि ज्यों कँगाल पातरी सुनाज की। रामरुख निरखि हरषे हिय हनुमान मानो खेलवार खोली सीसताज बाज की॥'* (क० ६। ३०)

लंका भएउ कोलाहल भारी। सुना दसानन अति अहँकारी॥ १॥
देखहु बनरन्ह केरि ढिठाई। बिहँसि निसाचर सेन बोलाई॥ २॥

अर्थ—लङ्कामें भारी कोलाहल हो गया, अत्यन्त अहंकारी रावण उसे सुनकर बोला॥ १॥ वानरोंकी ढीठता, (धृष्टता) तो देखो! फिर खूब हँसकर रावणने राक्षसी सेना बुलायी॥ २॥

---

* 'जयति रामु भ्रातासहित'—(का०)। † 'गर्जहिं केहरिनाद'—(का०)

नोट—१ *'लंका भएउ कोलाहल भारी'* इति। (क)—*'भारी'* से जनाया कि पूर्व एक वानरके आने और राजकुमारके मारे जानेपर कोलाहल हुआ था, यथा—*'भएउ कोलाहल नगर मँझारी। आवा कपि लंका जेहि जारी॥'* (१८। ८) अब भारी है। पुन: (ख)—वानरोंके भारी गर्जनसे जो शब्द हुआ वह भी लङ्कामें गूँज रहा है। इस प्रकार दो तरहका कोलाहल हुआ। एक तो लङ्का-निवासियोंमें भयसे जो खलबली पड़ी कि पूर्व एक-एक वानर आया था अब तो इतने आये हैं तब कैसे प्राण बचेंगे, वह और दूसरा वानरदलके गर्जनका। यथा—**'हाहाकारमकुर्वत राक्षसा भयमागता:।'** (वाल्मी० ४१। ९८), **'तस्मिन्महाभीषणके प्रवृत्ते कोलाहले राक्षसराजयोधा:।'** २— 'अति अहंकारी' का स्वरूप आगे दिखाते हैं। ३—पु० रा० कु०—*'बिहँसि'* निरादरसूचक है। हँसा कि नर-वानर हमारे भक्ष्य, सो हमसे युद्ध करने आये हैं! अथवा हँसकर रणके लिये अपना उत्साह दिखाया।*

आए कीस काल के प्रेरे। छुधावंत सब निसिचर† मेरे॥ ३॥
अस कहि अट्टहास सठ कीन्हा। गृह बैठे अहार बिधि दीन्हा॥ ४॥

शब्दार्थ—**अट्टहास**=खिलखिलाकर हँसनेकी क्रिया, कहकहा।

अर्थ—वानर कालकी प्रेरणासे स्वयं आये हैं और मेरे सब निशिचर (भी) भूखे हैं॥ ३॥ ऐसा कहकर वह मूर्ख खिलखिलाकर हँसा कि विधाताने घर बैठे ही भोजन दे दिया‡ ॥ ४॥

नोट—१ (क) यह सब 'अति अहंकारी' का स्वरूप है। (ख) *'काल के प्रेरे'* इति। जहाँ जिसकी मृत्यु होनेको होती है वहीं काल उसे ले जाता है, यथा—*'कठिन काल प्रेरित चलि आई।'* (५। ५३। ६)

नोट—२ (क) *'अट्टहास'* भी शत्रुदलके निरादर और अपने दलकी उत्साह-वृद्धि हेतु है। (ख) ☞*'सठ'।* सब वक्ता रावणके इस अट्टहासपर उसको 'शठ' कहते हैं, क्योंकि (१) बीच सभामें अभी-अभी देख चुका है कि वानर अब हमारे आहार नहीं वरन् काल हैं तब भी विपरीत बुद्धि नहीं छोड़ता।' *'जिमि अरुनोपल निकर निहारी। धावहिं सठ खग मांस अहारी॥'* (३८। ९) देखिये। (२) अभिमानी और मन्दबुद्धि है इसीसे हँसा है यथा—*'श्रवन सुनी सठ ताकर बानी। बिहँसा जगत बिदित अभिमानी॥'* (सुं० ३७। १) *'रे कुभाग्य सठ मंद कुबुद्धे। तैं सुर नर मुनि नाग बिरुद्धे॥'* (९३। ५)

शीला—अट्टहास करनेका भाव कि—(१) ठट्ठा मारकर हँसनेसे सब सुन सकेंगे। (२) इस प्रकार अपना लाभ प्रसन्नता और शूरता प्रकट करता है। (३) श्रीरामजीकी लघुता और निरादरके हेतु एवं राक्षसोंके अभयार्थ हँसा।

(४) भक्तिपक्षमें हँसा कि हमें तो युगके युग पहिले भेज दिया और उद्धार करने अब आये। इत्यादि।

सुभट सकल चारिहु दिसि जाहू। धरि धरि भालु कीस सब खाहू॥ ५॥
उमा रावनहि अस अभिमाना। जिमि टिट्टिभ§ खग सूत उताना॥ ६॥

अर्थ—सब योद्धाओ! चारों दिशाओंमें जाओ और समस्त रीछों और वानरोंको पकड़-पकड़कर खा लो॥ ५॥ (शिवजी कहते हैं) हे उमा! रावणको ऐसा अभिमान है जैसे टिट्टिभ पक्षीको, जो पैर ऊपरकी ओर करके सोता है॥ ६॥

---

* पं०—परमार्थपक्षमें 'बिहँसना' यह है कि मुक्ति निश्चय हुई।

† रजनीचर—(का०)

‡ पं०—१ परमार्थपक्षमें अर्थ यों होगा कि—कालरूप भगवान् रामचन्द्रकी प्रेरणासे वानर आये हैं जो मेरे रजनीचरोंके भूखे हैं अर्थात् ये राक्षसोंको मारेंगे। 'गृह बैठे अहार' मिला; अर्थात् लोग मुक्तिके लिये अनेक यत्न करते हैं तब मुक्ति मिलती है और हमें घर बैठे 'अहार' मिला जिसमें कभी हार न हो, जिस सुखसे कभी पतन न हो वह मोक्षरूपी अहार मिला। इस आनन्दके कारण सठ अर्थात् मध्यस्थ, यथार्थ वक्ताने अट्टहास किया—'शठो मध्यस्थपुरुषो धूर्त्तधत्तूरयोरपि' (मेदनीकोश)। २—वीर यहाँ रावणके हृदयमें अनुचित उत्कण्ठाका होना भावाभास है और उपर्युक्त कथनमें 'समाधि अलंकार' है।

§ टिटिभ—(भा० दा०)। अन्य पोथियोंमें 'टिट्टिभ' है।

वि० त्रि०—रावणने सुना कि चारों फाटकोंपर धावा हो गया। लङ्का चारों ओरसे घिर गयी। अब इसका सम्बन्ध बाहरसे एकदम टूट गया। कोई रसद या कोई सहायता बाहरसे नहीं मिल सकती, और इधर लङ्कामें बड़ा भारी कोलाहल मचा हुआ है, सब लोग त्रस्त हैं। जो लोग कहते थे कि *'कहहु कवन भय करिअ बिचारा। नर कपि भालु अहार हमारा॥'* वे लोग फाटक बंद किये, दुर्गके भीतर बैठे हैं। तब रावण उन लोगोंका उत्साह बढ़ाता हुआ सुभटोंको आज्ञा देता है, कहता है कि हमलोगोंका मन्त्र काम कर गया। हमलोग जो चुप बैठे रहे, तो ये बंदर-भालू ढीठ होकर फाटकतक आ गये। अब चुप रहनेका समय गया। अब आनन्दसे चारों फाटकोंपर जा करके उन सबोंको पकड़-पकड़कर खा जाओ। बाहरसे रसदकी क्या आवश्यकता है, ब्रह्मदेवने घर बैठे ही रसदकी व्यवस्था कर दी।

नोट—१ अहङ्कारकी व्याख्या यहाँतक हुई। *'सुना दसानन अति अहंकारी'* उपक्रम और *'उमा रावनहि अस अभिमाना'* उपसंहार है।

नोट—२ *टिट्टिभ*=टिटिहरी। पानीके किनारे रहनेवाली एक छोटी चिड़िया, जिसका सिर लाल, गर्दन सफेद, पर चितकबरे, पीठ खैरे रङ्गकी, दुम मिले-जुले रङ्गोंकी और चोंच काली होती है। इसकी बोली कड़वी होती है और सुननेमें टीं-टींकी ध्वनिके समान जान पड़ती है। इसके सम्बन्धमें ऐसा प्रवाद है कि यह रातको इस भयसे कि कहीं आकाश न टूट पड़े उसे रोकनेके लिये दोनों पैर ऊपर करके चित्त सोती है। (श० सा०)

नोट—३ पु० रा० कु०, पं०—यहाँ राम आकाश हैं, रावण टिट्टिभ है। आकाशको क्या थामेगा? यह अहङ्कारमात्र है। यथा—**'अहंकारस्तु सर्वेषां क्षुद्राणां तु विशेषतः। उत्तानं टिट्टिभः शेते नभः पतनशङ्कया॥'** अर्थात् अहङ्कार तो सबको होता है। टिट्टिभ आकाश गिर न पड़े इस शङ्कासे पैर ऊपर करके सोता है। इसी प्रकार रावण सोचता है कि रघुनाथजीके अनन्त बलरूपी आकाशको अपनी भुजाओं और सेनासे थाम लूँगा।

चले निसाचर आयसु माँगी। गहि कर भिंडिपाल बर साँगी॥७॥
तोमर मुग्दर परसु* प्रचंडा। सूल कृपान परिघ† गिरिखंडा॥८॥

शब्दार्थ—**भिन्दिपाल**=गोफन, ढेलवास। छोटा डंडा जो फेंककर मारा जाता था। (श० सा०)। नालिकायन्त्र वा बन्दूक अर्थ भी कोशमें मिलता है। (प० प० प्र०)। **साँग**=शक्ति। **तोमर**=भालेकी तरहका एक प्रकारका अस्त्र जिसका व्यवहार प्राचीनकालमें होता था। इसमें लकड़ीके डंडेमें आगेकी ओर लोहेका बड़ा फल लगा रहता था। शर्पला। शापल। **परसु**-एक अस्त्र जिसमें एक डण्डेके सिरेपर एक अर्धचन्द्राकार लोहेका फल लगा होता है। भलुवा। **परिघ**=लोहाङ्गी। वह लाठी जिसके सिरेपर लोहा लगा होता है।

अर्थ—आज्ञा माँगकर और हाथोंमें उत्तम भिन्दिपाल, साङ्गी, तोमर, मुग्दर, तीक्ष्ण फरसा, त्रिशूल, दुधारा खड्ग, परिघ और पर्वतके टुकड़े लेकर निशिचर चले॥ ७-८॥

टिप्पणी—रावण आज्ञा तो दे चुका, फिर *'आयसु माँगी'* क्यों कहा? फिर कहकर उनके हृदयका भय दर्शित किया है, क्योंकि वे हनुमान्, अङ्गद आदिका बल जानते हैं। [अथवा, आज्ञा तो दे ही चुका है। इन्होंने अब आज्ञा माँगी कि कौन किस स्थानपर कहाँ जाय, यह पूछकर चले। (प० प० प्र०)]

जिमि अरुनोपल निकर निहारी। धावहिं सठ खग मांस अहारी॥ ९ ॥
चोचभंग दुख तिन्हहि न सूझा। तिमि धाए मनुजाद अबूझा॥१०॥

शब्दार्थ—**अरुनोपल**=अरुण उपल=लाल पत्थर। अबूझ=अ+बूझ=नासमझ।

अर्थ—जैसे मांस खानेवाले मूर्ख पक्षी लाल पत्थरोंका समूह देखकर उसपर टूटते हैं, चोंचके टूटनेका दुःख उन्हें नहीं सूझता; वैसे ही नासमझ राक्षस दौड़े॥ ९-१०॥

---

* परिध—(का०, पं०)। † परस—(का०)

नोट—१ अरुणोपल-समूह देखकर झपटते हैं, यह कहकर *'मांस अहारी'* कहा। इससे जनाया कि लाल पत्थरोंका ढेर देख वे उसे मांस समझकर उसपर टूट पड़ते हैं। मांस लाल, पत्थर लाल, और यहाँ वानर भी लाल हैं। निशिचर मूर्ख पक्षीके समान हैं, वानरोंको भक्ष्य जान उनसे लड़ने आये।

नोट—२ *'बानर भालु अहार हमारा'* के धोखेमें पड़े हैं। हनुमान्‌जी चौथायी सेना प्रथम ही मार गये हैं, वह दुःख भूल रहे हैं, उन्हें कुछ सूझ नहीं रहा है। अतः शठ कहा (यहाँ तुल्यप्रधान गुणीभूत व्यङ्ग है।—वीर) ☞ *'अबूझा'* पद परशुरामजीके सम्बन्धमें भी प्रयुक्त हुआ है, यथा—*'मुनिहि हरिअरइ सूझ। अयमय खाँड न ऊखमय अजहुँ न बूझ अबूझ॥'* दोनोंके प्रसङ्गका मिलान करें। परशुरामजी ऋषि हैं, ब्राह्मण हैं, ब्राह्मणोंको मीठा प्रिय होता है **'ब्राह्मणो मधुरप्रियः।'** अतः उनके प्रसङ्गमें 'ऊख' का दृष्टान्त दिया और निशाचरोंको मांस प्रिय है अतः यहाँ 'अरुणोपल' का दृष्टान्त दिया।

दो०—नानायुध सर चाप धर जातुधान बलबीर।
कोट कँगूरन्हि चढ़ि गए कोटि कोटि रनधीर॥३९॥

अर्थ—धनुष-बाण और अनेकों अस्त्र-शस्त्र धारण किये हुए करोड़ों (अगणित) बलवान् और रणमें धीर (स्थिर रहनेवाले) वीर निशाचर किलेके कँगूरोंपर चढ़ गये॥ ३९॥

नोट—ऊपर कँगूरोंपर चढ़नेका आशय यह है कि ऊपरसे वानरोंको मार भगानेमें सुविधा होगी। वानर चोट न कर सकेंगे और ऊपरकी मार न सह सकनेसे गढ़पर चढ़ न पायेंगे।

कोट कँगूरन्हि सोहहिं कैसे। मेरु के सृंगन्हि जनु घन बैसे॥१॥
बाजहि ढोल निसान जुझाऊ। सुनि धुनि होइ भटन्हि मन चाऊ॥२॥
बाजहि भेरि नफीरि अपारा। सुनि कादर उर जाहिं दरारा॥३॥

शब्दार्थ—**नफीर**=शहनाई। तुरही। भेरी ३८ (१०) में देखिये।

अर्थ—किलेके कँगूरोंपर वे कैसे शोभित हो रहे हैं मानो सुमेरु पर्वतके शिखरोंपर बादल बैठे हैं॥१॥ ढोल, डंके (वा, नगाड़े) आदि जुझाऊ (लड़ाईके) बाजे बज रहे हैं जिनका शब्द सुनकर योद्धाओंके मनमें उत्साह होता है॥ २॥ अगणित भेरी और नफीरी बाजे बज रहे हैं (जिनका शब्द) सुनकर डरपोक लोगोंकी छाती फट जाती है॥ ३॥

टिप्पणी—१ *'मेरु के सृंगन्हि जनु घन बैसे'* इति। यहाँ सोनेकी लङ्का सुमेरु, कोटके कँगूरे सुमेरुके शिखर, और निशिचर काले मेघ हैं। जैसे सुमेरुके शिखर अगणित वैसे ही ये अगणित हैं।

टिप्पणी—२ *'भटन्हि मन चाऊ।'* उत्साह है कि जीतनेसे ऐश्वर्य-भोग प्राप्त होगा, मरे तो स्वर्ग मिलेगा और पृथ्वीपर कीर्ति स्थिर रहेगी, यथा—**'जिते लक्ष्मीर्मृते स्वर्गो कीर्तिश्च धरणीतले। तस्माद्धैर्यं विधातव्यं हातव्या परवाहिना॥'** यहाँ उक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा है।

टिप्पणी—३ जुझाऊ=लड़ाईके।—*'कहेउ बजाउ जुझाऊ ढोलू।'* (अ० १९२) *'कहेउ बजावहु जुद्ध निसाना।'* (८५। २), *'भेरि नफीरि बाज सहनाई। मारू राग सुभट सुखदाई॥'* (७८। ९) *'अस कहि मरुत बेग रथ साजा। बाजे सकल जुझाऊ बाजा॥'* (७७। ७)

नोट—लड़ाईके बाजे मारू रागसे बजते हैं, ज्यों-ज्यों सुभट सुनते हैं त्यों-त्यों उनका उत्साह बढ़ता है इसीसे कहा कि *'सुनि धुनि होइ भटन्हि मन चाऊ।'* आगे भी कहा है कि *'मारू राग सुभट सुखदाई।'* बाजा वही और शब्द वही पर उसीसे एकका उत्साह और जिगरा बढ़ता है और दूसरेकी भयसे छाती फटती है।

देखिन्ह* जाइ कपिन्ह के ठट्टा। अति बिसाल तनु भालु सुभट्टा॥४॥
धावहिं† गनहिं न अवघट घाटा। पर्बत फोरि करहिं गहि बाटा॥५॥

* देखि न—(का०), देखिन्ह (भा० दा०)। † धावहि गनहिं (भा० दा०)।

शब्दार्थ—**अवघट**=दुर्घट, अटपट, कठिन, विकट। ठट्ट=समूह।

अर्थ—अत्यन्त लम्बे-चौड़े ऊँचे शरीरवाले वानर और रीछ योद्धाओंके समूह उन्होंने जाकर देखे॥ ४॥ सब दौड़ रहे हैं, अवघट या घाट कुछ नहीं गिनते, पर्वतोंको (हाथसे) पकड़कर फोड़कर (काटकर) रास्ता बना लेते हैं॥ ५॥

नोट—१ काशिराजकी पोथीमें *'देखि न जाइ'* पाठ है। *'देखि न जाइ'* से जनाया कि इनके विशाल शरीर और बलको देख निशिचरोंमें भय उत्पन्न हो गया है। वा, जो देखता है वह सहमकर आँख उधरसे हटा लेता है। सभी रुद्रमूर्ति हैं।

नोट—२*'पर्बत फोरि करहिं गहि बाटा'* अर्थात् जिस दिशामें वे चल पड़ते हैं उधर यदि बीच मार्गमें पर्वत भी पड़ता है तो लौटकर दूसरे मार्गसे नहीं जाते वरन् उस पर्वतको ही फोड़कर सीधे चले जाते हैं।— (पं०—कितने ही यूथपति सेनाको ऊपर चढ़ानेके लिये पर्वतोंको फोड़कर चढ़नेका मार्ग बनाते हैं।)

कटकटाहिं कोटिन्ह भट गर्जहिं। दसन ओठ काटहिं अति तर्जहिं॥ ६॥
उत रावन इत राम दोहाई। जयति जयति जय परी लराई॥ ७॥
निसिचर सिखर समूह ढहावहिं। कूदि धरहिं कपि फेरि चलावहिं॥ ८॥

अर्थ—करोड़ों योद्धा कटकटाते (दाँतोंसे कटकट शब्द करते) हैं, गरजते हैं, दाँतोंसे ओठ काटते हैं और अत्यन्त तड़पते (उछलते) हैं॥ ६॥ उधर रावणकी और इधर श्रीरामजीकी दुहाई हो रही है। जय हो, जय हो, जय हो (इस प्रकार दोनों दलोंमें अपने-अपने स्वामीका) जयजयकार होते हुए लड़ाई छिड़ गयी॥ ७॥ राक्षस पर्वतोंके शिखर समूह-के-समूह गिराते हैं, वानर उछलकर उन्हें पकड़ लेते हैं और लौटाकर ऊपर फेंकते हैं॥ ८॥

नोट—१ *'कटकटाहिं·······।'* भाव कि निशिचर कँगूरोंपर हैं, मिलते तो हैं नहीं, इसीसे कटकटाते हैं, दाँत पीसते हैं। क्रोधमें भरे हैं कि पा जायँ तो खा ही लें। (पु० रा० कु०)

नोट—२ *'जयति जयति·······।'* रामदलमें जयजयकार हो ही रहा था (दोहा ३८ में देखिये)। उसे सुनकर अब उधर भी होने लगा। राक्षस अपना-अपना नाम लेकर 'महाराज आपकी जय हो' ऐसा कह रहे हैं, यथा—'**राजा जयति सुग्रीवो इति शब्दो महानभूत्। राजञ्जयजयेत्युक्त्वा स्वस्वनामकथां ततः॥**' (वाल्मी० ४२। ४४)

वि० त्रि०—*'उत रावन·········लराई'* इति। इधर तो '**जयति राम जय लछिमन जय कपीस सुग्रीव**' इस भाँति जयजयकार पहिलेसे ही हो रहा था, पर उसका उत्तर लङ्कासे कुछ नहीं मिलता था। इसलिये युद्ध रुका हुआ था। अब रावणकी आज्ञासे रणधीर लोग कोटके कँगूरोंपर आ गये और रावणका जयजयकार किया, उसके उत्तरमें इधरसे फिर रामजीका जयजयकार हुआ। बस लड़ाई आरम्भ हो गयी। संग्राममें दोनों ओरसे जयजयकार होना भी बड़ी आवश्यक वस्तु है। उसी जयकारके साफल्यके लिये ही तो वीर लोग अपने प्राणोंको निछावर करते हैं।

छंद—धरि कुधर खंड प्रचंड मर्कट भालु गढ़ पर डारहीं।
झपटहिं चरन गहि पटकि महि भजि चलत बहुरि पचारहीं॥
अति तरल तरुन प्रताप तर्पहिं तमकि गढ़ चढ़ि चढ़ि गए।
कपि भालु चढ़ि मंदिरन्ह जहँ तहँ रामजसु गावत भए॥

शब्दार्थ—**कुधर** (कु=पृथ्वी+धर=धारण करनेवाला)=पर्वत। **प्रचंड**=कोपयुक्त—(पु० रा० कु); भयंकर, बलवान्। **तरल**=चटककर (पु० रा० कु०)। **तरुन** (तरुण)=पूर्ण, जैसे दोपहरके सूर्य।

अर्थ—प्रचण्ड वानर-भालु पर्वतोंके टुकड़े ले-लेकर किलेपर डालते हैं। निशिचरोंपर झपटकर उनके पैर पकड़कर पृथ्वीपर पटक देते हैं और फिर जब वे भाग चलते हैं तब उनको ललकारते हैं। अत्यन्त

फुर्तीले पूर्णप्रतापवाले वानरभालु एवं प्रचण्ड रामप्रतापसे वानरभालु बड़ी फुर्तीसे क्रोध करके तड़ककर किलेपर चढ़-चढ़ गये (चढ़ते ही गये) (और) जहाँ-तहाँ घरोंपर चढ़कर वानरभालु रामयश गाने लगे।

बं० पा० १—रावणने सभासदोंसे कहा था कि *'पद गहि धरनि पछारहु कीसा'* पर समस्त निशिचर-योद्धाओंसे भी यह न बन पड़ा और यहाँ एक-एक वानर निशिचरोंका पैर पकड़-पकड़कर पछाड़ रहा है—यह श्रीरामजीका प्रताप है। २—*'रामजस गावत भए।'* समरमें गानेका हेतु उनका हर्ष और उत्साह है। अथवा श्रीरामजीकी जय बोलते हैं, यही यश-गान है।

प० प० प्र०—जहाँ भगवान्‌का यश भक्त गाते हैं वहाँ भगवान् स्वयं उपस्थित रहते हैं। यथा—**'मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद।'** भगवद्यश जहाँ गाया जाय उस समय वह मन्दिर हो जाता है। अतः **'मंदिरन्ह'** शब्द यहाँ प्रयुक्त किया गया और उससे दरसाया गया कि वानरभालु रामभक्त हैं और भगवान् उनके समीप खड़े हैं। भावप्रदर्शनकी कला कितनी अद्भुत है यह देखते ही बनता है।

☞*'राम जसु गावत भए।'*—यथा—*'जय ताड़का सुबाहु मथन मारीच मानहर। मुनि मख रच्छन दच्छ सिला तारन करुनाकर॥ नृप गन बल मद सहित संभु कोदंड बिहंडन। जय कुठारधर दर्प दलन दिनकर कुलमंडन॥·········' जय जयंत जयकर अनंत सज्जन जनरंजन। जय बिराधबध बिदुष बिबुध मुनिगन भयभंजन॥ जय निसिचरी बिरूपकरन रघुबंस बिभूषन। सुभट चतुर्दस सहस दलन त्रिसिरा खर दूषन। जय दंडक बन पावन करन तुलसिदास संसय समन। जगबिदित जगतमनि जयति जय जय जानकिरमन॥ जय मायामृग मथन गीध सबरी उद्धारन। जय कबंधसूदन बिसाल तरु ताल बिदारन॥ दवन बालि बलसालि थपन सुग्रीव संत हित। कपि कराल भट भालु कटक पालन कृपालचित॥ जय सिय बियोग दुख हेतु कृत सेतुबंध बारिधि दमन। दससीस बिभीषन अभयप्रद जय जय जय जानकिरमन॥'* (कवि० ७। ११२—११४)

दो०—एकु एक निसिचर गहि पुनि कपि चले पराइ।
ऊपर आप हेठ भट गिरहिं धरनि पर आइ॥४०॥

शब्दार्थ—हेठ—(प्राकृत अहट्ठ) नीचे।

अर्थ—फिर एक-एक राक्षसको पकड़कर वानर भाग चले। ऊपर आप और नीचे निशिचर भट इस प्रकार पृथ्वीपर आ गिरते हैं॥४०॥

नोट—१ *'एकु एक।'* भाव कि एक वानर एक राक्षसको पकड़ ले चला।

नोट—२ वानरोंकी बुद्धि यहाँ दिखायी। ऐसा उपाय किया कि बिना परिश्रम राक्षसोंका संहार हो। उतने ऊँचेसे पथरीली, कठोर पृथ्वीपर गिरनेसे, और इनके बोझेसे, वे टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं। ये ऊपर रहते हैं इससे इनको चोट नहीं लगती।

नोट—३ **'चले पराइ।'** पकड़कर तुरंत कगारेपर भागकर आते हैं; जहाँसे नीचे कूदना है जिसमें दूसरा उनकी सहायता न कर सके। बं० पा० जी कहते हैं कि निशिचर रामयशगान न सह सके अतः मारने दौड़े, तब वानर भगे, पर भागनेमें भी एक-एक निशिचरको पकड़कर भगे और पंजाबीजीका मत है कि यह समझकर कि हम थोड़े हैं, भीतर ठहर नहीं सकते, इससे भागे। राक्षसोंको पकड़ लाना कहकर कपिदलका 'बल' कहा।

☞वाल्मीकिजीने इतना ही लिखा है कि वानरोंने क्रुद्ध होकर आकाशमें उछलकर प्राकारोंपर स्थित राक्षसोंको पृथ्वीपर गिरा दिया, यथा—**'राक्षसान्पातयामासुः खमाप्लुत्य स्वबाहुभिः।'** (४२। ४६) पर मानसकारने गिराकर मारनेका प्रकार भी दिखाया है।

राम प्रताप प्रबल कपिजूथा। मर्दहिं निसिचर सुभट बरूथा॥१॥
चढ़े दुर्ग पुनि जहँ तहँ बानर। जय रघुबीर प्रताप दिवाकर॥२॥

अर्थ—श्रीरामचन्द्रजीके प्रतापसे कपिदल प्रबल है। वे राक्षसयोद्धाओंके दलका मर्दन करते हैं॥१॥

फिर वानर जहाँ-तहाँ किलेपर चढ़ गये और सूर्यके समान प्रतापवाले रघुवीरकी जय बोलने लगे॥ २॥

नोट—१ *'राम प्रताप'*—१ (२, ६) देखिये। यह श्रीरामजीका प्रताप है कि सर्प गरुड़को खा ले। वैसे ही यहाँ वानर निशाचरोंके काल हो रहे हैं। रामतेजके रामावेशसे उनमें यह बल आ गया। यथा—**'रामतेजः समाविश्य वानरा बलिनोऽभवन्। रामशक्तिविहीनानामेवं शक्तिः कुतो भवेत्॥'** (अ० रा० ५। ८५) *'मर्दहिं'* से जनाया कि ऐसे मसल डालते हैं जैसे लोग मच्छड़को मसल देते हैं।

नोट—*'जय रघुबीर प्रताप दिवाकर'* इति। (क) रामप्रतापको सूर्य कहा, यथा—*'जब ते राम प्रताप खगेसा। उदित भयउ अति प्रबल दिनेसा॥'* (७। ३१। १) सूर्यकी उपमा देकर निशिचरोंको अन्धकार जनाया; यथा—*'राम बान रबि उए जानकी। तम बरूथ कहँ जातुधान की॥'* (५। १६। २) (ख) दुर्गपर वानर श्रीरामजीके प्रतापरूपी सूर्यकी जय मनाते हुए चढ़े। प्रतापरूपी सूर्यके उदय होते ही सूक्ष्म किरणरूपी वानर धूमकी तरह चढ़े और बहुत सूक्ष्म और विरल होते हुए तम-समूह यातुधानोंको नेस्तनाबूद कर रहे हैं। इस जयकारेमें यह भाव ध्वनित है। (गौड़जी)

(ग) ☞ रामनाम, रामचरित, रामरूप, रामबाण और रामप्रताप इन चारोंको सूर्य कहा है, यथा—*'जासु नाम भ्रम तिमिर पतंगा। तेहि किमि कहिय बिमोह प्रसंगा॥'* (१। ११६। ४) (१) *'हरन मोहतम दिनकर कर से।'* (१। ३२)—(२) *'रामसच्चिदानंद दिनेसा। नहिं तहँ मोह निसा लवलेसा॥'* (१। ११६। ५) (३) *'रामबान रबि उए जानकी।'* (५। १६) (४) *'जय रघुबीर प्रताप दिवाकर।'*

(घ) प्रथम बार चढ़े तब *'जहँ तहँ रामजसु गावत भए।'* अब चढ़े तो भी रामप्रतापकी जय बोलते हैं। प्रथम चढ़े थे तब निशिचरोंको पकड़-पकड़कर नीचे गिरे थे। अब फिर नीचेसे ऊपर चढ़े। अतः *'चढ़े दुर्ग पुनि'* कहा।

चले निसाचर निकर पराई। प्रबल पवन जिमि घन समुदाई॥ ३॥

अर्थ—निशिचरसमूह (वैसे) ही भाग चले जैसे प्रबल वायुसे मेघसमूह (तितर-बितर हो जाते हैं)॥ ३॥

नोट—१ (क) *'पराई'* इति। पूर्व कहा कि वानर लोग *'मर्दहिं निसिचर सुभट बरूथा'*; अब निशाचरोंका भागना कहते हैं। भाव यह कि 'सुभट' जब मारे गये तब सेनापति-हीन होनेसे एवं अन्य सुभट भी प्रचण्ड मार देख, भगे। (ख) प्रबल वानर प्रबल पवन हैं, *'निसिचर निकर'* घनसमुदाय हैं। पूर्व राक्षसोंकी मेघसे उत्प्रेक्षा कर ही आये हैं—*'कोटि कँगूरन्ह सोहहिं कैसे। मेरु के सृंगन्हि जनु घन बैसे॥'* अब उन मेघोंके उड़ानेके लिये वानरोंको प्रबल पवन कहते हैं। यथा—*'कबहुँ प्रबल बह मारुत जहँ तहँ मेघ बिलाहिं।'* (४। १५) इससे यह भी सूचित किया कि जहाँ-तहाँ भाग गये। यहाँ 'उदाहरण अलंकार' है। 'घन' कहकर राक्षसोंका असंख्य और घना होना सूचित करते हैं। (ग) इस उदाहरणसे जनाया कि राक्षस बड़े वेगसे भगे, क्षणमात्रमें सब भाग गये, कोई रणभूमिमें नहीं दिखायी देते जैसे प्रचण्ड पवनके वेगसे सब बादल शीघ्र फट जाते हैं कहीं देख नहीं पड़ते।

हाहाकार भएउ पुर भारी। रोवहिं बालक आतुर नारी॥ ४॥
सब मिलि देहिं रावनहिं गारी। राजु करत एहि मृत्यु हँकारी॥ ५॥

शब्दार्थ—**आतुर**=आर्त, व्याकुल, अधीर। मरणोन्मुख (अमरकोशे)। रोगी (वि० त्रि०)। **हाहाकार**=भयके कारण बहुत-से मनुष्योंके मुखसे निकला हुआ हा हा शब्द। भय, दुःख या पीड़ा सूचित करनेवाली जन-समूहकी पुकार। कुहराम। आर्त करुण शब्द बहुतोंका एक साथ।

अर्थ—नगरमें भारी हाहाकार मच गया। लड़के और स्त्रियाँ आर्त्त होकर रो रहे हैं॥ ४॥ सब मिलकर रावणको गाली देते हैं कि राज्य करते हुए इसने हठात् मृत्युको बुला लिया॥ ५॥

नोट—१ *'हाहाकार'*, यथा—*'तात मातु हा सुनिय पुकारा।'* (५। २६। ३) हा हमारा पुत्र, हा हमारा भाई, हा हमारा पति रणमें मारा गया, इत्यादि हाहाकार है। यथा—**'मम पुत्रो मम भ्राता मम भर्ता रणे हतः॥', 'इत्येष श्रूयते शब्दो राक्षसीनां कुले कुले॥'** (वाल्मी० ९४। २४-२५)

नोट—२ *'रोवहिं बालक आतुर नारी'* इति। (क) बालक और स्त्रियोंका रोना कहा, क्योंकि युवावस्थावाले जितने हैं वे तो रणमें हैं। जिनके पति मारे गये उनकी स्त्रियाँ और जिनके पिता मारे गये वे बालक व्याकुल हो रोते हैं। (ख) यदि *'पुर भारी'* से पुरभरका घबड़ाहटसे रोना लें तो ठीक नहीं क्योंकि जो युवक हैं वे तो वीर भट हैं, वे नहीं रोते, उन्हें तो युद्धमें उत्साह है। वीर अधीर नहीं होते। यथा—*'सुनि सरोष बोले सुभट बीर अधीर न होहिं'* (अ० १९२)।

वि० त्रि० लंकाके घिर जानेपर पुरमें भारी कोलाहल हुआ था (यथा—*'लंका भयउ कोलाहल भारी'*), पर जब कोटके कँगूरेपरसे सेना भागी, तब तो बड़ा हाहाकार हुआ। बीमार, बालक और लड़के रोने लगे कि अब हमारी क्या गति होगी, साथ ही उनके हित पिता, पति लड़ाईपर गये हैं; वे लौटकर घर नहीं आये, अतः बहुत सम्भावना है कि मारे गये, अतः उनके लिये भी रो रहे हैं। 'आतुर' का अर्थ बीमार है।

☞ इसके बाद वाल्मी० रा० में नागपाश-बन्धन प्रसंग है और अ० रा० में मेघनादका ब्रह्मास्त्र चलाकर सेनाको मारना और दोनों भाइयोंपर भी अस्त्र बरसाना तथा रामजीके कुपित होनेपर छिपकर लंकाको चला जाना कहा है; तत्पश्चात् रावणने वीर योद्धाओंको भेजा और यह भय दिया कि जो विमुख होगा वह मेरे हाथ मारा जायगा।

नोट—३ (क) *'सब मिलि देहिं रावनहिं गारी'* इति। नीच स्त्रियोंका स्वभाव है कि दुःख पड़ा और वे गालियाँ देने लगीं। (ख) *'राज करत एहि मृत्यु हँकारी।'* भाव कि मृत्यु तो मारे डरके आती न थी पर इसने स्वयं उसे हठ करके बुलाया कि आकर सबको मार डाले।—*'तुम्ह तौ काल हाँक जनु लावा। बार बार मोहि लागि बोलावा॥'* (१। २७५)—सीताहरण करना कालका बुलाना है। सीताजी अपनेसे नहीं आयीं। यह जबरदस्ती उन्हें पुरके नाशके लिये लाया है। *'तौ मैं जाइ बैर हठि करिहौं'*, यही हाँक देकर कालका बुलाना है। श्रीसीताजी कालरूपा हैं, यथा—*'काल राति निसिचर कुल केरी। तेहि सीता पर प्रीति घनेरी॥'* (५। ४०। ८)

☞ वाल्मी० ९५ में मेघनाद और फिर अनेक वीरोंका वध होनेपर, स्त्रियोंका आर्त होकर विलाप करना पूरे सर्गमें है। वे अरण्यसे लेकर यहाँतकके चरितोंको स्मरण करती हुई कहती हैं कि प्रत्येक चरित रावणके लिये इस बातका उदाहरण है कि वह सीताको नहीं पा सकता, उसने अकारण ही गाढ़ वैर बाँध लिया है, अवश्य मारा जायगा। फिर आगे और भी कठोर वचन कहे हैं। अन्तमें कवि कहते हैं कि—'**इतीव सर्वा रजनीचरस्त्रियः परस्परं संपरिरभ्य बाहुभिः। विषेदुरार्तातिभयाभिपीडिता विनेदुरुच्चैश्च तदा सुदारुणम्॥**' (४३) अर्थात् इस प्रकार सब निशाचरियाँ एक-दूसरेको पकड़कर बैठकर बड़े ऊँचे स्वरसे, आर्त्त और भयसे पीड़ित होकर, भयंकर शब्दपूर्वक रोदन करने लगीं। वही अन्तिम 'आर्त (आतुर) शब्द' मानसकारने देकर उस सर्गके सदृश विलाप यहाँ सूचित कर दिया है।

वे रावणकी बहिन शूर्पणखाको गाली देती हैं कि वह कराल बुढ़िया कामातुर होकर क्यों रामजीसे हँसी करने गयी? राक्षसोंके विनाशके ही लिये उसने ऐसा किया। सीताहरणकी वही कारण हुई। विभीषणने सब राक्षसोंके हितकी धर्मार्थयुक्त सलाह दी थी सो भी रावणने न मानी। यदि विभीषणके वचनपर चलता तो यह लंका श्मशान न बनती और न दुःखसे आर्त होती—'**श्मशानभूता दुःखार्ता नेयं लंका भविष्यति (लंकापुरी भवेत्)।**' (९५। २२) हा हमारा पुत्र, हा हमारा भाई, हा हमारा पति रणमें मारा गया—इस प्रकार घर-घरमें राक्षसियोंके शब्द सुन पड़ते हैं। चाहे रुद्र, चाहे विष्णु या महेन्द्र वा शतक्रतु ही चाहे स्वयं काल ही रामरूप धरकर आया हो, पर बड़े-बड़े प्रवर वीर रामद्वारा मारे गये। भयका अन्त नहीं दीखता; हम सब अनाथकी तरह रो रहे हैं। ऐसा महाघोर भय आ प्राप्त हुआ तो भी उसे नहीं सूझता—'**इदं भयं महाघोरं समुत्पन्नं न बुद्ध्यते।**' (२७) देव, गन्धर्व, पिशाच; राक्षस कोई भी दृष्टिमें रामसे रक्षा नहीं कर सकता। रावणके विनाशसूचक उत्पात देख पड़ते हैं। रावणको ब्रह्माने देवदानवादि सबसे अभय दिया था। रावणने मनुष्यसे अभयका वर तो माँगा ही न था। निस्संदेह वह भय अब आ प्राप्त हुआ है।……उन महात्मा विभीषणने समयानुकूल ही किया कि जिससे भय देखा उसीके शरणमें जा प्राप्त हुए—'**प्राप्तकालं कृतं तेन पौलस्त्येन महात्मना। यत एव भयं दृष्टं तमेव शरणं गतः॥**' (४१)

निज दल बिचल सुना तेहिं काना। फेरि सुभट लंकेस रिसाना॥ ६॥
जो रनबिमुख फिरा* मैं जाना। सो मैं हतब कराल कृपाना॥ ७॥

शब्दार्थ—**रण-विमुख**=रणसे मुँह फेरकर या पीठ दिखाकर भागा हुआ। **बिचलना**=हिम्मत हारना, रणसे पैर हटाना, भागना।

अर्थ—रावणने अपनी सेनाका विचलित होना कानोंसे सुना तब सुभटोंको (भागते-से) लौटाकर लंकापति रावण उनपर क्रोधित हुआ॥ ६॥ (और बोला—) जिसे मैंने रणसे विमुख होकर फिरा हुआ जाना (जानूँगा) उसे मैं कठिन कृपाणसे मारूँगा॥ ७॥

नोट—१ *'सुना तेहिं काना।'* सेवकोंसे वा राक्षसियोंके करुणापूर्वक रोदनसे जाना—**'रावणः करुणं शब्दं शुश्राव परिदेवितम्।'** (वाल्मी० ९६)

पं०—*'रनबिमुख फिरा·········।'* 'रण-विमुख' और 'फिरा' दोनोंका एक ही अर्थ है। दोनों शब्द देनेका भाव कि सम्मुख लड़कर जीतकर, लौटना, हारकर न लौटना। सामने मर जाना या जीतकर लौटना।

नोट—२ *'कराल कृपाना'* यह वही चन्द्रहास है, यथा—*'मास दिवस महुँ कहा न माना। तौं मैं मारब काढ़ि कृपाना॥'* (५। १०), *'सीता तैं मम कृत अपमाना। कटिहउँ तव सिर कठिन कृपाना॥'* (सुं० १०), *'चंद्रहास हरु मम परितापं।'* (५। १०) 'मैं मारब।' का भाव कि स्वयं अपने हाथसे मारूँगा जिसमें संदेह न रहे कि मारा गया या नहीं।

पु० रा० कु०—भाव कि मैं मारूँगा, मैं कराल हूँ, मुझमें कृपा नहीं है।

☞ मिलान कीजिये—**'मन्त्रिणो बान्धवाः शूरा ये च मत्प्रियकाङ्क्षिणः। सर्वे गच्छन्तु युद्धाय त्वरितं मम शासनात्॥' ये न गच्छन्ति युद्धाय भीरवः प्राणविप्लवात्। तान् हनिष्याम्यहं सर्वान् मच्छासनपराङ्मुखान्॥'** (अ० रा० ५। ७७-७८) अर्थात् मेरे सेनापति, मन्त्री, बन्धुवर्ग आदि सभी मेरा हित चाहनेवाले वीर तुरन्त जायँ। जो प्राणोंके भयसे युद्ध करने न जायँगे उन आज्ञा न माननेवालोंको मैं स्वयं मारूँगा।

सर्बसु खाइ भोग करि नाना। समरभूमि भए बल्लभ प्राना॥ ८॥
उग्र बचन सुनि सकल डेराने। चले क्रोध करि सुभट लजाने॥ ९॥

शब्दार्थ—**वल्लभ**=अत्यन्त प्रिय। **भोग**=ऐशोआराम, सुख, मजे।

अर्थ—मेरा सर्वस्व (सब कुछ, हमारी सारी सम्पत्ति) खाकर और तरह-तरहके भोग-विलास करके भी अब रणभूमिमें प्राण प्यारे लग रहे हैं॥ ८॥ टेढ़े भयंकर और क्रोधभरे वचन सुनकर वे सब सुभट डर गये और लज्जित होकर क्रोध करके (लड़ने) चले॥ ९॥

नोट—१ *'सर्बसु खाइ भोग करि नाना।·········'* इति। भाव कि—(क) जो जिसका खाय और जिसके धन-सम्पत्तिसे भोग-विलास करे, उसको काम पड़नेपर धोखा न देना चाहिये, वरन् हर्षपूर्वक प्राण भी समर्पण कर देना चाहिये। यही कृतज्ञता है। तुम कृतघ्न हो, इसीसे प्राणोंका लोभ तुमको हुआ। काम पड़नेपर हमें धोखा दे रहे हो, यह अनुचित है, यथा—*'भाइहु लावहु धोख जनि आजु काज बड़ मोहि। सुनि सरोष बोले सुभट बीर अधीर न होहिं॥'* (अ० १९१)

(ख) ये वह वचन हैं जिन्हें सुनकर वीर लज्जित हुए; क्योंकि सम्मुख मारसे वीरका भागना अशोभा है। यथा—*'बिरिद बाँधि बर बीर कहाई। चलेउ समर जनु सुभट पराई॥'* (अ० १४४), *'सन्मुख मरन बीर कै सोभा।'*

नोट—२ (क) *'उग्र बचन सुनि'* उपसंहार है, *'फेरि सुभट लंकेस रिसाना'* उपक्रम है। बीचके चार चरणोंमें 'उग्र वचन' हैं। 'उग्र' में कई भाव हैं—क्रोधभरे, टेढ़े और भयावने। ये सब यहाँ हैं। भयंकर क्योंकि अपने हाथसे वध करेगा। (ख) मिलान कीजिये—*'अवलोकि खरतर तीर, मुरि चले निसिचर*

* सुना मैं काना—गी० प्र०

बीर। भये क्रुद्ध तीनिउ भाइ, जो भागि रन ते जाइ। तेहि बधब हम निज पानि, फिरे मरन मन महुँ ठानि॥'—(खरदूषणयुद्धप्रकरण; आ० २०)। वहाँ केवल मरण निश्चय करके लौटना कहा और यहाँ लज्जा और क्रोध भी दिखाया, यह विशेषता इनमें दिखायी। ये निशिचर अधिक वीर हैं; इसीसे लज्जित हुए और उत्साहसे चले। अध्यात्ममें केवल भयका उल्लेख है, यथा—'**तच्छ्रुत्वा भयसंत्रस्ता निर्जग्मू रणकोविदाः।**' (अ० रा० ५। ७९) अर्थात् यह सुनकर भयसे डरे हुए रणविज्ञ योद्धा निकले। '*लजाने*' पद मानसमें अधिक है। (ग) '*सकल डेराने। फिरे*.........।' इसमें यह व्यञ्जित किया कि डरे कि यह तो मारेगा ही। इससे इसके हाथ क्यों मरें, बीरकी तरह सम्मुख लड़कर उत्तम मृत्यु क्यों न मरें। जिससे स्वर्ग प्राप्त हो! अतः फिरे। यहाँ 'तुल्यप्रधान गुणीभूत व्यंग' है। (ग) '*चले निसाचर निकर पराई*' पूर्व कहा था, अतः अब 'फिरे' कहा अर्थात् फिर युद्धके लिये लौटना कहा।

सन्मुख मरन बीर कै सोभा। तब तिन्ह तजा प्रान कर लोभा॥१०॥

अर्थ—रणमें सम्मुख लड़कर मरना ही वीरकी शोभा है, तब (यह सोचकर) उन्होंने प्राणोंका लोभ छोड़ा॥१०॥

नोट—१ प्रथम कहा कि '*सुभट लजाने।*' अब उसका कारण कहते हैं कि '*सन्मुख*.........।' अर्थात् हमारा भागना अशोभित है। भागनेमें अशोभा है तो फिर '*होइ कि खेम कुसल रउताई*' यह समझ प्राणतक न्योछावर कर देनेको तैयार हो गये। 'शोभा' यह कि रणमें मरनेसे स्वर्गकी प्राप्ति और पृथ्वीमें कीर्ति होती है और जय हुई तो विजयश्री और राज्यभोग प्राप्त होता है। यथा—'**जिते लक्ष्मीर्मृते स्वर्गः कीर्तिश्च धरणीतले। तस्माद्धैर्यं विधातव्यं हन्तव्या परवाहिनी॥**'; '**हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्।**' (गीता २। ३७)

नोट—२ रावणने जो बातें कहीं उन सबका उत्तर कर्तव्यद्वारा सुभटोंने दिया।

रावण		सुभट
जो रनबिमुख फिरा मैं जाना	१	*फिरे क्रोध करि सुभट लजाने*
सो मैं हतब कराल कृपाना	२	*सन्मुख मरन बीर कै सोभा*
समरभूमि भए बल्लभ प्राना	३	*तब तिन्ह तजा प्रान कर लोभा*

भाव कि तुम कहते हो कि '*जो रनबिमुख फिरा*', सो हम रणविमुख न होंगे, अब जय होनेपर ही लौटेंगे, अन्यथा नहीं। तुम कहते हो '*मैं हतब*', सो हम तुम्हारे हाथ वध कराकर नरकमें न जायँगे, रणमें भले ही शत्रुसे वध हो! इस तरह हम वीरोंकी शोभाको प्राप्त हो स्वर्गको जायँगे। तुम कहते हो कि हमारा खाकर अब प्राणके लाले पड़े सो हम नमकहराम नहीं हैं, हम तुम्हारे लिये प्राणपर खेलने जाते हैं।

दो०—बहु आयुध धर सुभट सब भिरहिं पचारि* पचारि।
ब्याकुल किए भालु कपि परिघ त्रिसूलन्हि मारि॥४१॥

अर्थ—बहुत-से आयुध धारण किये हुए वे सब सुभट ललकार-ललकारकर भिड़ने लगे और रीछ-वानरोंको परिघों (लोहांगी, लोहदंड) और त्रिशूलोंसे मारकर उन्होंने व्याकुल कर दिया॥४१॥

नोट—१ (क) '*बहु आयुध धर।*' वाल्मी० ५१, ५२, ५३ और ५८ में धूम्राक्ष, वज्रदंष्ट्र और प्रहस्तका वानरोंसे युद्ध है। उसमें ये आयुध गिनाये हैं—प्रास, मुद्गर, परिघ, भिंदिपाल, पट्टिश, त्रिशूल, तोमर, ऋष्टि, मूशल, चाप, गदा, शक्ति, भाला, पाश, आयस, दंड, भुशण्डि, चक्र, परश्वध, बाण, खड्ग और परमायुध। वे ही सब यहाँ '*बहु आयुध*' से जनाये गये। (ख) '*सुभट सब।*' भाव कि ये सब उत्तम योद्धा हैं; इन्हें अपने बलका बड़ा गर्व है और अस्त्र-शस्त्र धारण किये सभी लड़ रहे हैं। '**प्रविश्य वानरं सैन्यं ममन्थुर्बलदर्पिताः।**' (अ० रा० ५। ८१)

नोट—२ '*ब्याकुल किए*.........*मारि*' इति। (क) प्रथम आयुधधर कहा, अब आयुधोंसे मारकर व्याकुल करना कहा। भाव कि वे शस्त्रधारी ही नहीं हैं वरन् उनके प्रयोग-प्रहारमें भी कुशल हैं, अस्त्र-शस्त्रके

* प्रचारि प्रचारि—(का०)।

पण्डित हैं तभी तो बलपूर्वक प्रहार करके सेनाको व्याकुल कर सके। यथा—'**बलवन्तोऽस्त्रविदुषो नानाप्रहरणा रणे। जघ्नुर्वानरसैन्यानि राक्षसाः क्रोधमूर्छिताः॥**' (वाल्मी० ५३। २६) (ख) *'व्याकुल किए।'* वाल्मी० ५२ और ५८ में इसका बहुत अच्छा वर्णन है। वे लिखते हैं कि—कोई तो प्राससे मारे गये, कोई वानर रुधिर वमन करने लगे, कोई मुद्गरसे मारे जाकर पृथ्वीपर गिरे, कोई परिघसे, कोई भिंदिपालसे और कोई पट्टिशसे मारे जानेपर प्राणरहित हो गये। कुछ वानर मारे जानेपर रक्तसे भींगे हुए पृथ्वीपर गिरे। कुछ क्रोधित राक्षसोंद्वारा भगा दिये गये और कुछ नष्ट हुए और बहुत-से वानर हृदय विदीर्ण हो जानेसे एक करवटके बल पृथ्वीपर सुला दिये गये। कुछकी त्रिशूलसे विदारित होनेपर आँतें निकल पड़ीं, कोई तलवारसे दो टुकड़े हो तड़पते हुए पृथ्वीपर गिरे—(वाल्मी० ५८। १२—२२ धूम्राक्ष एवं प्रहस्तयुद्ध)। (ग) *'परिघ त्रिसूलन्हि मारि।'* भाव कि आयुध तो बहुत लिये थे पर इन दोसे कपिदल अधिक व्याकुल हुए। अथवा 'परिघ-त्रिशूल' दोको कहकर अन्य भी आयुधोंको सूचित किया। ये मुख्य हैं इससे इनको कहा।

प० प० प्र०—यहाँ यह सिद्धान्त दिखाया कि अत्यन्त बलवान् वीर भी धैर्यरहित और भयार्त होनेपर पराजित हो जाते हैं। इसीसे '**धर्ममय रथ**' में *'सौरज धीरज तेहि रथ चाका'* कहा है। वे ही राक्षस जो अधीर होनेसे भागे थे अब धीरज धरनेपर उन्हीं वानरोंको व्याकुल कर भगा रहे हैं जिनसे पूर्व डरकर भागे थे।

भय आतुर कपि भागन लागे। जद्यपि उमा जीतिहहिं आगे॥ १॥
कोउ कह कहँ अंगद हनुमंता। कहँ नल नील दुबिद बलवंता॥ २॥
निज दल बिकल सुना हनुमाना। पच्छिम द्वार रहा बलवाना॥ ३॥

अर्थ—हे उमा! यद्यपि वानर आगे चलकर जीतेंगे तो भी (इस समय) वे भयसे व्याकुल होकर शीघ्रतासे भागने लगे॥ १॥ कोई कहता है कि अङ्गद कहाँ हैं। कोई कहता है कि हनुमान् कहाँ हैं और कोई कहते हैं कि बलवान् नील, नल और द्विविद कहाँ हैं॥ २॥ हनुमान्‌जीने अपने दलको व्याकुल सुना। वे बलवान् (उस समय) पश्चिम फाटकपर थे॥ ३॥

नोट—१ पार्वतीजीको शङ्का हुई कि अभी तो आपने कहा था कि *'रामप्रताप प्रबल कपिजूथा'* एवं *'गर्जहिं केहरिनाद कपि भालु महाबलसींव॥'* (३९), फिर ऐसे वीर होकर वे कैसे भगे? *'उमा'* सम्बोधनसे यह शङ्का ध्वनित होती है। इसीसे शिवजी समाधान करते हैं कि इस समय अस्त्र-शस्त्रोंकी बौछारसे वे भयातुर हो गये। इसीसे रणमें न स्थिर रह सके। यह रणकी शोभा है, एक ही ओरकी बराबर जीतमें रणका रस जाता रहता है। यथा—*'रन सोभा लगि प्रभुहि बँधायो।'* (७२। १३)

नोट—२ अङ्गद, हनुमान्, नल, नील, और द्विविदके नाम देकर जनाया कि पश्चिम-द्वारवाली सेनाने हनुमान्‌जीकी दुहाई की, क्योंकि ये पश्चिम-द्वारपर थे, यथा—*'पच्छिम द्वार रहा बलवाना।'* अङ्गद दक्षिण-द्वारपर और नल, नील, द्विविध आदि पूर्व-द्वारपर थे। ३८ (४) देखिये। अतः दक्षिणद्वारवाली सेनाने अङ्गद* और पूर्वद्वारवालीने नलादिको पुकारा। पुकारपर इन लोगोंने सहायता भी की। हनुमान्‌जीने आकर धूम्राक्षको, अंगदने बज्रदंष्ट्रको और नलादिने प्रहस्त और उसके मन्त्रियोंको मारा। ☞ इस प्रकार मानसकारने थोड़ेमें चार प्रधान निशिचर-सेनापतियोंका युद्ध कह दिया, जो वाल्मी० ५१ से ५८ तक ८ सर्गोंमें वर्णित है।

नोट—३ *'सुना हनुमाना'* का भाव कि मेघनादसे युद्धमें लगे थे, इससे उनकी दृष्टि इनकी ओर न थी, इसीसे देखा नहीं, आर्त्तस्वर सुनकर जाना। पाँड़ेजीका मत है कि यह 'बिचलना' पूर्वद्वारपर हुआ और हनुमान्‌जीने उसे पश्चिमद्वारसे सुना।

---

* 'धूम्राक्षेणार्दितं सैन्यं व्यथितं प्रेक्ष्य मारुतिः। अभ्यवर्तत संक्रुद्धः प्रगृह्य विपुलां शिलाम्॥' (वाल्मी० ५२। २६) 'प्रस्ताः सर्वे हरिगणाः शरैः संकृत्तदेहिनः। अंगदं संप्रधावन्ति प्रजापतिमिव प्रजाः॥' (५४। १५) अर्थात् हनुमान्‌जीने धूम्राक्षसे अर्दित और पीड़ित सेनाको देखकर क्रोध करके बड़ा पर्वत लेकर उसे मार डाला। सब वानर बाणोंसे छिन्न-भिन्नशरीर हो अङ्गदकी ओर दौड़े, जैसे प्रजापतिको देखकर प्रजा दौड़ती है।

मेघनाद तहँ करइ लराई। टूट न द्वार परम कठिनाई॥ ४॥
पवनतनय मन भा अति क्रोधा। गर्जेउ प्रबल काल सम जोधा॥ ५॥

अर्थ—वहाँ (पश्चिमद्वारपर) मेघनाद युद्ध कर रहा था वह द्वार टूटता नहीं था। महाकठिनताका सामना था॥ ४॥ तब पवनसुतके मनमें अत्यन्त क्रोध उत्पन्न हुआ और वह योद्धा (हनुमान्‌जी) प्रबलकालके समान बड़े जोरसे गर्जना करने लगे॥ ५॥

नोट—१ *'मेघनाद तहँ करइ लराई।.........'* इति। भाव कि—(क) सेनाको व्याकुल सुना पर सहायता कैसे करें। युद्ध हो रहा है, द्वार टूटता नहीं, अर्थात् उसकी हार होती नहीं। यदि बिना जीते चल दें तो वह समझेगा कि हारकर भाग गये। और यदि सेनाकी सहायता नहीं करते तो सेना मारी जाती है। (ख) रा० प्र०—*'परम कठिनाई'* इससे कि 'सर्वशस्त्रास्त्रकोविद एवं मायावी मेघनाद द्वारको रोके है।

वि० त्रि०—*'निज दल बिकल सुना.........कठिनाई।'* इति। उत्तर, दक्खिन और पूर्व तीनों ओरके फाटक टूट गये, पर पश्चिम ओरका फाटक, जिधर हनुमान्‌जी थे, नहीं टूट सका था। कारण यह कि उस फाटकपर मेघनाद युद्ध करता था। ऐसी कड़ी मार पड़ रही थी कि वानरी सेना बड़ी कठिनतामें पड़ गयी थी। तबसे तीनों फाटकोंसे भगेड़ मची, सब प्रख्यातनामा वीरोंको पुकारने लगे। हनुमान्‌जीने जब यह सुना तो बुद्धिमतांवरिष्ठने सोचा कि तीनों फाटकोंकी स्थिति तो तभी सँभल सकती है, जब मध्यलङ्कामें उपद्रव मचे और इस समय मैं पश्चिम फाटक छोड़ नहीं सकता। अब यदि मेघनाद मूर्छित हो और लाद-फाँदकर लङ्कामें जाय तो पश्चिम फाटककी चिन्ता छोड़कर मैं लङ्काके मध्यभागमें ऐसा उपद्रव मचा सकता हूँ कि फाटकोंकी रक्षासे अत्यधिक आवश्यकता निशाचरी सेनाको मध्य लङ्काकी रक्षाका मालूम पड़े, तब तीनों फाटकोंपरसे निशाचरी सेनाका बल आप-से-आप कम हो जायगा।

नोट—२ *'पवनतनय मन भा अति क्रोधा.........'* इति। (क) परम कठिनता देखकर जीतनेका उपाय यह किया कि अत्यन्त क्रोधसे गर्जे और गढ़पर पहुँच, पर्वत लेकर उसपर दौड़े। (ख) *'पवनतनय'* कहकर उनकी अत्यन्त शीघ्रता एवं बल आगे दिखाते हैं। प्र० स्वामीजीका मत है कि हनुमान्‌जीके हाथोंसे अब ये राक्षस मरकर पावन अर्थात् मुक्त होंगे यह भाव सूचित करनेके लिये 'पवनतनय' शब्द प्रयुक्त हुआ है। (ग) *'अति क्रोधा' 'परम कठिनाई'* के सम्बन्धसे कहा। पुनः जितना ही वीरको युद्धसमय क्रोध अधिक होता है उतना ही शीघ्र वह विकट काम करता है। ('क्रोध तमोगुण है। पर उसमें एक गुण यह है कि वह जिसमें होता है उसमें वह अन्य सब बातोंका विस्मरण कराके उसकी शक्ति-सर्वस्वको एक ही विषयपर केन्द्रित करा देता है। अतः युद्धमें क्रोध बहुत कार्य कर सकता है। क्रोध रुद्रका स्वरूप है। वह संहारकार्यमें बहुत शक्ति देता है। प० प० प्र०।') इससे अत्यन्त क्रोध किया। यथा—

१ *'क्रुद्धे कृतांत समान कपि तनु स्रवत सोनित राजहीं। मर्दहिं निसाचर कटक भट बलवंत घन जिमि गाजहीं॥ मारहिं चपेटन्हि डाँटि दातन्ह काटि लातन्ह मीजहीं। चिक्करहिं मरकट भालु छलबल करहिं जेहि खल छीजहीं॥'* (८०) इत्यादि।

२ *'तब प्रभु परम क्रोध कहुँ पावा।'* (९०। ८), *'भये क्रुद्ध जुद्ध बिरुद्ध रघुपति त्रोन सायक कसमसे। कोदण्ड धुनि अतिचण्ड सुनि मनुजाद भय मारुत ग्रसे॥.........'*, *'तानेउ चाप श्रवन लगि छाँड़े बिसिख कराल। राम मारगन गन चले लहलहात जनु ब्याल॥'* (९०)

३ *'दसमुख देखि सिरन्ह कै बाढ़ी। बिसरा मरन भई रिस गाढ़ी। गर्जेउ मूढ़ महा अभिमानी। धायेउ दसौ सरासन तानी। समरभूमि दसकंधर कोपेउ। बरषि बान रघुपति रथ तोपेउ। हाहाकार सुरन्ह जब कीन्हा।'* (९२। १—५)

४ *'देखि अजय रिपु डरपे कीसा। परम क्रुद्ध तब भयउ अहीसा।.........एहि पापिहि मैं बहुत खेलावा। लछिमन मन अस मंत्र दृढ़ावा। सुमिरि कोसलाधीस प्रतापा। सर संधान कीन्ह करि दापा। छाँड़ा बान माँझ उर लागा।'* (५। १३। १६)

५ *'आवा परम क्रोध कर मारा। गरज घोर रव बारहिं बारा। कोपि मरुतसुत अंगद धाए। हति त्रिसूल उर धरनि गिराए।.........फिरे बीर रिपु मरइ न मारा। तब धावा करि घोर चिकारा॥'* (७४। ५—९)

६ *'कुंभकरन रनरंग बिरुद्धा। सनमुख चला काल जनु क्रुद्धा। कोटि कोटि कपि धरि धरि खाई। जनु टीड़ी गिरि गुहा समाई। कोटिन्ह गहि सरीर सब मर्दा। कोटिन्ह मींजि मिलव महि गर्दा। मुरे सुभट सब फिरहिं न फेरे। सूझ न नयन सुनहिं नहिं टेरे॥'* (६६। १—६)

७ *'कटकटान कपि कुंजर भारी। दुहुँ भुजदंड तमकि महि मारी। डोलत धरनि सभासद खसे। चले भागि भय मारुत ग्रसे। गिरत सँभारि उठा दसकंधर। भूतल परे मुकुट अति सुन्दर॥'* (३०। ३—५)

तथा यहाँ, ८ *'चले क्रोध करि सुभट लजाने।.........व्याकुल किये भालु कपि०॥'* (४१)

पुनः, *'अति क्रोधा'* का भाव कि पूर्व जब मेघनादका सामना हुआ था और दोनों योद्धा भूमिपर थे तब इनने साधारण कोप किया था और वृक्षसे ही मारा था, अब वह गढ़पर है और ये नीचे हैं; अब पूर्वका-सा क्रोध काम न देगा,—*'कटकटाइ गर्जा अरु धावा। अति बिसाल तरु एक उपारा।'* (सुं० १८) इसलिये अब *'भा अति क्रोधा'* और *'गर्जेउ प्रबल काल सम॥'* पहले जितना काम किया था उससे अब अधिक करेंगे। (ग) *'गर्जेउ प्रबल काल सम'* में पूर्णोपमालङ्कार है।

पं०—सेना भीतर गयी थी वहाँ शत्रुने उसे मारकर व्याकुल किया। और ये बाहर हैं। हम उनकी रक्षा कैसे करें, यह विचारकर क्रोध हुआ। पुनः आज युद्धका प्रथम दिवस है। प्रथम ही दिन हार होनेसे सेनाका उत्साह जाता रहेगा, यह विचारकर हनुमान्‌जीने अतिक्रोध कर मोरचाविजय किया। यहाँसे आद्यन्त इनका विजय कविने प्रथम दिवसमें दिखाया है। अन्तमें कहा है कि *'हनूमान अङ्गद रन गाजे। हाँक सुनत रजनीचर भाजे'*—यह विजय है।

कूदि लंक गढ़ ऊपर आवा। गहि गिरि मेघनाद कहुँ धावा॥६॥
भंजेउ रथ सारथी निपाता। ताहि हृदय महुँ मारेसि लाता॥७॥
दुसरे सूत बिकल तेहि जाना। स्यंदन घालि तुरत गृह आना॥८॥

शब्दार्थ—घालना=डालना, रखना।—*'सो भुजबल राख्यो उर घाली। जीतेउ सहसबाहु बलि बाली॥'* सूत=सारथी।

अर्थ—हनुमान्‌जी उछलकर लङ्काके गढ़के ऊपर आ पहुँचे और एक पर्वतको लेकर मेघनादकी ओर दौड़े॥ ६॥ रथ चूर-चूर कर दिया, सारथीको मार डाला और मेघनादके हृदयमें लात मारी॥ ७॥ दूसरा सारथी उसे व्याकुल जानकर रथमें डाल तुरंत घर ले आया॥ ८॥

नोट—१ पूर्व कहा कि *'पवनसुत मन भा अति क्रोधा',* अब 'पवनसुत' और 'अति क्रोध' दोनोंका स्वरूप, दोनोंका कार्य और चरितार्थ दिखाया। पवनसुत हैं इसलिये इतनी शीघ्रता की कि एक ही पर्वतसे सब काम एक साथ कर डाले। 'अतिक्रोध' था इससे इतना कार्य किया। सुन्दरकाण्डमें साधारण क्रोध था तब मेघनाद क्षणभर मूर्छित रहकर उठ बैठा। अब 'अतिक्रोध' है अतः बहुत देरतक मूर्छा बनी रही।

नोट—२ *'भंजेउ रथ सारथी निपाता।.........'* भाव कि वह रथपर था इससे प्रथम उसे विरथ किया। जब वह रथसे निकल बाहर खड़ा हुआ तब हृदयमें लात मारी। यह सब बड़ी शीघ्रतासे किया, उसको वार करनेका अवसर न मिल पाया। प्रथम बार सारथीका मारा जाना नहीं कहा गया था। दूसरे, प्रथम घूँसा मारा गया था और अबकी लात। इसी प्रकार पूर्ववृक्षसे काम लिया था, अबकी पर्वतसे। ये तीनों विशेषताएँ इस युद्धमें हुईं।

नोट—३ *'तुरत गृह आना'* भाव कि इसने हनुमान्‌जीको पूर्व बाँधा था, उसके बदलेमें वे कहीं इसे न बाँध लें। रावणसे हनुमान्‌जीने कहा था कि *'तापर बाँधेउ तनय तुम्हारा'* अर्थात् अभी इसका बदला लेना है। इसी डरसे तुरंत उठा ले गया।

नोट—४ ☞ यह पश्चिमद्वार टूटा। हनुमान्‌जीकी जय हुई। हनुमान्-मेघनाद-युद्धका उपक्रम *'मेघनाद तहँ करइ लराई'* और उपसंहार *'दुसरे सूत बिकल तेहि जाना……।'* है। पाँच अर्धालियोंमें कहा।

दो—अंगद सुना पवनसुत गढ़ पर गएउ अकेल।
रनबाँकुरा बालिसुत तरकि चढ़ेउ कपिखेल॥ ४२॥

अर्थ—अङ्गदजीने सुना कि पवनसुत अकेले ही गढ़पर गये हैं। (तब) वह रणमें बाँका बालिपुत्र वानरक्रीड़ासे कूद-उछलकर गढ़पर चढ़ गया॥ ४२॥

'गढ़पर गएउ अकेल' का भाव कि—(क) पं०—जो सेना पूर्व गढ़पर चढ़ी थी वह भाग आयी थी, विचलित हो गयी थी, इससे हनुमान्‌जी अकेले हैं। (ख) र० प्र०—प्रथम युद्ध दुर्गके पहिले आवरण अर्थात् शहरपनाहवाले घेरेपर हुआ जान पड़ता है और *'गढ़पर गएउ अकेल'* यह अन्तर-आवरणपर जाना कहा। *'सुना'*—निशिचरसेनामें परस्पर चर्चा होनेसे।

नोट—१ (क) पश्चिमद्वार हनुमान्‌जीने तोड़ा और वानरोंकी सहायता की। अब दक्षिणद्वारका टूटना और अङ्गदका वानरोंकी सहायता करना यहाँ कहते हैं। २ (ख) *'रनबाँकुरा'* और *'बालिसुत'* विशेषण देकर जनाया कि महापार्श्व और महोदर जिनसे यह मोरचा लड़ रहा था उन्हें मारकर तब यह इधर आया है, अपना मोरचा छोड़कर नहीं आया। (रा० बा० दा०)। पुनः भाव कि जैसे बालि निर्भय और फुर्तीला था कि रावण घातमें ही रहा और उसने रावणको फुर्तीसे उछलकर पकड़ लिया। वैसा ही यह फुर्तीला है; अतः वानर-खेलसरीखे उछलकर तुरंत ऊपर पहुँच गया। पुनः, जैसे *'बाली रिपुबल सहइ न पारा'* वैसे ही यह रणबाँका है, यह शत्रुका कपिसेनाको विकल करना न सह सका। अतः शत्रुबलमर्दनके लिये कूदकर ऊपर चढ़ा। पुनः भाव कि स्वाभाविक निडर है, यथा—*'प्रभु प्रताप उर सहज असंका। रनबाँकुरा बालिसुत बंका॥'* (१८। २) जैसे बालि अर्द्धरात्रिमें ही मायावीका पीछा करते गुफामें निडर घुसता चला गया था वैसे ही यह शत्रुके गढ़पर निर्भय गया। (ग) *'कपिखेल'*, यथा—*'साखा ते साखा पर जाई।'* एक डालसे दूसरी डालपर जैसे वानर खेलते-कूदते हैं वैसे ही बिना परिश्रम कूदकर चढ़ गये।

जुद्ध बिरुद्ध क्रुद्ध दोउ बंदर। रामप्रताप सुमिरि उर अंतर॥ १॥
रावन भवन चढ़े द्वौ धाई। करहिं कोसलाधीस दोहाई॥ २॥
कलस सहित गहि भवनु ढहावा। देखि निसाचरपति भय पावा॥ ३॥

अर्थ—दोनों वानर युद्धमें विरोध-भावसे क्रोधित हो श्रीरामचन्द्रजीका प्रताप अन्तःकरणमें स्मरण करके दोनों दौड़कर रावणके महलपर चढ़ गये और कोसलपति श्रीरामचन्द्रजीकी शपथ करने लगे॥ १-२॥ उन्होंने कलशसमेत महलको पकड़कर ढहा (गिरा) दिया। यह देखकर निशिचरराज डर गया॥ ३॥

'रामप्रताप सुमिरि उर अंतर' इति।

प्रतापका स्मरण करनेसे बल, उत्साह और निर्भीकता बढ़ती है, कार्यमें चूक नहीं होती और विजय वा कार्यसिद्धि होती है।—

१ वानरोंने प्रताप स्मरण करके समुद्रमें पुल बाँध दिया,—*'सुनि कपि भालु चले करि हूहा। जय रघुबीर प्रताप समूहा॥'* (१। १०) *'श्रीरघुबीर प्रताप तें सिंधु तरे पाषान॥'* (३) यह अद्भुत कार्य हुआ जिससे रावण भयभीत हो गया—*'दसमुख बोलि उठा अकुलाना॥'* (५। १०)

२ अङ्गदजी दूत बनकर गये तब उन्होंने प्रतापका स्मरण किया। यथा—*'बंदि चरन उर धरि प्रभुताई। अंगद चलेउ सबहि सिरु नाई। प्रभु प्रताप उर सहज असंका॥'* (१८। १-२) फिर *'समुझि राम प्रताप कपि कोपा। सभा माँझ पन करि पद रोपा॥'* (३३। ८) इसका फल क्या हुआ?—रावण *'भएउ तेज हत श्री सब गई॥'* (३४। ४)

३ युद्धारम्भमें कहा है कि *'प्रभुप्रताप कहि सब समुझाए। सुनि कपि सिंहनाद करि धाए॥'* (३८। ६) फल क्या हुआ कि *'चले निसाचर निकर पराई'* और *'हाहाकार भयउ पुर भारी॥ ......'* (४१। ३-४)

४ *'सुमिरि कोसलाधीस प्रतापा। सर संधान कीन्ह करि दापा॥'* (७५। १५) तब *'छाँड़ा बान माँझ उर लागा।'* और एक ही बाणमें मेघनादका काम हो गया। तथा यहाँ—*'राम प्रताप सुमिरि उर अंतर।'* फल क्या हुआ सो दो दोहोंमें है। सूक्ष्म रीतिसे फल यह दिखाया कि *'देखि निसाचरपति भय पावा'* तब दूसरोंका क्या कहना?

☞ विरुद्ध=विशेष रुद्ध। रुद्ध=जिसकी गति रोक ली गयी हो। विद्ध='विशेष अरुझ गये'—(पाँ०)। इत्यादि, अनेक प्रकारसे लोगोंने इस शब्दके अर्थ किये हैं। वास्तविक क्या अर्थ है यह जाननेके लिये मानससे इसके और स्थलोंके प्रयोग यहाँ उद्धृत किये जाते हैं। यथा—

१—*'कुंभकरन रन रंग बिरुद्धा। सनमुख चला काल जनु क्रुद्धा॥'* (६६। १)

२—*'भए क्रुद्ध जुद्ध बिरुद्ध रघुपति त्रोन सायक कसमसे॥'* (९० छन्द)

३—*'रे कुभाग्य सठ मंद कुबुद्धे। तैं सुर नर मुनि नाग बिरुद्धे॥'* (९३। ५)

४—*'दोउ भिरे अति बल मल्लयुद्ध बिरुद्ध एकु एकहि हनै॥'* (९३ छन्द)

तथा यहाँ—*'जुद्ध विरुद्ध क्रुद्ध दोउ बंदर'* कहा है। 'विरोधभावको प्राप्त' यह अर्थ सबमें घटित होता है। वाल्मी० ४४। २ में **'अन्योन्यं बद्धवैराणाम्'** (अर्थात् परस्पर वैरमें बँधे हुए) यह जो पद आया है, ठीक वही भाव 'विरुद्ध' का है। टीकाकारोंने न समझकर मनमाने अर्थ किये हैं। पंजाबीजी और रा० प्र० कारने भी यही अर्थ लिया है। दोनों लिखते हैं कि विरुद्ध युद्ध करते हैं अर्थात् क्रीड़ा-युद्ध नहीं कर रहे हैं, क्योंकि अपनी सेनाको विचलित सुन चुके हैं।

नोट—१ *'करहिं कोसलाधीस दोहाई।'* (क) दोहाई=शपथ। भाव कि शपथ कर-करके कहते हैं कि हम ऐसा करेंगे और कर डालते हैं। सत्यसङ्कल्प रामचन्द्रजी हमारे सङ्कल्पको पूरा करेंगे। प्रतिज्ञाकी सत्यताके लिये उनकी शपथ करते हैं, यथा—*'मोहि राम राउरि आन दसरथ सपथ सब साँची कहउँ'* (२। १००) *'जौं न करौं प्रभु पद सपथ कर न धरौं धनु भाथ।'* (१। २५३) (ख) दोहाई सहायताके लिये भी की जाती है। पुनः, (ग) अपने स्वामीके प्रतापका डंका बजाना, उनका जय-जयकार करना, नवीन राजाके नामकी घोषणा करना भी 'दोहाई' है, यथा—*'नगर फिरी रघुबीर दोहाई।'* (सुं० ११। ६) *'जब प्रताप रबि भएउ नृप फिरी दोहाई देस।'* (१। १५३) पर इस अर्थमें प्रायः 'दोहाई' के साथ 'फिरना' क्रियाका प्रयोग होता है। दुहाई करते हैं, अर्थात् फेरते हैं, रामचन्द्रजीका जय-जयकार करते हैं, कहते हैं कि लङ्काके स्वामी श्रीरामजी हैं, रावण नहीं है, अब इसपर कोसलराजका दखल हो गया है, *'कोसलाधीस'* पद भी इस भावका समर्थक है।

नोट—२ *'देखि निसाचरपति भय पावा'* इति। पंजाबीजी 'निशाचरपति' का अर्थ भवनपालक-रक्षक करते हैं और कहते हैं कि यदि इसका अर्थ 'रावण' करें तो अयुक्त है, क्योंकि युद्धके समय घरमें बैठना और हनुमान्-अङ्गदके सम्मुख होनेपर उनसे युद्ध न होना आश्चर्य है। पं० रा० कु० जीका मत है कि 'पति' की जगह 'अति' शुद्ध पाठ है; अर्थ यह होगा कि 'निशिचर देखकर अत्यन्त भयभीत हो रहे हैं।'

[परंतु यहाँ रावणका देखना ही अभिप्रेत है। उसका निशाचरोंको ललकारना पूर्व कह भी आये हैं, मोरचोंकी देख-रेख दूरसे करना बराबर प्रसंगसे पाया जाता है। उसका महलके भीतर बैठना प्रसङ्गसे नहीं पाया जाता। आगे हनुमान्जी और अङ्गदजीका मुखिया निशिचरोंके मुण्डोंका उसके सामने फेंकना कवि कहते हैं। इससे भी उसका महलके भीतर बैठा होना प्रमाणित नहीं होता।]

वि० त्रि०—*'कलस सहित.......पावा'* इति। हनुमान्जीने जैसा सोचा था, वैसा ही किया। मेघनाद मूर्च्छितावस्थामें घर लाये गये। हनुमान्जी मध्यलङ्कामें रावणके महलतक पहुँच गये, तबतक यह समाचार सुनकर उधरसे अङ्गदजी आ गये। दोनोंने रावणके महलपर चढ़कर जयकार लगाया। रावणका महल सबसे ऊँचा था। लङ्काभरमें तहलका मच गया कि यहाँ फाटकपर लोग लड़ रहे हैं, वहाँ राजाके महलपर

शत्रुका कब्जा हो गया। तबसे दोनों वीरोंने कलशके साथ सबसे ऊँचे महलका भाग गिरा दिया। देखकर दूसरेकी कौन चलाये स्वयं रावण डर गया कि यह क्या हुआ?

नारि बृंद कर पीटहिं छाती। अब दुइ कपि आए उतपाती॥ ४॥

कपि लीला करि तिन्हहि डेरावहिं। रामचंद्र कर सुजसु सुनावहिं॥ ५॥

शब्दार्थ—उत्पाती=उपद्रवी, नटखट, अशान्ति उत्पन्न करनेवाले। लीला=क्रीड़ा, जैसे मुँह बिराना, घुड़कना, दाँत दिखाना, काटनेको दौड़ना।

अर्थ—स्त्रीवृन्द हाथोंसे छाती पीटती हैं कि अब तो दो-दो उत्पाती वानर एक साथ आये हैं। (क्या उपद्रव न कर डालें! कौन जानता हैं?)॥ ४॥ वानर-केलि करके (दोनों) कपि उनको भय देते हैं और रामचन्द्रजीका सुन्दर यश सुनाते है॥ ५॥

नोट—१ *'नारिबृंद कर पीटहिं छाती'* इति। (क) भय, शोक और पश्चात्तापसे व्याकुलताके कारण छाती पीटती ही हैं। छाती पीटनेका भाव कि हाय! अब क्या करें? कोई वश नहीं है। शोकके आवेगमें लोग छातीपर हाथ पटकते ही हैं। नारिवृन्दसे यहाँ रावणका रनवास सूचित किया। (ख) *'अब दुइ कपि आए उतपाती'* इति। 'अब' का भाव कि प्रथम हनुमान्‌जी गढ़पर अकेले चढ़कर गये; फिर अङ्गद भी पहुँच गये। इस तरह अब दो हो गये। दोनों उत्पाती हैं। पुनः भाव कि अभीतक ये एक-एक करके आये थे तब कितना उत्पात कर गये थे, अब दोनों साथ हैं, न जानें क्या कर डालें। हनुमान्‌जी और अङ्गदजी दोनोंको और दोनोंके किये हुए उत्पातोंको देख-सुन चुकी हैं। एकने लङ्का जलायी, अक्षयादिको मारा, इत्यादि। दूसरेने सभामें रावणके किरीट-मुकुटादि गिराये, रावणपुत्रको मारा और पाँव रोपा जो किसीसे न हटा। हनुमान्‌जीके उत्पातसे तब (प्रथम बार ही) सब हाहाकार करने लगे थे, यथा—*'तात मातु हा सुनिय पुकारा। एहि अवसर को हमहिं उबारा॥ हम जो कहा यह कपि नहिं होई। बानर रूप धरे सुर कोई।'* (सुं० २६। ३-४) तथा *'निबुकि चढ़ेउ कपि कनक अटारी। भईं सभीत निसाचर नारी॥'* (सुं० २५। ९)

जब अङ्गदजी दूत बनकर गये तब सब यह समझकर कि वही लङ्का जलानेवाला फिर आया है, नगरमें खलबली मच गयी थी। यथा—*'भयउ कोलाहल नगर मँझारी। आवा कपि लंका जेहि जारी॥ अब धौं काह करिहि करतारा। अति सभीत सब करहिं बिचारा॥'* (१८। ८-९) *'जातुधान अंगद पन देखी। भय ब्याकुल सब भये बिसेखी॥'* (३४। १३) फिर युद्धकी प्रथम लड़ाईमें जब निशिचर मारे गये और भगे तब नगरमें भारी हाहाकार हुआ था—*'हाहाकार भयउ पुर भारी। रोवहिं बालक आतुर नारी॥ सब मिलि देहिं रावनहिं गारी। राज करत एहि मृत्यु हँकारी॥'* (४१। ४-५) और अब हनुमान् और अङ्गद दोनोंको आया हुआ और उत्पात करते हुए देख रही हैं तब कहते हैं कि—*'देखि निसाचरपति भय पावा॥ नारिबृंद कर पीटहिं छाती। अब दुइ कपि आए उत्पाती॥'* (४३। ४)

नोट—२ इस प्रकार उत्तरोत्तर अधिक भय, शोक और व्याकुलता बढ़ती दिखायी। प्रथम बार हनुमान्‌जीके लङ्कादहनरूपी उत्पातपर स्त्रियाँ सभीत हुईं और हाहाकार हुआ। उत्तरोत्तर अधिकता, यथा—

१ (क) लङ्कादहनपर सभीत हुईं। यथा—*'भईं सभीत निसाचर नारी।'* सुं० २५ (८) अङ्गदके आनेपर 'अति सभीत' हुईं; यथा—*'अति सभीत सब करहिं बिचारा।'* (१८। ८)

(ख) पति-पुत्रादिके प्रथम युद्धमें मरनेपर भारी व्याकुल हो रोने लगीं। यथा—*'रोवहिं बालक आतुर नारी।'* और दो उत्पाती कपि आये तब छाती पीटी—*'नारिबृंद कर पीटहिं छाती।'* इति प्रथमावृत्तिः।

२ (क) नगरभरमें उत्पात हुआ तब हाहाकार हुआ—*'तात मातु हा सुनिय पुकारा।'*

(ख) जब केवल रावणपुत्र मारा गया, पुरमें कोई उत्पात न हुआ, तब कोलाहल और विचारमात्र हुआ। यथा—*'भएउ कोलाहल नगर मँझारी।'* (१८। ८), *'अति सभीत सब करहिं बिचारा।'*

(ग) पति-पुत्र-भाई आदि मारे गये, तब भारी हाहाकार हुआ। यथा—*'हाहाकार भएउ पुर भारी। रोवहिं बालक आतुर नारी॥'* (४१। ४)

(घ) हनुमान्-अङ्गद दोनों उत्पात करने आये तब और अधिक शोक हुआ। यथा—*'नारिबृंद कर पीटहिं छाती।'* (४३। ४) इति द्वितीयावृत्तिः।

३ (क) आग लगनेपर घरमें बचानेवाले थे और अपने प्राणोंके लाले भी पड़े थे, अतः तब बचानेकी बात कही, यथा—*'एहि अवसर को हमहिं उबारा।'*

(ख) अङ्गदजीने पुरमें उत्पात नहीं किया, इसीसे तब बचानेको न कहा, केवल यह सोचने लगीं कि अब न जाने क्या होगा, यथा—*'अब धौं काह करिहिं करतारा।'*

(ग) जब बचानेवाले पति-पुत्रादि मरे तब उबारना न कहा, वरन् रोने लगीं, क्योंकि पुकारतीं किसको? यथा—*'रोवहिं बालक आतुर नारी।'*

(घ) हनुमान्-अङ्गद दोनोंको देखा तब अतिशय व्याकुल हो छाती पीटने लगीं कि रहा-सहा भी न बचेगा, इनसे वश न चलेगा। इति तृतीयावृत्तिः।

४ लङ्कादहनपर रावणको गाली न दी थी—*'हम जो कहा यह कपि नहिं होई।'* (सुं० २६) घरके पुरुषोंके मारे जानेपर गाली दी थी—*'सब मिलि देहिं रावनहिं गारी॥'* (४१। ५) जब देखा कि गाली खानेपर भी नहीं मानता और इस समय वह स्वयं इन दोनोंके कार्यसे भयभीत हो गया है फिर भी हठ नहीं छोड़ता, तब अपनी ही छाती पीटने लगीं। इति चतुर्थावृत्तिः।

५ (क)—लङ्कादहनके बाद निशाचर भयभीत रहते थे	*'उहाँ निसाचर रहहिं ससंका'*, *'गृह गृह प्रति सब करहिं बिचारा। नहिं.........'*
(ख)—अङ्गदपदरोपण होनेपर वे विशेष भयभीत हुए और	*'भय ब्याकुल सब भये बिसेखी'*, *'सिंहासन बैठेउ सिर नाई'*,
रावण लज्जित हुआ	*'भवन गएउ बिलखाइ'*
(ग)—अङ्गद-हनुमान् दोनों आये तब रावणको ही भय हुआ	*'देखि निसाचरपति भय पावा'* —इति पञ्चमावृत्तिः।

नोट—३ *'कपि लीला करि तिन्हहिं डेरावहिं।'* (क)—वीर स्त्रियों और निर्बलोंपर हाथ नहीं चलाते; इसीसे उनको कपि-केलि करके डरवाते हैं। दूसरे, स्त्रियाँ अवध्य हैं और इस समय स्वयं आर्त्त हैं। बं० पा० जीका मत है कि दोनों निशाचरियोंसे श्रीजानकीजीका बदला लेते हैं। यथा, वहाँ *'पिसाचिनि बृंद। सीतहिं त्रास देखावहिं धरहिं रूप बहु मंद॥'* (५। १०) तथा यहाँ ये निशिचरियोंको *'कपि-लीला करि डेरावहिं।'* (ख) *'रामचंद्र कर सुजस सुनावहिं।'* युद्ध-प्रकरणमें इस काण्डके प्रारम्भमें लङ्कामें आते ही प्रभुका सुयश निशिचरोंको सुनाया और उनसे कहलाया गया है। तबसे 'सुयश सुनाने' का उल्लेख बहुत स्थानोंपर हुआ है—(१) *'कहि प्रभु सुजस देहिं तब जाना॥'* (५। ८; वानर-भालु) (२) *'रिपु मद मथि प्रभु सुजस सुनायो॥'* (३४। १०; अङ्गद) (३) *'कपि भालु चढ़ि मंदिरन्ह जहँ तहँ रामजसु गावत भए॥'* (४० छन्द) तथा यहाँ (४) *'कपि लीला करि तिन्हहिं डेरावहिं। रामचंद्र कर सुजस सुनावहिं॥'*

☞वाल्मीकीय आदिमें बारम्बार श्रीराम-लक्ष्मण-सुग्रीवका जय-जयकार और बलकथन किया गया है कि एक क्या करोड़ों रावणोंको मर्दन करनेको समर्थ हैं, इत्यादि। यह भी 'सुयश' ही है। और वही यहाँ अभिप्रेत जान पड़ता है।

पुनि कर गहि कंचन के खंभा। कहेन्हि करिअ उतपात अरंभा॥ ६॥
गर्जि परे रिपु कटक मझारी। लागे मर्दइ भुज बल भारी॥ ७॥
काहुहि* लात चपेटन्हि केहू। भजहु न रामहि सो फल लेहू॥ ८॥

शब्दार्थ—**उतपात**=उपद्रव। कष्ट पहुँचानेवाली आकस्मिक घटना।

अर्थ—फिर सोनेके खम्भेको हाथसे पकड़कर (परस्पर दोनों एक-दूसरेसे) बोले कि अब उपद्रव

* काहूँ लात—(का०)।

शुरू करें॥ ६॥ (यह सम्मति होनेपर) वे शत्रु-सेनाके मध्य गर्जकर कूद पड़े और उसे अपने भारी भुजबलसे मर्दन करने लगे॥ ७॥ किसीको लातसे, किसीको थप्पड़से मारकर कहते हैं कि श्रीरामजीका भजन नहीं करते, उसका फल लो॥ ८॥

नोट—१ प्रथम भवन गिराना कहा, भवन गिरा तब स्वर्णके खम्भे भी गिरे, अतः उनका हाथमें लेना कहा, गिराना न कहा—*'पुनि कर गहि·······।'*

नोट—२ *'कटक मँझारी'* इति। यह सेना मध्यभागकी है। दोहा ३७ *'समाचार पुनि सब कहे·······'* के नोटमें बताया जा चुका है कि वाल्मी० के मतानुसार मध्यभागमें चतुरङ्गिणी सेनासहित विरूपाक्ष है। पर पंजाबीजीका मत है कि यहाँ *'कटक मँझारी'* से विद्युज्जिह्ववाले कटक वा गुल्मसे तात्पर्य है जो बीचमें था, यहींसे विद्युज्जिह्व चारों ओर सहायताके लिये सेना भेजा करता था। (पं०, रा० बा० दा०) एक विद्युज्जिह्व तो रावणद्वारा मार डाला गया था। उसी नामका दूसरा भी हो सकता है।

दो०—एक एक सों* मर्दहिं तोरि चलावहिं मुंड।
रावन आगे परहिं ते जनु फूटहिं दधिकुंड॥ ४३॥

अर्थ—एक (निशिचर) को दूसरेसे रगड़कर मल देते हैं। फिर (मरनेपर) सिरको धड़से मरोड़कर अलग करके फेंकते हैं। वे सिर जाकर रावणके आगे गिरकर ऐसे फूटते हैं मानो दहीके कूँड़े फूटे हों॥ ४३॥

पु० रा० कु०—रामभजन न करनेका फल दिखाया कि एक-दूसरेसे मर्दन किये जाकर मर रहे हैं। आपसमें ही भिड़कर मरते हैं।

नोट—१ *'रावन आगे परहिं ते जनु फूटहिं दधिकुंड'* इति। (क) रावणके आगे फेंकनेका भाव कि जिन सेनापतियोंका तुझे गर्व है, उनकी यह दुर्गति देख कलेजा ठंडा कर। इन्हींके बलपर वैर किया है? पुनः, भाव कि वह पहचान ले कि सब सुभट मारे गये। इसीसे उसके पास सिर फेंक देते हैं। वा, इस प्रकार उसे ललकारते हैं कि तू भी आ, तेरी भी यही दशा होगी। अथवा इस प्रकार उसको शोक पहुँचानेमें शीघ्रता कर रहे हैं। शत्रुकी छाती जितनी जल्द जले उतना अच्छा। (ख) दहीके कूँड़े मिट्टीके और पके हुए होते हैं। ऊपरसे गिरनेपर वे टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं और उनसे शब्द होता है तथा उनका दही गिरकर भूमिपर बिथर जाता है। वैसे ही ये सिर गिरकर फूटते हैं और इनका मज्जा-मेदा आदि पृथ्वीपर छितरा जाता है। यहाँ 'उक्तविषयावस्तूत्प्रेक्षा अलंकार' है। उत्प्रेक्षा केवल उनके पृथ्वीपर गिरकर शब्द करते हुए फूटने और बिखरनेमें है।

महा महा मुखिया जे पावहिं। ते पद गहि प्रभु पास चलावहिं॥ १॥
कहइ† बिभीषनु तिन्ह के नामा। देहिं रामु तिन्हहूँ निज धामा॥ २॥

अर्थ—जिन बड़े-बड़े मुखियों (प्रधान सरदारों) को पा जाते हैं उनको पैर पकड़कर प्रभुके पास फेंक देते हैं॥ १॥ विभीषणजी उनका नाम बताते हैं और श्रीरामजी उन्हें भी अपना धाम देते हैं॥ २॥

नोट—१ (क) *'महा महा मुखिया जे पावहिं·······'* इति। भाव कि रावणके पास जिनको फेंका वे मुखिया थे और श्रीरामचन्द्रजीके आगे जिन्हें फेंका वे महामुखिया थे अथवा, प्रथम कोटि जिन्हें लातों, चपेटोंसे मर्दन किया वे मुखिया थे, फिर दूसरी कोटि *'एक-एक सों मर्दहिं',* जिन्हें पकड़कर एक-दूसरेसे रगड़कर मारा और जिनके मुंड तोड़ लिये वे महामुखिया थे और तीसरी कोटि, जिनके पैर पकड़कर प्रभुके पास फेंके वे महा-महा-मुखिया हैं। (ख) *'पद गहि चलावहिं।'* पैर हलके और लम्बे होते हैं इससे इधरसे पकड़कर फेंकनेसे ठीक बनता है, यह साधारण रीति है। भारी किनारा, पकड़नेसे दूरतक नहीं फेंक सकते। (पां०—महामुखियोंका सिर धड़से अलग नहीं करते। सिरसहित फेंकते हैं जिसमें पहचान लिये जायँ।)

* सों—पाठान्तर। † कहहिं—(का०)।

पं०—'महामुखिया' में तीन प्रकारसे महानता है। (१) पूर्वजन्मोंके तपादिसे। (२) सुभट एवं यूथपति होनेसे। अथवा, (३) ये बड़े-से-बड़े योद्धा रावणके पुत्रादि सेनापति हैं, इससे।

वि० त्रि०—*'महा महा.........चलावहिं'* इति। महल गिरानेके बाद दोनों वीर सेनाके मुख्य भागके बीचमें कूद पड़े, जहाँसे चारों फाटकपर कुमक (सहायता) भेजी जाती थी, और सेनाका संहार आरम्भ कर दिया। मुंड तोड़-तोड़कर उपहाररूपमें रावणके पास फेंकने लगे, जिसमें स्वयं राजाके पार्श्ववर्तीतक आतङ्कित हो जायँ। अपनी सेनाको उत्साहित करनेके लिये महा-महामुखियोंको रामजीके पास फेंकने लगे। भाव यह कि छोटे-छोटे पापियोंको तो हमलोग मुक्ति दे रहे हैं। ये बहुत बड़े पापी हैं, ये हमारे काबूके नहीं, इन्हें सरकार मुक्ति दें।

नोट—२ (क) *'कहहिं बिभीषन तिन्हके नामा।'* इससे जनाया कि प्रभु पूछते हैं और वे बताते हैं। कुछके नाम बा० १८० में कहे हैं, यथा—*'कुमुख अकंपन कुलिसरद धूमकेतु अतिकाय। एक एक जग जीति सक ऐसे सुभट निकाय॥'* ये सब महा-महामुखिया जान पड़ते हैं। इनमेंसे जिस-जिसको पाया, उसे प्रभुके पास फेंक दिया। इनमें अनिप, अकंपन, अतिकाय नहीं थे। इनके नाम आगे आवेंगे—*'अनिप अकंपन अरु अति काया। बिचलत सेन कीन्हि इन्ह माया॥'* (४५। १०) वाल्मी०, अ० रा०, हनु०, भारत, पद्मपु० में ऐसा लेख नहीं मिला; पर कई स्थलोंपर राक्षसोंके रणभूमिमें आनेके समय श्रीरामजीका पूछना और विभीषणजीका बताना पाया जाता है। यथा प्रहस्तागमनपर—'**क एष सुमहाकायो बलेन महतावृतः। आगच्छति महावेगः किं रूपबलपौरुषः॥ आचक्ष्व मे महाबाहो वीर्यवन्तं निशाचरम्। राघवस्य वचः श्रुत्वा प्रत्युवाच विभीषणः॥**' (वाल्मी० ५८। २-३) ☞पर मानसके श्रीरामजी मुक्ति देनेके लिये नाम पूछते हैं। इससे गोस्वामीजीकी भक्ति झलक रही है। (ख) *'देहिं रामु तिन्हहूँ निज धामा'* इति। *'तिन्हहूँ'* अर्थात् ऐसे अधम और मनुष्योंके खानेवालोंको भी, यथा—*'खल मनुजाद द्विजामिषभोगी।'* भाव कि ऐसे अधम लोग सद्गतिके अधिकारी नहीं हैं। 'निज धाम'—सायुज्य-सालोक्यादि मुक्ति। रामधाम वैकुण्ठ, साकेत इत्यादि। —'**न तद् भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः। यद् गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम॥**' (गीता १५। ६) अर्थात् उसको न सूर्य प्रकाशित करता है, न चन्द्रमा और न अग्नि। जहाँ पहुँचकर फिर लौटना नहीं होता वह मेरा परम धाम है। आगे ४४ (३—५) देखिये। पंजाबीजीके मतानुसार गति देनेमें भाव यह है कि ये मेरे भक्तोंके हाथसे मरे हैं, और इन्हें कृतार्थ करनेके लिये मेरे पास उन्होंने इन्हें फेंका है, अतः मुक्ति देना योग्य है और भाव कवि स्वयं आगे देते हैं।

☞पूर्व कहा था कि *'पुनि कर गहि कंचन के खंभा। कहेन्हि करिय उत्पात अरंभा॥'* पर इनके द्वारा उत्पातका वर्णन स्पष्ट नहीं जान पड़ता कि कहाँ किया। वह उत्पात *'लागे मरदइ भुजबल भारी'* में कविने कहा है। *'करिय उत्पात अरंभा'* कहकर फिर तीन अर्धालियों और एक दोहेमें उत्पातका स्वरूप कहा। ये आठ प्रकारके हैं—

१ गर्जे—*'गरजि परे रिपु कटक मँझारी'*
२ भारी भुजबलसे मर्दन किया।
३ किसीको लातसे मारा।
४ किसीको तमाचा-थप्पड़से मारा।
५ निशिचरोंको पकड़कर आपसमें रगड़कर मार डाला।
६ सिर धड़से मरोड़कर अलग किया।
७ मुण्डको रावणके आगे फेंकते हैं।
८ महा-महामुखियोंको सिरसहित प्रभुके पास फेंकते हैं।

खल मनुजाद द्विजामिष भोगी। पावहिं गति जो जाचत जोगी॥ ३॥
उमा राम मृदु चित करुनाकर। बयरु* भाव मोहि सुमिरत निसिचर॥ ४॥
देहिं परमगति सो जिय जानी। अस कृपाल को कहहु भवानी॥ ५॥

अर्थ—मनुष्योंके खानेवाले और ब्राह्मण-मांस-भोजी खल निशिचर वह उत्तम गति पाते हैं जिसकी

* 'बैर भाव सुमिरत मोहि'—(का०, द्वि०)।

योगी याचना करते हैं (माँगते हैं)॥ ३॥ हे उमा! रामचन्द्रजी कोमलचित्त और करुणाकी खानि हैं। निशिचर मुझे वैरभावसे स्मरण करते हैं, ऐसा जीमें समझकर प्रभु उन्हें सर्वोत्तम गति देते हैं। हे भवानी! कहो तो, ऐसा कृपालु कौन है?॥ ४-५॥

नोट—१ *'खल मनुजाद द्विजामिष भोगी'* इति। (क) 'खल' का भाव कि जितने खलोंके अवगुण ग्रन्थमें कहे गये हैं वे सब इनमें हैं। भुशुण्डिजीने इनका लक्षण दो चरणोंमें ही कह दिया है, यथा—***'खल बिनु स्वारथ पर अपकारी। अहि मूषक इव सुनु उरगारी॥'*** (७। १२१। १८) (ख) ***'गति जो जाचत जोगी'*** इति। योगी अर्थात् मान-मोहरहित, सङ्ग-दोषको जीते हुए, अध्यात्मनिष्ठ, कामनारहित, सुखदु:खादि द्वन्दोंसे विमुक्त ज्ञानी लोग, प्रभुके अविनाशी पदको प्राप्त होते हैं। यथा—'**निर्मानमोहा जितसङ्गदोषा अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः। द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुखदुःखसंज्ञैर्गच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययं तत्॥**' (गीता १५। ५) (ग) ऊपर यह कहकर कि *'देहिं रामु तिन्हहूँ निज धामा'* (४४। २) *'पावहिं गति जो जाचत जोगी',* फिर आगे शिवजी कहते हैं कि *'देहिं परम गति सो जिय जानी।'* इस प्रकार 'निज धाम', *'गति जो जाचत जोगी'* और 'परम गति' तीनों पर्याय हुए। (घ) *'जाचत जोगी।'* भाव कि यत्न करके प्राप्त करना योगियोंको भी दुर्लभ है (दूसरोंकी क्या कही जाय), यथा—***'जोगिबृंद दुर्लभ गति जोई। तो कहुँ आजु सुलभ भइ सोई॥'*** (३। ३६। ८) ***'जिति पवन मन गो निरस करि मुनि ध्यान कबहुँक पावहीं ,*** इत्यादि। दुर्लभता देखकर योगीजन प्रभुकी शरण हो उनसे प्रार्थना करके माँगते हैं। यहाँ 'प्रथम विषमालंकार' है।

नोट—२ ☞ अरण्यकाण्डमें गृध्रराजके सम्बन्धमें भी कविने *'गति दीन्हीं जो जाँचत जोगी'* यह चरण ज्यों-का-त्यों दिया है। यथा—***'गीध अधम खग आमिष भोगी। 'गति दीन्ही जो जाँचत जोगी।'*** ज्यों-का-त्यों वही चरण लिखनेका भाव कि दोनों जगह गति पानेवाले एक ही तरहके हैं और दोनोंको अहैतुकी कृपासे ही गति दी गयी।—

निशिचर		गृध्रराज
खल मनुजाद द्विजामिषभोगी	१	*गीध अधम खग आमिष भोगी॥*

खल अधम होते हैं। यथा—***'ऐसे अधम मनुज खल कृतजुग त्रेता नाहिं।'***

उमा रामु मृदुचित करुनाकर	२	*कोमल चित अति दीनदयाला।*
अस कृपालु को कहहु भवानी	३	*बिनु कारन रघुनाथ कृपाला॥*

नोट—३ मृदु और कोमल पर्याय हैं। चित्त कोमल है इसलिये दूसरेका दु:ख सह नहीं सकते। दोनों दीन हैं अर्थात् अपने स्वभावसे गति पाने योग्य नहीं हैं। अत: करुणा करके उनको इस बहानेसे सद्गति देते हैं कि निशिचर वैरभावसे हमारा स्मरण करते हैं। वस्तुत: यह कारणरहित कृपालुता है! 'करुणाकर' और 'अस कृपालु को' पदोंसे 'अति दीनदयाल' और 'कारणरहित कृपाल' दोनों जनाये।

नर मतिमंद ते परम अभागी	४	*सुनहु उमा ते लोग अभागी।*
अस प्रभु सुनि न भजहिं भ्रम त्यागी	५	*हरि तजि होहिं बिषय अनुरागी।*
	६—	*गति दीन्ही जो जाचत जोगी।*

नोट—४ ***'बयरु भाव मोहि सुमिरत.......'*** इति। (क) प्रथम 'करुणाकर' विशेषण दिया। अब उसका स्वरूप कहते हैं। करुणा हुई तो अब उनका दु:ख दूर करनेकी चिन्ता हुई, पर वे अधम हैं, अधमकी गति होती नहीं, यह वेदवाक्य है।* यथा—'रहु ***अधमाधम अधगति पाई।'*** (७। १०७; शिवोक्ति) अत: उसके

* दूसरोंकी आत्माको दु:ख देनेवालोंकी गति, यथा—'नर सरीर धरि जे पर पीरा। करहिं ते सहहिं महा भव भीरा॥' (७। ४१। ३)

''ये त्वनेवंविदोऽसन्तः स्तब्धाः सदभिमानिनः। पशून्द्रुह्यन्ति विस्रब्धाः प्रेत्य खादन्ति ते च तान्॥ द्विषन्तः परकायेषु स्वात्मानं हरिमीश्वरम्। मृतके सानुबन्धेऽस्मिन्बद्धस्नेहाः पतन्त्यधः॥' (भा० ११। ५। १४-१५) अर्थात् जो इस प्रकार न

लिये यह कारण अपने जीसे निकाला कि वैर-भावसे हमारा स्मरण ये करते रहे हैं—इसीसे *'सो जिय जानी'* पद दिया। और, इस निमित्तसे उनको मुक्ति दी। पुनः, (ख) *'सो जिय जानी'* का दूसरा भाव कि वे ही ऐसा जानते हैं, दूसरा कोई इस भावको नहीं जानता। (ग) *'अस कृपालु को कहहु।'* अर्थात् ऐसा करुण-स्वभाव किसी औरका नहीं है कि कृपा करनेका एक बहाना स्वयं निकालकर कृपा करे। 'कहहु' का भाव कि हमें तो कोई देख या सुन न पड़ा, यदि तुम जानती हो तो बताओ। आशय यह है कि है ही नहीं, तो बताओगी कहाँसे। रामके समान कृपालु राम ही हैं, दूसरा नहीं। इसीसे सुग्रीवादिके प्रकरणोंमें 'अति कृपालु' ही कहा और यहाँ अनुपम कृपालुता कही। इससे हद है। (घ) आदिमें 'उमा' और अन्तमें 'भवानी' सम्बोधन देकर यह सम्पुट वाक्य शिवजीका जनाया। पुनः, श्रीरामजीका करुण स्वभाव दिखाते समय 'उमा' सम्बोधन दिया और उनसे प्रश्न करनेमें 'भवानी'। भेदका भाव कि 'उमा' तनमें भ्रम हुआ था। उस भ्रमकी निवृत्तिके लिये स्वभावका परिचय देनेमें 'उमा' सम्बोधन दिया। और 'भवानी' नित्य-सम्बन्ध सूचक नाम है। भवानी=भव (शङ्कर) की पत्नी, अर्थात् जबसे 'भव' तबसे 'भवानी'। इस सम्बोधनसे जनाया कि तुम भी तो सर्वज्ञ, नित्या और त्रिकालज्ञा हो, अतः कहीं हो तो कहो।

अस प्रभु सुनि न भजहिं भ्रम त्यागी। नर मतिमंद ते परम अभागी॥ ६॥

अर्थ—यह सुनकर भी (कि ऐसा कोमलचित्त और करुणामय कृपालुस्वभाव दूसरा नहीं है) जो भ्रम छोड़कर ऐसे प्रभुका भजन नहीं करते वे मनुष्य मन्दबुद्धि और परम भाग्यहीन हैं॥ ६॥

नोट—१ (क) *'सुनि'*। ग्रन्थों, संतों इत्यादिसे इन वचनोंको सुनकर। (ख) *'न भजहिं भ्रम त्यागी।'* प्रथम *'न भजहिं'* कहकर फिर उसका कारण 'भ्रम' कहा, तब भ्रमका त्यागना कहा; क्योंकि भ्रम रहते भजन नहीं होता और भ्रमके छूटनेपर ही भजन होता है, यथा—*'अस निज हृदय बिचारि तजु संसय भजु रामपद। सुनु गिरिराजकुमारि भ्रम तम रबिकर बचन मम॥'* (१। ११५), *'होइ बिबेक मोह भ्रम भागा। तब रघुनाथ चरन अनुरागा॥'* (२। ९३। ५)

नोट—१ (क) *'न भजहिं'* अतः 'मतिमंद' और 'अभागी' हैं। यथा—*'गिरिजा ते नर मंदमति जे न भजहिं श्रीराम।'* (७०) पुनः, भाव कि वे मायाके वशमें पड़े हैं, उनके हृदयपर परदा पड़ा है, इसीसे भ्रममें पड़े हैं, यथा—*'मायाबस मतिमंद अभागी। हृदय जवनिका बहु बिधि लागी॥ ते सठ हठबस संसय करहीं।'* (७। ७३) ☞मिलान कीजिये—*'जे न भजहिं अस प्रभु भ्रम त्यागी। ज्ञान रंक नर मंद अभागी॥'* (३। ४५। ३), *'ते मति मंद जे राम तजि भजहिं जाइ प्रभु आन।'* (लं०। ३), *'सुनहु उमा ते लोग अभागी। हरि तजि होहिं बिषय अनुरागी॥'* (३। ३३। ३) औरोंको प्रभुके समान या प्रभुसे अधिक मानना, यही 'भ्रम' है। (रा० प्र०)। यहाँ प्रथम निदर्शना अलंकार है। (ख) ☞*'परम अभागी'* का भाव कि जो हरिभजन अज्ञतावश नहीं करते, वे 'अभागी' हैं—*'सुनहु उमा ते लोग अभागी। हरि तजि होहिं बिषय अनुरागी॥'* जो प्रभुका स्वभाव सुनकर फिर भी भ्रमको नहीं छोड़ते और न भजन करते हैं वे 'परम अभागी' हैं। इसी प्रकार जो श्रीरामानुरागी हैं वे सब बड़भागी हैं और अत्यन्त नीच, अधम पतित होकर भी प्रभुके चरणस्पर्शकी जिनको प्राप्ति हुई (जैसे अहल्या, केवट, शबरी आदि), जिन्होंने श्रीरामजीके लिये शरीर न्योछावर कर दिया एवं जिनके प्रभु ऋणी बने इत्यादि, वे 'परम बड़भागी' हैं, यथा—*'अतिसय बड़भागी चरनन्हि लागी जुगल नयन जलधार बही'*—(अहल्याजी); *'रामकाज कारन तनु त्यागी। हरिपुर गएउ परम बड़भागी'*—(गृध्रराजजी), *'हनूमान सम नहिं बड़भागी। नहिं कोउ रामचरन अनुरागी॥ गिरिजा जासु प्रीति सेवकाई। बारबार प्रभु निज मुख गाई॥'* (५०। ८-९)

जाननेवाले असज्जन अपनेको सज्जन मानते हुए खुश होकर पशुओंको मारते हैं, मरनेपर वे पशु उनको खाते हैं। दूसरोंके शरीरोंमें रहनेवाले अपने आत्मा ईशसे द्वेष करनेवाले परिवारादिके सहित इस शरीरमें स्नेहबद्ध होकर अधःपातको प्राप्त होते हैं अर्थात् नरकादिको जाते हैं।

अंगद अरु हनुमंत प्रबेसा। कीन्ह दुर्ग अस कह अवधेसा॥ ७॥
लंका दोउ कपि सोहहिं कैसे। मथहिं सिंधु दुइ मंदर जैसे॥ ८॥

अर्थ—अवधपति श्रीरामजीने (सुग्रीव, विभीषणादिसे) ऐसा कहा कि अङ्गद और हनुमान् किले (वा कोट) में घुस गये॥ ७॥ दोनों कपि लंकामें कैसे शोभित हो रहे हैं जैसे दो मन्दराचल समुद्रको मथ रहे हों॥ ८॥

नोट—१ *'अस कह अवधेसा'* इति। (क) हनुमान्-अङ्गद जब रावणके महलपर चढ़े थे तब उन्होंने दोहाई की थी। जिसकी दोहाई दी जाती है वह सहायक होता है। दोहाई देनेमें *'कोसलाधीस'* पद दिया। वहाँ कोसलाधीशकी दोहाई की गयी और यहाँ अवधेशने जाना (और सहायता की)।

लंकामें	यहाँ सुवेलपर
१ *रावन भवन चढ़े दोउ धाई।*	*अंगद अरु हनुमंत प्रबेसा।*
२ *करहिं कोसलाधीस दोहाई।*	*कीन्ह दुर्ग अस कह अवधेसा॥*
३ *गर्जि परे रिपु कटक मझारी।*	*लंका दोउ कपि सोहहिं कैसे।*
४ *लागे मरदइ भुजबल भारी॥*	*मथहिं सिंधु दुइ मंदर जैसे॥*

नोट—२ *'अस कह'* से कवितावलीका यह भाव भी सूचित होता है कि प्रभु यह लक्ष्मणजी आदिसे कह रहे हैं कि देखो वे कैसा पराक्रम कर रहे हैं। कवितावलीके निम्न पदोंसे *'मथहिं सिंधु……'* के भाव स्पष्ट हो जाते हैं, अत: वे यहाँ उद्धृत किये जाते हैं—

'दुर्गम दुर्ग पहार तें भारे प्रचंड महा भुजदंड बने हैं। लक्खमें पक्खर तिक्खन तेज जे सूर समाजमें गाज गने हैं॥ ते बिरुदैत बली रन बाँकुरे हाँकि हठी हनुमान हने हैं। नाम लै राम दिखावत बंधुको घूमत घायलघाय घने हैं॥'

हाथिन सों हाथी मारे घोरे घोरे सों सँहारे रथनि सों रथ बिदरनि बलवान की।
चंचल चपेट चोट चरन चकोट चाहैं हहरानी फौजैं भहरानी जातुधान की॥
बार बार सेवक-सराहना करत राम, तुलसी सराहै रीति साहेब सुजान की।
लाँबी लूम लसत लपेटि पटकत भट देखौ देखौ, लषन! लरनि हनुमानकी॥
दबकि दबोरे एक बारिधिमें बोरे एक, मगन मही में एक गगन उड़ात हैं।
पकरि पछारे कर चरन उखारे एक, चीरि फारि डारे, एक मींजि मारे लात हैं॥
तुलसी लखत राम रावन बिबुध बिधि, चक्रपानि चंडीपति चंडिका सिहात हैं।
बड़े बड़े बानइत बीर बलवान बड़े जातुधानु जूथप निपाते बातजात हैं॥

(क० लं० ३९—४१)

नोट—३ *'मथहिं सिंधु दुइ मंदर जैसे'* इति। (क)—यहाँ दुर्गकी गहराई सिन्धुकी गहराई है, शत्रुकी सेना दुर्ग-सिन्धुका जल है, अङ्गद और हनुमान् दो मन्दराचल हैं, चारों ओर हाथ चलाते घूमते हैं यही मन्दराचलका घूमना है, वहाँ समुद्रजलका मन्थन, यहाँ सेनाका मन्थन है। सागर मथनेपर रत्न निकले। यहाँ महा-महा-मुखिया-रूपी रत्न निकले जिनको प्रभुने अङ्गीकार कर लिया। वहाँ एक मन्दर था तब चौदह रत्न निकले थे, यहाँ दो हैं इससे अनेक रत्न निकले। वहाँ भगवान्‌के सहारे मन्दराचल था, यहाँ रामप्रतापके बलपर ये दोनों वीर हैं—*'रामप्रताप सुमिरि उर अंतर।'* (ख)—उदाहरण शोभा दिखानेका दिया गया है। जैसे मन्दर समुद्रके बीचमें मथते समय शोभायमान था वैसे ही ये निशाचरसेनाको मन्थन करते हुए शोभाको प्राप्त हैं। मन्दराचल कनकवर्ण और सिन्धुका जल देखनेमें श्याम वैसे ही ये वानर कनकवर्ण पर्वताकार और निशिचर काले। दोनोंका मन्थन सुर और साधुके हितार्थ हुआ।

दो०—भुजबल रिपुदल दलमलि देखि दिवस कर अंत।
कूदे जुगल बिगत* श्रम आए जहँ भगवंत॥ ४४॥

* प्रयास बिनु।—(का०)।

शब्दार्थ—दलमलना=मसल वा मीड़ डालना, नष्ट करना।

अर्थ—बाहुबलसे शत्रुसेनाको दलमलकर और दिनका अन्त (समाप्ति) देख दोनों बिना परिश्रम (लीला-पूर्वक) कूदे और वहाँ आये जहाँ भगवान् रामजी थे॥ ४४॥

नोट—१ *'गर्जि परे रिपु कटक मँझारी। लागे मरदै भुजबल भारी॥'* (४३। ७) उपक्रम है और *'भुजबल रिपुदल दलमलि"""। कूदे जुगल बिगत श्रम"""॥'* उपसंहार है। पुनः, *'कूदि लंकगढ़ ऊपर आवा।'* (४२। ६) और*'तरकि चढ़ेउ कपिखेल।'* (४२) उपक्रम और *'कूदे जुगल बिगत श्रम'* उपसंहार है।

नोट—२ *'कूदे जुगल बिगत श्रम"""।'* इति। (क) प्रथम पूर्वार्द्धमें दो बातें कहकर तब कूदना कहा। भाव कि शत्रुसेनाका नाश करके तब कूदे, शत्रुसेना रहते नहीं लौटे, नहीं तो समझा जाता कि डरकर भागे। अतः *'भुजबल रिपुदल दलमलि कूदे'* कहा। पुनः *'देखि दिवस कर अंत कूदे'* अर्थात् दिन रहते कूदते तो भी भागे समझे जाते; क्योंकि दिनके रहते एक दलके नाश होनेपर दूसरी सेना आकर सहायक होती, यह सम्भव था; पर अब रात होने आयी, सन्ध्या एवं रातमें लड़ाई बंद रहती है, अतः दिनका अन्त देख लौटना कहा। यथा—*'दिनके अंत फिरीं दोउ अनी।'* (७१। १), *'संध्या भई फिरीं दोउ वाहनी। लगे सँभारन निज निज अनी॥'* (५४। ४) (ख) *'बिगतश्रम'* 'कूदे' का विशेषण है। भाव कि सेनाके मर्दन करनेमें परिश्रम हुआ है। यथा—*'राम कृपा करि जुगल निहारे। भए बिगत श्रम परम सुखारे॥'* (४५। २) अतएव गढ़के भीतर कूदकर बाहर आनेमें श्रम पड़ना स्वाभाविक ही समझा जायगा, इसीसे वक्ता लोगोंने 'बिगतश्रम' पद दिया अर्थात् थके होनेपर भी इन्हें कूदनेमें परिश्रम किंचित् नहीं हुआ। इसी भावसे सुन्दरकाण्डमें हनुमान्‌जीके विषयमें कहा है कि *'बोला बचन बिगत अभिमाना।'* वहाँ भी अभिमान होनेका कारण उपस्थित था, लंकादहनरूपी बड़ा कार्य करने और सबसे प्रशंसा पानेपर किसको अभिमान न होता, पर इनको न हुआ।

☞मिलान कीजिये—'**स तु पवनसुतो निहत्य शत्रून्क्षतजवहाः सरितश्च संविकीर्य। रिपुवधजनितश्रमो महात्मा मुदमगमत्कपिभिः सुपूज्यमानः॥**' (वाल्मी० ५२। ३८) '**निहत्य तं वज्रधरः प्रतापवान्स वालिसूनुः कपिसैन्यमध्ये। जगाम हर्षं महितो महाबलः सहस्रनेत्रस्त्रिदशैरिवावृतः॥**' (५४। ३७)

वह पवनसुत शत्रुओंको मारकर अपने शरीरपरके घावसे निकलते हुए रुधिरको बंदकर, शत्रुवध करनेसे श्रमको प्राप्त वानरोंसे पूजित हनुमान्‌जी आनन्दको प्राप्त हुए। वज्रधर प्रतापवान् बालिपुत्र उसको मारकर वानरी सेनासे पूजित वह महाबलवान्, देवताओंसे आवेष्टित इन्द्रके समान हर्षको प्राप्त हुए।

प्रभु पद कमल सीस तिन्ह नाए। देखि सुभट रघुपति मन भाए॥ १॥
राम कृपा करि जुगल निहारे। भए बिगत श्रम परम सुखारे॥ २॥

अर्थ—प्रभुके चरण-कमलोंमें उन्होंने मस्तक नवाया। यह देखकर कि वे उत्तम योद्धा हैं (वा, सुभटोंको देखकर) वे रघुनाथजीके मनमें अच्छे लगे॥ १॥ श्रीरामचन्द्रजीने कृपादृष्टिसे दोनोंको देखा। अतः वे श्रमरहित और परम सुखी हुए॥ २॥

नोट—१ *'प्रभु पद कमल सीस तिन्ह नाए'* इति। ☞कोई विशेष कार्य करनेके लिये जब-जब समीपवर्ती योद्धाओंका जाना और जय प्राप्त करके आना कहा है तब-तब प्रभुके पास लौट आनेपर उनका प्रणाम भी कहा गया है। जब केवल युद्धके बीचमें सहायक हुए हैं तब प्रभुके पास उनका लौटनाभर कहा गया, प्रणाम नहीं।

१ सीता-शोधके बाद—	*'फटिक सिला बैठे"""। परे सकल कपि चरनन्हि जाई।'*
२ अङ्गद दौत्य कर्मके बाद—	*'रिपुबल धरषि हरषि कपि बालितनय बल पुंज। पुलक सरीर नयन जल गहे रामपद कंज॥'*
३ रावणको मूर्च्छित करके—	*'रघुबीरबंधु प्रतापपुंज बहोरि प्रभु चरनन्हि नयो॥'*

☞मेघनादवधपर लौटे तब कहा कि *'लछिमन कृपासिंधु पहिं आए'*, प्रणाम नहीं कहा। पर यहाँके *'बहोरि'* पदसे पूर्व, रावणसुतवधपर भी प्रणाम किया जाना ले सकते हैं। उनके विषयके ये ही दो स्थल मानसमें कहे गये हैं।

१ श्रीसुग्रीवजी कुम्भकर्णके नाक-कान काटकर आये तब केवल जय बोली	*'पुनि आएउ प्रभु पहिं बलवाना। जयति जयति जय कृपानिधाना॥'* (६५। ८)
२ अङ्गदजी रावणसे देवरक्षा करके—	*'बालिसुत प्रभु पहिं गयउ'*—(९६ छन्द)
३ विभीषन श्रमित लौटे—	*गयउ बिभीषनु जहँ जनत्राता'*—(९४। ३)
४ जाम्बवन्त रावणको मूर्च्छित करके लौटे	*'पद हति भालुपति प्रभु पहिं गयउ'*—(९७ छन्द)

नोट—२ *'देखि सुभट रघुपति मन भाए'* इति। अबतक जो-जो कार्य श्रीहनुमान्‌जी और अङ्गदजीद्वारा हुए वे सुननेपर मालूम हुए थे। यथा—*'पवन तनय के चरित सुहाए। जामवंत रघुपतिहि सुनाए॥'* (सुं० ३०), *'कहु कपि रावनपालित लंका। केहि बिधि दहेउ दुर्ग अति बंका॥'* (सुं० ३३। ५), *'बालितनय कौतुक अति मोही। तात सत्य कहु पूछउँ तोही॥'* (३७। ५)*'.......समाचार पुनि सब कहे गढ़ के बालिकुमार॥'* (३७)

यहाँ आज युद्धका प्रथम दिन है और प्रभुने स्वयं उनका निशिचरसेनाको मर्दन करना सुबेलपरसे देखा है, यथा—*'अंगद अरु हनुमंत प्रबेसा। कीन्ह दुर्ग अस कह अवधेसा॥.......मथहिं सिंधु दुइ मंदर जैसे।'* (४४। ७८)

अतः *'देखि सुभट'* पद दिया। आज देखकर इनको उत्तम योद्धा जानकर प्रसन्न हुए। अथवा, हनुमान्-अङ्गदका प्रवेश इससे जाना कि इतनी दूर और ऐसे महामुखियोंको फेंकना दूसरेसे सम्भव न था। उस हालतमें उनके कार्यसे उन्हें सुभट जानते हैं। पूछनेकी जरूरत न पड़ी।

नोट—३ *'भए बिगत श्रम।'* शत्रुसेनाके दलनमें जो थकावट हुई, वह अब कृपादृष्टिसे दूर हुई। दोहा ४४ देखिये। यहाँ राम-कृपासे दो कार्य हुए। एक तो श्रमरहित, दूसरे परम सुखी।

गए जानि अंगद हनुमाना। फिरे भालु मर्कट भट नाना॥ ३॥
जातुधान प्रदोष बल पाई। धाए करि दससीस दोहाई॥ ४॥

शब्दार्थ—**प्रदोष**=सन्ध्याकाल। सूर्यास्त होनेके समयसे रात्रिके आगमनतकका समय **'प्रदोषो रजनीमुखम्'** (अमरकोश) (बं० पा०)।

अर्थ—श्रीअङ्गद और हनुमान्‌जीको (गढ़से वा रणभूमिसे बाहर) गये हुए जानकर अनेक रीछ और वानर योद्धा लौट पड़े॥ ३॥ राक्षस प्रदोषकालका बल पाकर दशशीशकी दोहाई देते हुए दौड़े॥ ४॥

नोट—१ *'गए जानि अंगद.........'* इति। (क) पहले श्रीहनुमान् और अङ्गदजी इन दो सुभटोंका फिरना कहा, *'देखि सुभट रघुपति मन भाए'*, अब भटोंका। (ख) *'गए जानि'* का भाव कि ये भट इनके ही बलपर इतनी देरतक लड़ते रहे, नहीं तो वे कबके भाग आये होते, यथा—*'भय आतुर कपि भागन लागे।.........कोउ कह कहँ अंगद हनुमंता।'* हनुमान् और अङ्गद दोनों सहाय हुए तब ये भी डट गये।

नोट—२ *'प्रदोष बल पाई।'* (क) प्रदोषकालमें निशिचरोंका बल वृद्धिको प्राप्त होता है इसीसे प्रदोष-समय पाकर रावणको भी हर्ष हुआ है, यथा—*'हनुमदादि मुरुछित करि बंदर। पाइ प्रदोष हरष दसकंधर॥'* (९७। ११) पुनः, (ख) 'प्रदोषबल पाकर धाए' का भाव कि वे वानरोंसे हारनेपर प्रदोषकालकी राह देखते रहे थे कि कब हो जो हम इनपर प्रबल पड़ें। यथा—**'निहन्यमाना हरिपुंगवैस्तदा निशाचराः शोणितगन्धमूर्च्छिताः। पुनः सुयुद्धं तरसा समाश्रिता दिवाकरस्यास्तमयाभिकाङ्क्षिणः॥'** (वाल्मी० ४३—४६)

नोट—३ (क) *'धाए करि दससीस दोहाई'*, यह *'रावन भवन चढ़े दोउ धाई। करहिं कोसलाधीस दोहाई॥'* (४३। २) का उत्तर है। [राक्षस वानरोंको परास्त करना चाहते ही थे। अन्धकारके योगसे वह कार्य उन्हें सुगम हो गया—'समाधि अलंकार' है। (वीरकवि) अँधेरेमें राक्षस बली हो जाते हैं। कालेमें काले मिल जाते हैं और वानरोंको रातमें दिखायी नहीं देता। समरमें तो कुछ बल न चला, इससे अब अधर्मयुद्ध करनेपर उद्यत हुए। (बं० पा०)]

निसिचर अनी देखि कपि फिरे। जहँ तहँ कटकटाइ भट भिरे॥५॥
द्वौ दल प्रबल पचारि पचारी। लरत* सुभट नहिं मानहिं हारी॥६॥

अर्थ—निशिचर-सेनाको देखकर वानर लौट पड़े और जहाँ-तहाँ दाँत कटकटाकर (क्रोधसे) वे योद्धा भिड़ गये॥ ५॥ दोनों दल प्रबल हैं, ललकार-ललकारकर सुभट लड़ते हैं, हार नहीं मानते॥ ६॥

वि० त्रि०—*'निसिचर अनी·········भिरे'* इति। दिनका अन्त जानकर अङ्गद-हनुमान् लौटे। इनके लौटनेसे वानरी सेनाने समझ लिया कि आजका काम समाप्त हो गया, इसलिये वह भी लौट पड़ी। तब पीछेसे रावणके नामका जयकार सुनायी पड़ा। घूमकर देखा तो निशाचरी सेना धावा करती चली आ रही है। तब तो वानरी सेना भी लौट पड़ी। उसे बड़ा क्रोध हुआ कि हम सब तो लड़ाई बंद समझकर लौट रहे हैं और ये सब ऐसा रूपक बाँध रहे हैं मानो हम भागे जा रहे हैं, और वीर लोग कटकटाकर भिड़ गये। बंदरोंके क्रोध करनेको कटकटाना कहते हैं।

पं०, पु० रा० कु०—१ *'द्वौ दल प्रबल·······।'* इति। भाव कि निशिचर तो प्रदोषबल पाकर प्रबल हैं और कपि जय पाये हुए होनेसे प्रबल हैं। इसीसे दोनोंका परस्पर ललकारना कहा।

पु० रा० कु०—२ *'नहिं मानहिं हारी'* पदसे दोनों दलोंकी शूरता, उत्साह (तथा वीररसके आवेशसे परस्पर जयकी इच्छा) दिखायी, यथा—*'गहि मंदर बंदर भालु चले सो मनो उनये घन सावन के। तुलसी उत झुंड प्रचंड झुके झपटैं भट जे सुरदावन के॥ बिरुझे बिरुदैत जे खेत अरे न टरे हठि बैर बढ़ावन के। रन मारि मची उपरी-उपरा भिरे बीर रघुप्पति रावन के॥ सर तोमर सेल समूह पवारत मारत बीर निसाचर के। इत तें तरु ताल तमाल चले खर खंड प्रचंड महीधर के। तुलसी करि केहरिनाद भिरे भट खग्ग खगे खपुआ खरके। नख दंतन सों भुजदंड बिहंडन रुंड सों मुंड परे झर के॥'* (कवित्तरामायण ३४-३५), *'अन्योन्यं बद्धवैराणां घोराणां जयमिच्छताम्। सम्प्रवृत्तं निशायुद्धं तदा वानररक्षसाम्॥'* (वाल्मी० ४४। २)

☞मिलान कीजिये—*'राक्षसोऽसीति हरयो वानरोऽसीति राक्षसाः। अन्योन्यं समरे जघ्नुस्तस्मिंस्तमसि दारुणे॥ हत दारय चैहीति कथं विद्रवसीति च। एवं सुतुमुलः शब्दस्तस्मिन्सैन्ये तु शुश्रुवे॥'* (वाल्मी० ४४। ३-४) अर्थात् वानर पूछते हैं, क्या तुम राक्षस हो, राक्षस पूछते हैं कि क्या तुम वानर हो? उस भयंकर अन्धकारमें युद्धमें (इस तरह पूछ-पूछकर) परस्पर एक-दूसरेको मारने लगे। उस सेनामें—मारो, काटो, यहाँ आओ, क्यों भागते हो?—इस तरहका द्वन्द्व शब्द सुनायी पड़ता था।

महाबीर निसिचर सब कारे†। नाना बरन बलीमुख भारे॥६॥
सबल जुगल दल सम बल जोधा। कौतुक करत लरत करि क्रोधा॥७॥
प्राबिट सरद पयोद घनेरे। लरत मनहु मारुत के प्रेरे॥८॥

शब्दार्थ—बलीमुख (वलिमुख)=बंदर। यथा—*'चली बलीमुख सेन पराई।'* प्राबिट (प्रावृट्)=वर्षाऋतु, पावस। प्रेरित=चलाये हुए। पयोद=मेघ।

अर्थ—सब निशिचर महावीर और काले हैं तथा वानर भारी-भारी शरीरके एवं अनेक रंगके हैं॥६॥ दोनों ही दल बलवान् हैं तथा योद्धा बराबर बलवाले हैं। वे क्रोध करके लड़ते हैं और कौतुक करते हैं॥७॥ (वानर और निशिचर परस्पर लड़ते हुए ऐसे मालूम होते हैं) मानो वर्षा और शरद्के बहुत-से मेघ पवनसे प्रेरित होकर लड़ रहे हैं॥८॥

नोट—१ (क) *'बलीमुख भारे।'* वानरोंका भारी शरीर दिखानेमें 'बलिमुख' बड़ा भारी शब्द दिया। *'नाना बरन'*—*'नाना बरन सकल दिसि देखिअ कीस बरुथ।'* (कि० २१) देखिये। (ख) *'सबल जुगल*

* लरहिं (का०)।
† 'बीर तमीचर सब अति कारे'—(का०)। रा० प० में उपर्युक्त पाठ है।

दल' से दोनों सेनाओंको बलवान् कहा, यह समष्टि बल कहा गया। पर इससे यह नहीं सिद्ध होता कि प्रत्येक योद्धा उसमें बलवान् है, अतः फिर *'सम बल जोधा'* से व्यष्टि बल कहा।

नोट—२ *'प्राबिट सरद पयोद घनेरे।'''''''* इति। शरद्‌के मेघ अनेक रंगके होते हैं, वैसे ही यहाँ वानर अनेक रंगके हैं। (पं०, पु० रा० कु०) जैसे वर्षाकालके मेघ काले, वैसे ही यहाँ निशिचर काले। निशिचर भी बहुत, वानर भी बहुत, अतः मेघ भी *'घनेरे'* कहे। पवनके झकोरेसे बादल लड़ते हैं, वैसे ही यह परस्पर विरोधभावमें बद्ध वीररसमें पगे जयकी इच्छासे लड़ रहे हैं।

शीला—*'प्राबिट सरद''''''''* की उत्प्रेक्षाका दूसरा भाव यह है कि वर्षाके अन्तका दिन और शरद्‌के आदिका दिन दोनों एकत्र होते हैं। इस तरह दोनों ऋतुओंका समागम कहकर यहाँ निशाचरोंका अन्त और वानरोंका उदय जनाया।—(यह अनुक्तविषयावस्तूत्प्रेक्षा है—वीर)

अनिप अकंपन अरु अति काया। बिचलत सेन कीन्हि इन्ह माया॥ ९॥
भएउ निमिष महँ अति अँधियारा। बृष्टि होइ रुधिरोपल छारा॥ १०॥

अर्थ—अनिप, अकंपन और अतिकाय, इन वीरोंने अपनी सेनाके पैर उखड़ते देख माया की॥ ९॥ पलभरमें ही अत्यन्त अँधेरा हो गया, खून, पत्थर और राख वा छरोंकी वृष्टि होने लगी॥ १०॥

नोट—१ *'अति अँधियारा।'* भाव कि प्रदोषकाल होनेसे अँधेरा तो पूर्व ही हो चला था, अब मायासे *'अति अँधियारा'* हो गया। अँधेरा किया कि जिससे वानरोंको कुछ सूझे नहीं। रुधिर बरसाया कि अङ्गमें लगनेसे ग्लानि हो, उपलसे अङ्गोंपर चोट पहुँचे और क्षारसे नेत्र बंद हो जायँ। (पं०)

नोट—२ *'बृष्टि होइ रुधिरोपल छारा'* इति। भाव कि अनिप रुधिर बरसाने लगा, अकम्पन पत्थर और अतिकाय राख—(पु० रा० कु०)।

दो०—देखि निबिड़ तम दसहु दिसि कपिदल भएउ खभार।
एकहि एकु न देखई* जहँ तहँ करहिं पुकार॥ ४५॥

अर्थ—दसों दिशाओंमें घोर घना अन्धकार देखकर कपिदलमें खलबली मच गयी। एकको एक (दूसरा) नहीं देख सकते, इसलिये जहाँ-तहाँ पुकार कर रहे हैं॥ ४५॥

नोट—प्रथम प्रदोषका अन्धकार था, फिर मायाका अन्धकार हुआ तब *'अति अँधियारा'* कहा, उसपर भी पत्थर और राखकी वर्षाका अन्धकार हुआ, तब *'निबिड़ तम'* कहा।—४४ (६) भी देखिये। 'निबिड़ तम' होनेसे शब्दमात्र सुन पड़ता था, कोई किसीको देख न पड़ता था, आपसमें अपने दलवाले लड़ जाते थे। यथा—*'संवृतानि च भूतानि ददृशुर्न रणाजिरे॥''''''शब्दश्च सुमहांस्तेषां नर्दतामभिधावताम्॥ श्रूयते तुमुले युद्धे न रूपाणि चकाशिरे। हरीनेव सुसंरुष्टा हरयो जघ्नुराहवे॥''''''''राक्षसा राक्षसांश्चापि निजघ्नुस्तिमिरे तदा।'* (अकम्पन-युद्ध वाल्मी० सर्ग ५५। २०-२३)। अर्थात् धूलके कारण कोई भी देख नहीं पड़ता था। वानरों और राक्षसोंके गर्जन और दौड़नेका बड़ा भारी कोलाहल ही उस तुमुल युद्धमें सुनायी दे रहा था, किन्तु किसीका रूप दिखायी नहीं देता था। उस भयंकर अन्धकारमें वानरोंके साथ वानर और राक्षस राक्षसोंके साथ युद्ध करने लगे थे, अपने-परायेकी पहिचान न हो पाती थी।

सकल मरमु रघुनायक जाना। लिए बोलि अंगद हनुमाना॥ १॥
समाचार सब कहि समुझाए। सुनत कोपि कपिकुंजर धाए॥ २॥

अर्थ—सब मर्म श्रीरघुनाथजीने जान लिया। तब अङ्गद और हनुमान्‌जीको बुला लिया॥ १॥ सब समाचार कहकर समझाया। समाचार सुनकर दोनों कपिश्रेष्ठ कोप करके दौड़े (धावा किया)॥ २॥

नोट—१ *'रघुनायक जाना', 'लिए बोलि अंगद''''''''* इति। विभीषणसे मायाका हाल जानकर अङ्गद

* देखिहि—(का०)।

और हनुमान्‌जीसे मायाका हाल बताया (म० मु० टी०)। अङ्गद और हनुमान्‌को बुलानेका कारण यह कि इनका वीर्य, पराक्रम अभी-अभी देख चुके हैं, ये विजय पाकर आये हैं। अथवा, यह युद्ध पश्चिम-दक्षिणद्वारपर ही है, जिधरका युद्ध इनको सौंपा गया था। अथवा, अकम्पन, अतिकाय दोनों रावणके पुत्र हैं, उनकी जोड़में इन दोनोंको भेजा (जो रावणके एक-एक पुत्रका वध कर चुके हैं)। (पं०)

नोट—२ *'सब कहि समुझाए।'* क्या कहकर समझाया? वही जो आगे करनेवाले हैं और जिसका वर्णन कवि करेगा (कि हम माया काटते हैं, तुम जाकर सबको सावधान करो, राक्षसोंको मारो); अत: **'समाचार सब'** की व्याख्या यहाँ नहीं की।

वि० त्रि०—समझाया कि *'जानि दिवस को अन्त जब आयो इत तुम दोय। लौट चली बानर अनी बिरत युद्ध ते होय॥ ताहि प्रचार्‍यौ दुर्ग ते उतरि निसाचर सेन। लरति करति माया जबहिं जीति न सक्यौ बलेन॥ एहि छन कपिदल अति बिकल दस दिसि लखि अँधियार। जाइ सँभारो सेन निज हनुमत बालिकुमार॥'*

पुनि कृपाल हँसि चाप चढ़ावा। पावक सायक सपदि चलावा॥ ३॥
भएउ प्रकास कतहुँ तम नाहीं। ग्यान उदय जिमि संसय जाहीं॥ ४॥

अर्थ—फिर कृपालु श्रीरामजीने हँसकर धनुष चढ़ाया और शीघ्र ही अग्निबाण चलाया॥ ३॥ (जिससे) उजाला हो गया, अँधेरा कहीं न रह गया, जैसे ज्ञानके उत्पन्न होनेसे संदेह जाते रहते हैं॥ ४॥

पु० रा० कु०—*'हँसि'* निरादर सूचित करता है। अर्थात् इस मायाको तुच्छ समझा। [हँसे कि जय पायी थी इसीसे ललकारकर लड़ने गये और इतनी ही मायासे डर गये। (पं०)] पावक-सायक=वह बाण जिसका देवता अग्नि है। आँखके देवता अग्निदेव हैं। आँखसे वानरोंको कुछ देख न पड़ा, इससे आँखके देवता अग्निका बाण चलाया। वानरोंके दु:खनिवारणका उपाय किया; इसलिये **'कृपाल'** कहा।

नोट—१ *'भएउ प्रकास'* से जनाया कि पावकास्त्रने तीन काम किये। (१) मायाकृत अन्धकार और मायाको नष्ट किया। (२) रात्रिमें भी प्रकाश कर दिया। (३) निशिचरोंका बल भी घटा दिया, क्योंकि उनका बल अन्धकारसे बढ़ता और प्रकाशसे घटता है—(गौड़जी)।

नोट—२ (क) *'ग्यान उदय जिमि संसय जाहीं,'* यथा—*'होइ बिबेकु मोह भ्रम भागा।'* (२। ९३। ५) यहाँ उदाहरण अलंकार है। ज्ञान आत्म-अनुभव है जो प्रकाशरूप है। संशय अज्ञान मायिक तमरूप है। (वं० पा०)

भालु बलीमुख पाइ प्रकासा। धाए हरषि बिगत श्रम त्रासा॥ ५॥
हनूमान अंगद रन गाजे। हाँक सुनत रजनीचर भाजे॥ ६॥

शब्दार्थ—**हाँक**—ललकार, दपट, डाँट, हुंकार, उत्साह दिलानेका शब्द—*'तुलसी उत हाँक दसानन देत अचेत भै बीर को धीर धरै।'*

अर्थ—रीछ और वानर प्रकाश पाकर श्रम और भयरहित होकर हर्षपूर्वक दौड़े॥ ५॥ हनुमान्‌जी और अङ्गदजी रणमें गर्जे। उनकी हाँक सुनते ही निशिचर भागे॥ ६॥

नोट—१ दोहेमें मायाकृत ५ बातें कहीं। (१) *निबिड़तम।* (२) *देखि तम।* (३) *भयउ खँभार।* (४) *एकहिं एक न देखहिं जहँ तहँ।* (५) *करहिं पुकार।* उन सबका पावकास्त्रसे नष्ट होना दिखाया। क्रमसे (१) *भएउ प्रकास कतहुँ तम नाहीं।* (२) *पाइ प्रकासा।* (३) *'हरषि'* (वहाँ हर्ष जाता रहा था, यहाँ हर्षित हुए)। (४) *'धाए'* (जो जहाँ था वहीं रह गया था) एवं *'बिगत श्रम'* हुए। (५) *'बिगत त्रास'* वहाँ डरके मारे पुकार मची थी।*'त्रास'* राक्षसी मायाका था।

नोट—२ *'भालु बलीमुख पाइ प्रकासा।.........'* इति। (क) ☞ यहाँपर बाणका वेग भी दिखाते हैं कि हनुमान् और अङ्गद समाचार सुनकर 'धाये', उसके बाद प्रभुने बाण चलाया; पर बाणने उनसे पहिले ही वहाँ पहुँचकर प्रकाश कर दिया, तब ये दोनों वहाँ पहुँचे। इसीसे प्रथम उनका 'धावना', फिर बाणका चलाना, तत्पश्चात् प्रकाश होना और अन्तमें हनुमान्-अङ्गदका रणमें गर्जना क्रमसे कहा। (ख)*'हाँक सुनत*

रजनीचर भाजे।' क्योंकि इनके बलकी परीक्षा तीन बार हो चुकी है। प्रत्येक बार बड़े-बड़े सुभट काम आये। और अभी-अभी इनकी मार देख चुके हैं।

भागत भट पटकहिं धरि धरनी। करहिं भालु कपि अद्भुत करनी॥ ७॥
गहि पद डारहिं सागर माहीं। मकर उरग झष धरि धरि खाहीं॥ ८॥

अर्थ—भागते हुए योद्धाओंको पकड़कर वे पृथ्वीपर धर पटकते हैं, इस प्रकार रीछ और वानर अद्भुत करनी कर रहे हैं॥ ७॥ राक्षसोंका पैर पकड़कर उन्हें समुद्रमें डाल देते हैं। वहाँ मगर, सर्प और मच्छ उन्हें पकड़-पकड़कर खा लेते हैं॥ ८॥

नोट—१ *'अद्भुत करनी'* इति। यथा—*'सुमिरि राम करि अद्भुत करनी';* कहाँ तो रावण त्रिलोकविजयी राक्षसराज और कहाँ *'जरठ जटायु'*! दो ही स्थानोंपर **'अद्भुत करनी'** पद आया है। वाल्मीकिजी भी वानरों-राक्षसोंके यहाँके परस्पर बराबर जोड़के युद्धमें लिखते हैं कि राक्षसों-वानरोंका अद्भुत उपमावाला भयङ्कर संप्रहार हुआ, जिसमें मांस और रक्तका कीचड़ हो गया है। यथा—*'स संप्रहारस्तुमुलो मांसशोणितकर्दमः। रक्षसां वानराणां च संबभूवाद्भुतोपमः॥'* (४२। ४७)

देखिये जिनके विषयमें राक्षसोंने कहा है कि *'वानर भालु अहार हमारा'* वे ही; इनके भक्ष्य, इन अपने भक्षकोंको, पैर पकड़कर समुद्रमें फेंक देते हैं। यही **'अद्भुत करनी'** है। पं० रामकुमारजी लिखते हैं कि मांस और रुधिरकी कीचड़ इस युद्धमें हुई; अतः **'अद्भुत करनी'** कहा। रा० प्र० का मत है कि 'अद्भुत' से अभूत और अनुक्तका बोध होता है। 'अद्भुत अदृष्ट वर्तमानमें, अभूत भूतमें और अनुक्त भविष्यमें।'

बं० पा०—*'मकर उरग झष धरि धरि खाहीं'* इति। जलचर समुद्र पार करनेमें सहायक हुए थे; अतः उनके सत्कारके लिये समुद्रमें फेंकते हैं, यह कृतज्ञता है, वानर उनके उपकारका बदला दे रहे हैं।

दो०—कछु मारे कछु घायल कछु गढ़ चढ़े पराइ।
गर्जहिं भालु बलीमुख रिपुदल बल बिचलाइ॥ ४६॥

अर्थ—कुछ मार डाले गये, कुछ घायल हुए और कुछ भागकर गढ़पर चढ़ गये। शत्रुसेनाको अपने बलसे तितर-बितर कर रीछ और वानर गरज रहे हैं॥ ४६॥

नोट—१ यहाँ तीन प्रकारसे शत्रुदलका विचलित करना बताया। कुछको मारकर प्राण ले लिये, कुछको घायल किया और कुछको मार भगाया। यह वानरोंकी जीत हुई। पूर्व जो ४२ (१) में कहा था कि *'जद्यपि उमा जीतिहहिं आगे'* उसे यहाँ चरितार्थ किया (पु० रा० कु०)।

नोट—२ *'गर्जहिं भालु……'* यह गर्जन विजय-घोषणा एवं ललकारका है कि हम अभी रणभूमिमें खड़े हैं, मर्द हो तो आओ। सुं० १८ (८) देखिये। कपिदलका आदि-अन्त दोनोंमें गर्जन इस युद्धमें कहा है, आदिमें *'गर्जहिं तर्जहिं भालु कपीसा। जय रघुबीर कोसलाधीसा॥'* (३८। ८) और अन्तमें यहाँ *'गर्जहिं भालु बलीमुख।'* इससे यह भी जनाया कि क्या गर्जन करते हैं—*'जय रघुबीर कोसलाधीसा'* यही गर्जन आदिसे अन्ततक दिखाया।

निसा जानि कपि चारिउ अनी। आए जहाँ कोसलाधनी॥ १॥
राम कृपा करि चितवा सबहीं। भए बिगत श्रम बानर तबहीं॥ २॥

अर्थ—वानरोंकी चारों सेनाएँ रात जानकर वहाँ आयीं जहाँ कोसलपति श्रीरामजी थे॥ १॥ श्रीरामजीने सबको कृपादृष्टिसे ज्यों ही देखा त्यों ही वानर थकावटरहित हो गये॥ २॥

नोट—१ *'निसा जानि'* का भाव कि रात तो पूर्व ही थी, पर पावकसायकसे जो प्रकाश प्रभुने कर दिया था उससे अबतक लड़ते रहे। जब कोई निशिचर रणभूमिमें लड़नेवाला न रह गया तब गर्जन करके और रात्रि जानकर लौटे। जब शत्रुदलका कोई न रह गया तब रात्रिके चिह्नोंसे जाना कि अब रात है। [इसी तरह श्रीनिम्बार्क स्वामीजीने यतीके लिये रात्रिमें दिन कर दिया था, यथा—*'आँगनमें निम्ब तापै आदित दिखायो

वाहि भोजन करायो पाछे निशिचिन्ह पाए हैं'—(भक्तिरसबोधिनी टीका)] प्रभुके बाणसे जो प्रकाश हो गया था उससे एवं उत्साहमें कि शत्रु सम्मुख है कैसे हटें रात्रिका आगमन भी न जान पड़ा था।

नोट—२ वाल्मी० सर्ग ४२ से युद्धका प्रारम्भ हुआ है। वहाँसे लेकर सर्ग ५८ तक जो वानर-राक्षस-युद्ध है (मेघनादके नागपाशवाला प्रसङ्ग छोड़कर) वही मानसमें दोहा ३८ से यहाँतक वर्णित हुआ। अ० रा० ५। ४५—८६ की कथा व्याससरूपसे यहाँतक आ गयी।

☞नौ दोहोंमें प्रथम युद्ध अब समाप्त हुआ। *'चारि अनी कपि कटक बनावा। हरषित रामचरन सिर नावहिं। गहि गिरिसिखर बीर सब धावहिं॥'* (३८। ४। ७) उपक्रम है। *'निसा जानि कपि चारिउ अनी। आए जहाँ कोसलाधनी॥'* उपसंहार है।

☞*'भए बिगत श्रम बानर तबहीं'* इति। मायानिवृत्त होनेपर कहा था कि *'धाए हरषि बिगत श्रम त्रासा।'* फिर *'अद्भुत करनी'* में श्रम हुआ, इससे अब पुनः *'भए बिगत श्रम'* कहा। पूर्व श्रीहनुमान् और अङ्गदजी *'सुभटकी करनी'* करके आये, तब उनपर कृपादृष्टि की—*'राम कृपा करि जुगल निहारे'*—अब चारों सेनाएँ 'अद्भुत करनी' करके आयीं, तब इनपर कृपादृष्टि की। दोनोंको श्रम हुआ सो दोनों 'भये बिगतश्रम'।

प० प० प्र०—*'निसा जानि'*......' इस अर्धालीके चरणोंमें एक-एक मात्रा न्यून रखकर जनाया है कि निबिड़ अन्धकारमें बलवान् मायावी निशाचरोंके साथ युद्ध करके हम कुशल लौटे, यह केवल कोसलाधीशकी कृपा और प्रतापका ही फल है। कृतज्ञता और हर्षसे कण्ठ रुद्ध हो गये हैं। इस दशामें प्रणाम करना भी भूल गये।

प्रथम युद्ध समाप्त हुआ।

* द्वितीय युद्ध प्रारम्भ *

उहाँ दसानन सचिव हँकारे। सब सन कहेसि सुभट जे मारे॥ ३॥
आधा कटकु कपिन्ह संघारा। कहहु बेगि का करिअ बिचारा॥ ४॥

शब्दार्थ—**हँकारे**=हरकारा भेजकर बुलाया।

अर्थ—उधर दशाननने मन्त्रियोंको बुलवाया और जो सुभट मारे गये थे उनका नाम सबसे बताया॥ ३॥ वानरोंने आधी सेनाका नाश कर दिया। शीघ्र बताओ कि (इस विषयमें) क्या विचार करते हो॥ ४॥

नोट—१ *'सब सन कहेसि सुभट जे मारे'* इति। (क) यहाँ रावणने मन्त्रियोंसे बताया, यद्यपि मन्त्रियोंसे उसे खबर मिलनी चाहिये थी। कारण कि रण समाप्त हुए देर नहीं हुई और इसे सब सुभटोंका पता चल गया था; क्योंकि हनुमान्जी और अङ्गदजीने सुभटोंके सिर इसके सामने फेंक दिये थे, जिसमें वह शीघ्र जान ले कि कौन और कितने सुभट मारे गये। तथा सन्ध्या-समय महा-महा-मुखियाओंकी खबर मिली होगी। तीसरे, इससे युद्धमें इसकी सावधानता दिखायी कि कैसी देखभाल रखता है। (ख) इनमेंसे कुछ नाम कुम्भकर्णसे रावणने कहे हैं, इसीसे यहाँ नाम नहीं दिये गये, यथा—*'तात कपिन्ह सब निसिचर मारे। महा महा जोधा संघारे॥ दुर्मुख सुररिपु मनुज अहारी। भट अतिकाय अकंपन भारी॥ अपर महोदर आदिक बीरा। परे समर महि सब रनधीरा॥'* (६१। १०—१२) ४४ (१) भी देखिये।

नोट—२ *'आधा कटकु'* इति। जो वानरोंसे लड़ने गया था उसमेंसे आधे मार डाले गये—यह भाव इससे लेंगे कि ऊपर कहा है कि *'कछु मारे कछु घायल कछु गढ़ चले पराइ।'* आधेमें घायल और भागे हुए हैं। यहाँ रावणकी कुल सेनाके आधेसे तात्पर्य नहीं है। क्योंकि यदि आधी आज प्रथम युद्धमें ही समाप्त हो गयी तो अभी २७ दिन युद्ध क्या आधी सेनासे होगा?—(बं० पा०)

वि० त्रि०—*'उहाँ दसानन*..........*जे मारे'* इति। चारों फाटकोंकी लड़ाई समाप्त हुई। यह एक दिनकी लड़ाई नहीं है। वर्षाके दस तारक नक्षत्रोंमेंसे पूरे पुनर्वसुकी वर्षा है। रावणकी सभा बैठी। कितने वीर मारे गये, उनकी नामावली पेश हुई। पता लगा कि अबतक आधी सेनाका सफाया हो चुका है। जो पहिले सभामें तय हो चुका था कि *'कहौ कवन भय करिय बिचारा। नर कपि भालु अहार हमारा॥'*

यह बात तो बिल्कुल कच्ची निकली। भक्ष्य ही भक्षकका संहार कर रहे हैं। अतः रावणने मन्त्रियोंको पुनर्विचार करनेके लिये बुलवाया, और मारे हुए सुभटोंकी नामावली पढ़ सुनायी गयी।

नोट—३—'*कहहु बेगि*……।' भाव कि रात्रिमें ही उपाय करना है, समय नहीं है, अतः '*कहहु बेगि।*' इससे उसकी घबराहट दिखायी।

माल्यवंत अति जरठ निसाचर। रावन मातु पिता मंत्री बर॥५॥
बोला बचन नीति अति पावन। सुनहु तात कछु मोर सिखावन॥६॥

अर्थ—माल्यवान् (जो) अत्यन्त बुड्ढा राक्षस था और रावणकी माताका पिता अर्थात् नाना तथा श्रेष्ठ मन्त्री था॥ ५॥ वह अत्यन्त पवित्र नीतिके वचन बोला (कि) हे तात! कुछ मेरा सिखावन सुनिये॥ ६॥

नोट—माल्यवान्‌के यहाँ चार विशेषण—(१) अति जरठ, (२) निशिचर, (३) रावण-मातु-पिता, (४) मन्त्रीवर—देकर तब उसका बोलना कहा। इन चारोंसे नीत्युपदेश करनेकी योग्यता उसमें दिखायी। चारोंकी उपयुक्तता, यथा—(१) उपदेश बुड्ढे ही देते हैं, यथा—'*मनहु जरठपन अस उपदेसा।*' (२। २। ७) इसीसे सुमन्तजी अत्यन्त बुड्ढे होनेपर भी कई पीढ़ियोंसे मन्त्री बने चले आये। नाभाजीने उनको 'मन्त्रीवर्य सुमन्त्र' कहा है। जितना देश और काल देखा हुआ मन्त्री होता है उतना ही वह उत्तम होता है। ☞ रावणके यहाँ माल्यवान् अति बूढ़ा, वैसे ही श्रीरामजीके मन्त्री जाम्बवन्त, यथा—'*जामवंत मंत्री अति बूढ़ा।*' (२) निशिचरसे सजातीय और अपने पक्षका जनाया। (३) उसपर भी रावणका नाना है अतः रावणके हितकी ही कहेगा और निर्भय उपदेश देगा, जो गुण श्रेष्ठ मन्त्रीका है। ठकुरसोहाती न कहेगा। (४) 'मन्त्रीवर' है अतः श्रेष्ठ मन्त्र देगा। इससे बड़ा नीतिज्ञ, नृपहितकारक, बुद्धिमान् और सयाना जनाया।—'*नृपहितकारक सचिव सयाना। नाम धरमरुचि शुक्र समाना॥*' (१। १५४। १), '*माल्यवंत अति सचिव सयाना।*' पुनः 'मन्त्रीवर' इससे कहा कि उत्तम मन्त्रीका कर्तव्य है कि अपना अपमान भी हो तो भी उसकी पर्वा न करके राजाका हित करे। वही इसने किया। पूर्व विभीषणके समर्थनपर रावणने इसका अपमान किया था, यथा—'*दूरि न करहु इहाँ है कोऊ।*' उस समय वह उठकर चला गया था, फिर भी मन्त्र देने अबकी भी आया। अ० रा० ५। २५ से मिलान कीजिये।

ततः समागमद् वृद्धो माल्यवान् राक्षसों महान्। माल्यवंत अति जरठ निसाचर।
बुद्धिमान्नीतिनिपुणो राज्ञो मातुः प्रियः पिता॥ रावन मातु पिता मंत्री बर।

☞ अ० रा० ५ और वाल्मी० ३६ में माल्यवान्‌का नीति-उपदेश युद्धारम्भके पूर्व और मानसमें प्रथम युद्धके बाद है। हाँ, विभीषणका समर्थन वहाँ भी किया है।

नोट—२ '*अति पावन*' इति। 'अति पावन' कहकर तीन प्रकारकी नीतियाँ दर्शित कीं। (१) अपावन, (२) पावन और (३) अतिपावन। (१) अपावन वह है जो नीति-शास्त्रके विरुद्ध हो। जिससे सामादि चतुष्टय राजनीतिका विचार न किया जाय। जैसे समुद्रपार होनेपर लङ्कामें शत्रुके आ जानेपर प्रथम बार जब रावणने मन्त्रियोंसे पूछा तब उन्होंने कहा था—'*कहहु कवन भय करिय बिचारा। नर कपि भालु अहार हमारा॥*' (८। ९) इसपर प्रहस्तने कहा कि—'*नीति विरोध न करिय प्रभु मंत्रिन्ह मति अति थोरि।*' (८) (२) पावन नीति वह है जो राजनीतिके अनुकूल हो, जैसे प्रहस्तके वचन रावण प्रति; इत्यादि।।—'*प्रथम बसीठ पठउ सुनु नीती। सीता देइ करहु पुनि प्रीती॥*' (९। १०), '*नारि पाइ फिरि जाहिं जौं तौ न बढ़ाइय रार। नाहिं त सन्मुख*……॥' (९) ये वचन नीतिशास्त्रानुकूल हैं, ठकुरसोहाती या भयसे कहे हुए नहीं हैं। श्रीरामजीने भी रावणसे नीति कही, यथा—'*जनि जल्पना करि सुजस नासहि नीति सुनहि करहि क्षमा।*' (८९ छन्द) यह नीति पावन है।—[पं०—नीति-मिश्रित वाक्य वह है जिसमें अनीति त्याग करनेको कहा।] और (३) जिसमें भगवत्परत्व भी वर्णित हो वह 'अतिपावन' है। श्रीराम जगत्‌पिता हैं, शिव-विरञ्चि उनके सेवक हैं इत्यादि। भगवत्-स्वरूपका प्रतिपादन करनेसे 'अतिपावन' कहा। यथा—'*सिख हमारि सुनु परम पुनीता। जगदंबा जानहु जिय*

सीता॥ जगतपिता रघुपतिहि बिचारी। भरि लोचन छबि लेहु निहारी॥' (१। २४६। २-३)

नोट—३ पु० रा० कु०—सुन्दरकाण्डमें विभीषणकी ***'बुध पुरान श्रुति संमत'*** नीति सुनकर माल्यवान्‌को सुख हुआ था। इसीसे उसको ***'अति सयाना सचिव'*** कहा था। उसने विभीषणकी प्रशंसा की—***'तात अनुज तव नीति बिभूषन'।*** पर यहाँ माल्यवान्‌के ***'अति पावन नीति'*** पर भी किसीने सुख न माना। इससे जनाया कि अब वहाँ कोई 'सयाना' मन्त्री नहीं है।

पं०—***'कछु मोर सिखावन'*** का भाव कि पूर्व तुम्हारे अन्य मन्त्रियोंने तुम्हें बहुत शिक्षा दी है जो मानकर तुमने यह दशा पहुँचायी, हम थोड़ा ही कहते हैं अब इसे मानो। अ० रा० में उसने कहा है कि हमारे वचन सुनो फिर जैसी इच्छा हो करना—***'श्रुत्वा कुरु यथेप्सितम्।'*** (५। २६) मिलान कीजिये—***'अब पति मृषा गाल जनि मारहु। मोर कहा कछु हृदय बिचारहु॥'*** (३५। ७)

नोट—४ ***'तात सुनहु।'*** नाना है, अति जरठ है, इस सम्बन्धसे एवं समझाना है जिसमें बात मान ले, इससे 'तात' सम्बोधन किया। सुन्दरकाण्डमें भी इसने 'तात' सम्बोधन किया है—***'तात अनुज तव नीति बिभूषन।'***

जब ते तुम्ह सीता हरि आनी। असगुन होहिं न जाहिं बखानी॥७॥
बेद पुरान जासु जस गायो*। राम बिमुख काहु न सुखु पायो†॥८॥

अर्थ—जबसे आप सीताको हर लाये हैं, तबसे इतने अपशकुन हो रहे हैं कि वर्णन नहीं किये जा सकते॥ ७॥ वेद-पुराणोंने जिनका यश गाया है उन रामके विमुख (प्रतिकूल, द्रोही), होनेसे किसीने सुख नहीं पाया॥ ८॥

नोट—१ जबसे श्रीसीताजी लङ्कामें गयी हैं तबसे वहाँ बहुत घोर दुर्निमित्त दिखायी पड़ रहे हैं। यह बात वाल्मीकीय आदिमें विभीषणजी (वाल्मी० १०। १४) और माल्यवान् (अ० रा० ५। २७) द्वारा रावणको मालूम हुई और समुद्र पार करके सुवेलपर आते ही यह अपशकुन श्रीरामचन्द्रजीके भी दृष्टिगोचर हुए और उन्होंने लक्ष्मणजीसे यह बात कही। उन अवसरोंपर जिन-जिन दुर्निमित्तोंका उल्लेख उन ग्रन्थोंमें हुआ है वही यहाँ कविने ***'न जाहि बखानी'*** से सूचित किये हैं। वाल्मी० और अ० रा० दोनोंमें माल्यवान्‌ने अनेक घोर विनाशसूचक उत्पातोंको वर्णन करके अन्तमें यही कहा कि इसी प्रकारके और अनेक उत्पात हो रहे हैं और नित्य नवीन उत्पन्न होते हैं—***'एतान्यन्यानि दुष्टानि निमित्तान्युत्पतन्ति च'*** (वाल्मी० ३५। ३४)।

☞१ माल्यवान्‌ने तीन तरहसे समझाया। प्रथम तो अपशकुन सुनाकर, फिर श्रीरामजीकी ईश्वरता प्रतिपादन करके और तीसरे, रामविमुखताका फल कहकर। प्रथम उपदेश-(विभीषणके समर्थन-) में अपशकुन न कहे गये थे, अबकी यह विशेषता है।

नोट—२ (क) ***'जब ते सीता हरि आनी……।'*** अर्थात् न आगे न पीछे। भाव कि सीताहरणके पूर्व ये दुर्निमित्त कभी न हुए थे औन न यही है कि उनके आनेके बहुत दिन पीछे ये असगुन होने लगे हों जिससे समझा जाय कि असगुनका कारण कुछ और होगा। असगुन उसी समय तुरन्त प्रारम्भ हुए जिस समय यहाँ सीता आयीं। आशय कि इनके साथ अपशकुन आये, इनको यहाँसे फिर लौटा दो तो असगुन भी साथ ही यहाँसे चले जायँ। (ख) ***'न जाहिं बखानी।'*** भाव कि अगणित हैं एवं मृत्युसूचक और भयङ्कर हैं।

३ ***'राम बिमुख काहु न सुखु पायो,*** यथा—***'राम बिमुख संपति प्रभुताई। जाइ रही पाई बिनु पाई॥'*** (सुं०), ***'राम बिमुख अस हाल तुम्हारा। रहा न कोउ कुल रोवनिहारा॥', 'राम बिमुख अस अनुचित नाहीं।'*** (१०३। १०—१२) देखिये। यहाँ 'अर्थान्तरन्यास अलङ्कार' है।

अपशकुनोंका वर्णन

१ गधे भयङ्कर शब्दसे रेंकते हैं। २ मेघ रुधिर बरसते और घोर शब्दसे गरजते हैं। ३ दिशाविदिशाएँ धूलसे छायी हैं। ४ गृध्र, गीदड़, सर्पादि वाटिकाओंमें घुसकर भयङ्कर शब्द करते हैं। ५ महाकाली हँसते हुए चलती

* गावा। † सुख काहु न पावा।

है। ६ स्त्रियाँ स्वप्नमें बातें करती-करती चौंककर घरोंको छोड़कर चल देती हैं। ७ कौवोंके भागकी बलि-सामग्री कुत्ते खा लेते हैं। ८ गायसे गधे और न्योलोंसे चूहे पैदा होते हैं। ९ व्याघ्रके साथ बिलाव, कुत्तोंके साथ सूकर, राक्षसके साथ किन्नर और मनुष्यके साथ राक्षस मैथुन करते हैं। १० नीले रङ्गके लाल चरणवाले कबूतर घरोंमें घुसते हैं। ११ सिर मुँड़ाये काला पुरुष घर-घर संध्या-समय फिरता है। इत्यादि—(वाल्मी० ३५। २५ श्लोकसे ३४)। १२ मन्त्रपूर्वक आहुति पानेपर भी अग्नि अपने तेजसे नहीं बढ़ता। प्रदीप्त करनेके समय उसमेंसे धुआँ निकलता है, चिनगारियाँ उड़ती हैं। १३ होमकी खीरमें चीटियाँ चढ़ी रहती हैं। १४ गायोंका दूध सूख गया, गज मदविहीन हो गये। घोड़े चारा पानेपर भी भूखे-से ही बने रहते हैं और दीनतापूर्वक शब्द करते हैं। १५ गदहे, ऊँट, खच्चर रोएँ खड़े कर-करके रोते हैं। १६ ओषधि असर नहीं करती। १७ कौवोंके झुण्ड महलोंपर उड़ते, बैठते, काँव-काँव करते हैं। १८ शृगालियाँ पुरीके पास आकर चिल्लाती हैं—(वाल्मी० यु० १० विभीषणोक्त अपशकुन)। १९ पवन प्रतिकूल भावसे धूलसंयुक्त चलता है। २० भूकम्प होता है। २१ वृक्ष अचानक टूटकर गिरते हैं। २२ संध्याका रङ्ग लाल चन्दनके समान लाल है। २३ चन्द्रमाकी किरणें लाल और काली हैं। २४ सूर्यमण्डलमें नीले दाग देख पड़ते हैं……। २५ धूलिसे नक्षत्र देख नहीं पड़ते मानो युगान्तका समय आ गया। २६ कौवे, बाज, गृध्र सहसा ऊपरसे गिरते हैं। इत्यादि—(वाल्मी० २३। श्रीरामवाक्यं लक्ष्मणं प्रति)। २७ प्रतिमाएँ रोती हैं। २८ प्रतिष्ठित प्रतिमाएँ स्थान छोड़ अन्यत्र चली जाती हैं। २९ मूसे बिलारसे युद्ध करते हैं।—(अ० रा० ५। २८—३२)। २९ (हनु० ११। १० में) महोदर सुवेलपर वानर-सैन्यके टिकनेपर रावणको दिखाता है कि मध्य दिनमें कैसे उत्पात हो रहे हैं—*'क्वचिन्मीनः क्वचिन्मेषः क्वचिल्लम्बितकृत्तिका। क्वचिन्मृगशिरः सार्द्रं नभो व्याधगृहायते॥'* अर्थात् कहीं तो पूर्वाके तथा उत्तरा और रेवतीके सहित मीन दृष्टिगोचर होता है और कहीं अश्विनी तथा भरणीके सङ्ग मेष, कहीं लम्बित कृत्तिका, कहीं आर्द्रासहित रुधिर डालता हुआ मृगशिर, इस प्रकार मानो सारा आकाश व्याधिका घर है।

दो०—हिरन्याक्ष भ्राता सहित मधुकैटभ बलवान।
जेहि मारे सोइ अवतरेउ कृपासिंधु भगवान॥ ४७ (क)॥

अर्थ—बलवान् मधुकैटभ और भाई हिरण्यकशिपुसहित हिरण्याक्षको जिसने मारा वही दयासागर भगवान् अवतरे हैं॥ ४७॥

पं०—पहले कहा कि वेदादि रामयश गाते हैं। रावण कह सकता है कि वेद तो परमेश्वरका गुणगान करते हैं और ये राम तो मनुष्य हैं, दशरथके पुत्र हैं, अतः अब कहते हैं कि ये भगवान् ही हैं। ☞ विशेष भाव दोहा ६ (७-८) में आ चुके हैं।

पु० रा० कु०—१ **'कृपासिंधु'** विशेषणका भाव कि अवतारका कारण कृपा ही है।—*'कृपासिंधु जनहित तनु धरहीं।'* १। १२१।' तथा १। १२२ (१) देखिये। 'भगवान्' अर्थात् ये ईश्वर हैं, षडैश्वर्यसम्पन्न हैं। *'ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः। वैराग्यस्य च मोक्षस्य षण्णां भग इतीरणा॥' 'उत्पत्तिं प्रलयं चैव भूतानामगतिं गतिम्। वेत्ति विद्यामविद्याञ्च स वाच्यो भगवानिति॥'* अर्थात् जिसमें समग्र ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, वैराग्य और मोक्ष—ये छः बातें पूर्णरूपेण नित्य स्थित हों। जो उत्पत्ति, संहार, जीवकी गति-अगति, विद्या-अविद्याका जाननेवाला है, वह भगवान् है। पुनश्च यथा—*'पोषणं भरणाधारं शरण्यं सर्वव्यापकम्। कारुण्यो षड्भिः पूर्णो रामस्तु भगवान् स्वयम्॥'* (करु०, महारामायणे) *'कर्त्तुं विकर्त्तुं जगदन्यथा च कर्त्तुं हि सामर्थ्यविशेषरूपा। शक्तिस्तु यस्यास्ति स सर्वशक्तिभिः प्राणाधिका या बहुकेलिरन्या॥ वै०॥'*

पं०—*'कृपासिंधु'* का भाव कि पूर्व नृसिंहादि अवतारोंमें शत्रुओंपर दया न की थी पर तुझपर अब भी दया करेंगे।

प० प० प्र०—हिरण्याक्षादिके उल्लेखसे स्पष्ट है कि मन्दोदरीके समान माल्यवान् भी वैकुण्ठाधीश विष्णु अवतारीका ही रामावतार समझते हैं।

दो०—कालरूप खल बन दहन गुनागार घनबोध।
सिव बिरंचि जेहि सेवहिं* तासों कवन बिरोध॥ ४७ (ख)॥

अर्थ—जो कालरूप हैं, दुष्टरूपी वनके भस्म करनेवाले हैं, गुणधाम तथा पूर्ण ज्ञानवाले हैं और जिनकी शिवजी और ब्रह्माजी सेवा करते हैं, उनसे क्या वैर (करना)?॥ ४८॥

नोट—१ भाव कि जब तुम्हारे ये गुरु और इष्ट ही उनके सेवक हैं तब तुम्हारा उनसे वैर करना अयोग्य ही है; क्योंकि तब ये भी तुम्हारी रक्षा नहीं कर सकेंगे, यथा—*'हित न तुम्हार संभु अज कीन्हें।'* (५। ३६। १०), *'सिव बिरंचि सुर जाके सेवक।'* (६२। ५); (१४) (८), २२ (१), २७ (२) भी देखिये। पुनः भाव कि जिसके ऐसे-ऐसे सेवक हैं वह मनुष्य नहीं हो सकता, वरन् परब्रह्म ही है, यथा—*'यत्पादपोतमाश्रित्य ज्ञानिनो भवसागरम्। तरन्ति भक्तिपूतान्तास्ततो रामो न मानुषः॥'*

पु० रा० कु०—यहाँ चार प्रमाण दिये। कालरूप हैं, यथा—*'काल रूप तिन्ह कहँ मैं भ्राता। सुभ अरु असुभ करम फल दाता॥'* (७। ४१) काल दुःख सुखका देनेवाला है और ये खलरूपी वनके लिये वनाग्निवत् हैं। वनमें अग्नि अपने आप पैदा होकर वनको जला देती है, वैसे ही खलोंके कर्म उनको जलाते हैं, प्रभुका कोई दोष नहीं, वे तो सम हैं।

नोट—२ (क) *'गुनागार'* अर्थात् पतितपावनता, प्रणतपालकता, क्षमा आदि समस्त दिव्यगुण उनमें हैं। तुम शरण जाओगे तो पिछले सब अपराध क्षमा कर देंगे—*'उर अपराध न एकउ धरिहहिं।'* (ख)—*'घनबोध'* अर्थात् सम्यक्ज्ञानवाले हैं, सदा एकरस हैं, उनका कोई न मित्र है न शत्रु, तुम यह न समझो कि तुमसे वैर रखते होंगे। पुनः घनबोधसे ईश्वर सूचित किया—*'ज्ञान अखंड एक सीतावर।'*

रा० प्र०—भाव-भेदसे खलबन-दहनके लिये कालरूप शूर, और ज्ञानियोंके लिये गुणागार, मेघकी तरह बोधामृतकी वर्षा कर सब तापोंके हरनेवाले हैं। पुनः, कालरूप अर्थात् उनसे विरोध करके कोई बचा नहीं।

वीर—*'कालरूप खल बन दहन'* में परम्परितरूपक है। *'गुनागार घनबोध'* में तृतीय तुल्ययोगिताकी ध्वनि है। शिवविरंचि जिनकी सेवा करते हैं उनसे कौन-सा वैर?—इस वाक्यमें 'वाच्यसिद्धाङ्गगुणीभूत व्यंग' है।

परिहरि बयरु देहु बैदेही। भजहु कृपानिधि परम सनेही॥ १॥

अर्थ—वैर छोड़कर वैदेहीको रामजीको दे दो और दयासागर परमस्नेही रामचन्द्रजीका भजन करो॥ १॥

पु० रा० कु०—'वैदेही' का भाव कि ये तुम्हारे हाथ न लगेंगी तुम चाहे जितना उपाय करो, वे प्राण भले ही छोड़ देंगी। [श्रीसीताजी देहसम्बन्धी विषयभोग विलासोंसे पूर्ण उदासीन हैं। अतः तेरे वशमें नहीं होंगी। (प० प० प्र०)]

नोट—*'भजहु कृपानिधि परम सनेही'* इति। 'कृपानिधि' का भाव कि *'प्रनतपाल रघुनायक करुनासिंधु खरारि। गये सरन प्रभु राखिहैं तव अपराध बिसारि॥'* (सुं० २२) तुमने तो एक ही जन्ममें पाप किया है और उनकी प्रतिज्ञा है कि *'सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं। जन्मकोटि अघ नासहिं तबहीं॥'* (सुं० ४४) 'परम सनेही' हैं, तुम्हारा हित करेंगे—*'राम भजे हित नाथ तुम्हारा।'* (सुं० ४१) भाव कि वे स्नेह करने योग्य ही हैं, यथा—*'राम सनेही सों तैं न सनेह कियो।'*……*छलहि छाँड़ि सुमिरे छोह किये ही है।'* (वि० १३५)

ता के बचन बान सम लागे। करिआ† मुँह करि जाइ अभागे॥ २॥
बूढ़ भएसि न त मरतेउँ तोही। अब जनि नयन देखावसि मोही॥ ३॥

अर्थ—उसके वचन बाणके समान लगे। (वह बोला) अरे भाग्यहीन! काला मुँह करके निकल जा॥ २॥ तू बुड्ढा हो गया नहीं तो तुझे मारता। अब मेरी आँखोंको अपने तईं मत दिखाना (सामने न आना) एवं आँख घुरेरकर न बोलना (आँख न दिखाना)॥ ३॥

---

* जेहि सेवहिं सिव कमलभव तासो कौन बिरोध—(का०)।
† करिया मुष—(का०)।

☞मन्दोदरीका उपदेश जो ३५ (१) से ३६ तक है और जिसका अन्तिम उपदेश इसी प्रकारका है—*'कृपासिंधु रघुनाथ भजि नाथ बिमल जस लेहु'*—वह भी उसे बाण-सा लगा था, यथा—*'नारि बचन सुनि बिसिष समाना।'* पर वहाँ मन्दोदरीको उसने कुछ न कहा, स्वयं उठकर चला गया (और वह भी जब सवेरा हुआ तब, तुरंत ही नहीं), यथा—*'सभा गयउ उठि होत बिहाना।'* और, यहाँ माल्यवान्‌को निकल जानेको कह रहा है, मारता भी पर बुड्ढा होनेके कारण छोड़ दिया। इसी प्रकार विभीषणने जब कहा कि *'परिहरि मान मोह मद भजहु कोसलाधीस'* तब यह कहा कि इनको निकाल दो, यथा—*'रिपु उतकर्ष कहत सठ दोऊ। दूरि न करहु इहाँ है कोऊ॥'* फिर भी विभीषण भाई था इससे समझाता ही रहा और अन्तमें पुनः यही कहा कि—*'सीता देहु राम कहँ अहित न होइ तुम्हार।'* तब उसने इनसे निकल जानेको कहा और लात मारी थी। वानरसेनाके लङ्कामें आनेपर मन्दोदरीका उपदेश दोहा ६ (३) से दोहा ७ तक माल्यवान्‌के उपदेशसे बहुत मिलता हुआ है तब भी मन्दोदरीपर क्रोध न करके वह उसे उठाकर समझाता रहा। उसीके बाद उसके पुत्र प्रहस्तने अपना मत कहते हुए यह कहा कि *'जेहि बारीस बँधायो हेला''''''''सो भनु मनुज खाब हम भाई॥ नारि पाइ फिरि जाहिं जौं तौं न बढ़ाइय रारि',* जिसे सुनकर रावण क्रुद्ध हुआ और उसे बड़े कठोर वचन कहे। यथा—*'सुत सन कह दसकंठ रिसाई।''''''''बेनुमूल सुत भयहु घमोई। सुनि पितु गिरा परुष अति घोरा। चला भवन कहि बचन कठोरा॥'* (१०। ३-४) यह पुत्र है नहीं तो इसे भी मारता या निकाल देता। पर मन्दोदरीने इन सबसे कहीं अधिक कठोर वचन कहे तब भी उसको रावणने कुछ न कहा। इसमें क्या रहस्य है? इसके कई कारण हो सकते हैं—

१—मन्दोदरीने जब-जब कहा तब एकान्तमें कहा, दूसरेने नहीं सुना जिससे उसके गौरव वा अभिमानको धक्का पहुँचता। रावण महाअभिमानी है। अभिमानी होनेसे वह दूसरेका उत्कर्ष नहीं सह सकता, यथा—*'आन बीर बल सठ मम आगे। पुनि पुनि कहसि लाज पति त्यागे॥'* विभीषण, माल्यवान् आदिने बीच सभामें शत्रुका उत्कर्ष और रावणका दोष (अपकर्ष) कहा जिससे उसका मान भङ्ग होता है इसीसे उनको कठोर वचन कहे।

२—मन्दोदरी उसकी परम प्यारी पटरानी है।

३—यदि मन्दोदरीको वह कटु वचन कहता तो सम्भव था कि मेघनादादि पुत्र और पौत्रादि भी रावणके प्रतिकूल हो जाते, वे माताके साथ उसका यह बर्ताव न सह सकते। घरमें ही फूट हो जाती और वह भी ऐसे समय कि जब शत्रु सिरपर खड़ा है। यह भी भय रावणको हो सकता था।

४—इससे कविने पतिव्रताका बल दिखाया है। पूर्व भी कुछ लिखा गया है।

नोट—१ *'बूढ़ भएसि न त मरतेउँ तोही।'* इति। रावण बुड्ढोंको वीर नहीं समझता इससे उनको तुच्छ समझकर उनपर दया करता है। *'जामवंत मंत्री अति बूढ़ा। सो कि होइ अब समरारूढ़ा॥'* इसी कारण युद्धमें उसने जाम्बवन्तपर बाण न चलाये थे। २—*'अब जनि नयन दिखावसि।'* भाव कि यदि तू अब भी हठ करेगा तो फिर वृद्धावस्थाका विचार भी न करूँगा। यही उसको दण्ड मिला कि अब सामने न आये वा ऐसे वचन न कहे—(मा० मु० ट०)।

पं० विजयानन्दजी त्रिपाठी कहते हैं कि बूढ़े राक्षस तो लङ्कामें अनेक थे, पर माल्यवान् बड़े बूढ़े थे। रामदलमें जाम्बवान् बड़े बूढ़े थे (यथा—*'जामवंत मंत्री अति बूढ़ा')* और रावणदलमें माल्यवान् थे (यथा—*'बूढ़ भयेसि न त मरतेउँ तोही।')* रावणके नाना भी थे और मन्त्री भी थे। इस बार जब मन्त्रियोंकी सभा हुई और प्रश्न उपस्थित हुआ कि *'आधा कटकु कपिन्ह संहारा। कहहु बेगि का करिअ बिचारा॥'* तब उसे सुनकर बुड्ढा जल उठा कि जब मैंने विभीषणके विचारका अनुमोदन किया, तब तो इन्होंने आज्ञा दी कि *'रिपु उत्कर्ष कहत सठ दोऊ। दूरि न करहु इहाँ है कोऊ॥'* आज वही बात सिरपर आयी। बन्दरोंने आधी सेना निपटा दी, फिर भी आँख नहीं खुली, युद्धके लिये विचार करने बैठे। इसके अपराधसे राक्षस-कुलका संहार हुआ चाहता है, अतः उसने कड़ाईके साथ कहा *'सिव बिरंचि जेहि सेवहिं तासों कौन बिरोध। परिहरि बैरु देहु बैदेही। भजहु कृपानिधि परम सनेही॥'* 'रावण बिगड़ उठा कि यह फिर शत्रुका उत्कर्ष कहता है और आँख दिखाता है। *'बूढ़ भएसि'*

का अर्थ यह है कि 'नाना हो' इसलिये छोड़ देता हूँ नहीं तो जिस ढङ्गसे तुम बोले हो उसका वध दण्ड है। आँख दिखानेका सीधा अर्थ है क्रोध करके बोलना, आगे चलकर स्पष्ट कहते हैं *'सो उठि गयउ कहत दुर्बादा।'* जो गाली दे सकता है, उसके आँख दिखानेमें आश्चर्य क्या है?'

☞*'बोला बचन नीति अति पावन'* उपक्रम है और *'ताके बचन………'* उपसंहार। यहाँ 'पाँचवीं विभावना अलंकार' है।

तेहि अपने मन अस अनुमाना। बध्यो चहत एहि कृपानिधाना॥ ४॥
सो उठि गएउ कहत दुर्बादा। तब सकोप बोलेउ घननादा॥ ५॥

अर्थ—उसने अपने मनमें ऐसा अनुमान किया कि इसे कृपानिधान रामचन्द्रजी (अब) मारना ही चाहते हैं॥ ४॥ वह दुर्वचन कहता हुआ, एवं दुर्वचन कहते ही वह उठ कर चला गया। तब मेघनाद क्रोधपूर्वक बोला॥ ५॥

नोट—१ *'कृपानिधाना'* का भाव कि—(क) कृपा करके इसको वधकर शीघ्र मुक्ति देना चाहते हैं। (पु० रा० कु०) (ख)—कृपा करके विभीषणको राज्य दे चुके, इसे मुक्ति देना चाहते हैं—(पं० पा०)। विशेष *'कृपासिंधु रघुनाथ भजि……।'* (३६) देखिये।

नोट—२ *'दुर्बादा।'* जैसे प्रहस्तने कहा है, यथा—*'चला भवन कहि बचन कठोरा। हित मत तोहि न लागत कैसे। काल बिबस कहँ भेषज जैसे॥'* (१०। ४-५) पुनः, जैसे मन्दोदरीने कहा है—*'अहह कंत कृत राम बिरोधा। काल बिबस मन उपज न बोधा॥'* (३६। ६) से *'दुइ सुत मारेउ………'* (३६) तक।

☞अब रावणने कह दिया कि मुँह न दिखाना नहीं तो मार ही डालूँगा। अतः अब आगे इसका सम्मुख आना कविने नहीं कहा है। दुर्वाद कहकर उठ जाना वाल्मी० और अ० रा० में नहीं है। हाँ, प्रथम ही उसने कठोर वचन कहे थे कि 'तुमने धर्मका नाशकर अधर्म ग्रहण किया, इसीसे हमलोगोंके शत्रु प्रबल हो गये। तुम्हारे प्रमादसे बढ़ा हुआ अधर्मरूप सर्प हमलोगोंको ग्रस लेता है और देवताओंके पक्षको बढ़ाता है। कुछ नर वानरसे तुमने अमर होनेका वर नहीं पाया है। इत्यादि, जो वाल्मी० सर्ग ३५ में माल्यवान्ने कहा है वह सब दुर्वचन हैं। वीर कविजी लिखते हैं कि रावण-जैसे प्रतापी योद्धा और राजाको माल्यवान्की हिम्मत थी कि दुर्वाद कहता? वह बेचारा रावणकी खोटी बातें सुनकर चुपचाप दरबारसे उठकर चला गया।—हमारी समझमें दोनों ही पक्षके समर्थनमें बहुत कुछ कहा जा सकता है।

गौड़जीका मत है कि यहाँ दोनों अर्थ हैं। रावणने दुर्वाद ज्योंही कहा त्यों ही माल्यवान् उठ गया। यह रावणाधीन मन्त्री था तब भी उसका नाना था, इसलिये दुर्वचन कहता हुआ चला गया।

नोट—३ *'तब सकोप बोलेउ घननादा'* इति। (क) पिताको क्रोध आ गया है क्योंकि माल्यवान्ने उसके प्रतिकूल शत्रुका उत्कर्ष कहा, उस क्रोधको शान्त करनेके लिये वह क्रोधयुक्त वचन बोला। (ख) *'घननादा'* का भाव कि मेघनाद गर्जकर (अभिमानपूर्वक) अपना बल कहेगा। सकोप बोलनेके सम्बन्धसे 'घननाद' नाम दिया।

कौतुक प्रात देखिअहु मोरा। करिहौं बहुत कहौं का थोरा॥ ६॥
सुनि सुत बचन भरोसा आवा। प्रीति समेत अंक बैठावा॥ ७॥
करत बिचार भएउ भिनुसारा। लागे कपि पुनि चहूँ दुआरा॥ ८॥

अर्थ—सबेरा होते ही मेरा कौतुक देखना, बहुत कुछ करूँगा, थोड़ा क्या कहूँ करके ही दिखाऊँगा, कहूँगा कुछ भी नहीं॥ ६॥ पुत्रके वचन सुनकर रावणको ढाँढ़स हुआ। उसको प्रीतिसहित गोदमें बिठाया॥ ७॥ विचार करते-करते ही सबेरा हो गया। वानर फिर चारों द्वारोंपर जा डटे॥ ८॥

नोट—१ *'कौतुक प्रात थोरा'* इति। वाल्मी० या अ० रा० में इस स्थानपर मेघनादका बोलना नहीं पाया जाता। हाँ, वाल्मी० १५। १। ८ में विभीषणजीके समझानेपर मेघनादने कुछ वचन कहे हैं—वे ही भाव यहाँ *'करिहौं बहुत………।'* के ले सकते हैं। वे वचन ये हैं—

'त्रिलोकनाथो ननु देवराजः शक्तो मया भूमितले निविष्टः। मायार्पिताश्चापि दिशः प्रपन्नाः सर्वे तदा देवगणाः समग्राः॥ ऐरावतो निःस्वनमुन्नदत्स निपातितो भूमितले मया तु। विकृष्य दन्तौ तु मया प्रसह्य वित्रासिता देवगणाः समग्राः॥ सोऽहं सुराणामपि दर्पहन्ता दैत्योत्तमानामपि शोककर्ता। कथं नरेन्द्रात्मजयोर्न सक्तो मनुष्ययोः प्राकृतयोः सुवीर्यः॥' (५—७)

अर्थात् त्रिलोकनाथ इन्द्रको हमने पृथ्वीमें भगा दिया और भी देवता हमारे डरसे इधर-उधर सब दिशाओंमें भाग गये। हमने ऐरावतको पृथ्वीमें गिरा दिया, उसका दाँत उखाड़कर सब देवताओंको भगा दिया। वह देवताओंके अहङ्कार और दैत्योंके शोकको हरनेवाले हम मनुष्य राजाके साधारण पुत्रोंसे लड़नेमें क्योंकर समर्थ नहीं हैं?

नोट २—*'सुनि सुत बचन भरोसा आवा'* इति। (क) इससे जनाया कि माल्यवान्‌के वचन सुनकर नैराश्यको प्राप्त हुआ था। ऊपर कह आये हैं कि *'ताके बचन बान सम लागे।'* बाण लगनेसे घाव होता है। वैसे ही माल्यवान्‌के वचनसे हृदयमें घाव-सा हो गया था, अब इसके वचनसे वह पुर गया। (ख) *'प्रीति समेत बैठावा'* इति। गोदमें बैठाना आदर, लाड़-प्यार है। शाबाशी दी। (पु० रा० कु०)

नोट ३— (क) *'करत बिचार……'* से जनाया कि बहुत देरतक (रात्रिभर) विचार होता रहा। (ख)—*'पुनि'* का भाव कि पूर्व प्रथम युद्धमें एक बार ऐसे ही जा डटे थे, यथा—*'घटाटोप करि चहुँ दिसि घेरी।'* (३८। १०) अब फिर जा डटे।

☞ *'उहाँ दसानन सचिव हँकारे……कहहु बेगि का करिय बिचारा।'* (४७। ३-४) उपक्रम है और *'करत बिचार………'* उपसंहार।

सेना-सेनाका दूसरा युद्ध

कोपि कपिन्ह दुर्घट गढ़ घेरा। नगरु कोलाहल भएउ घनेरा॥ ९॥
बिबिधायुधधर निसिचर धाए। गढ़ ते पर्बत सिखर ढहाए॥ १०॥

अर्थ—वानरोंने कोप करके दुर्घट (दुर्गम, दुर्धर्ष) किलेको घेर लिया। नगरमें भारी कोलाहल मच गया॥ ९॥ अनेक प्रकारके हथियार धारण किये हुए निशिचर दौड़े और किलेपरसे पर्वतशिखर गिराये॥ १०॥

नोट—*'दुर्घट'* क्योंकि देवताओंके लिये भी दुर्धर्ष है।—'त्रिदशैरपि दुर्धर्षा लङ्का नाम महापुरी।' (हनु० ६। ४२), 'यत्सीमा नहि लङ्घिता सुरगणैः सा लङ्घिता वानरैः॥' (समयादश मन्दोदरीवाक्य ४६)

छं०—ढाहे महीधर सिखर कोटिन्ह बिबिध बिधि गोला चले।
घहरात जिमि पबिपात गर्जत जनु प्रलय के बादले॥
मर्कट बिकट भट जुटत कटत न लटत तन जर्जर भए।
गहि सैल तेहि गढ़ पर चलावहिं जहँ सो तहँ निसिचर हए॥

शब्दार्थ—**ढाहना**=ढकेलकर गिराना। **गोला**=लोहेका वह गोल पिण्ड जिसमें बहुत-सी छोटी-छोटी गोलियाँ, मेखें आदि, भरकर युद्धमें तोपोंकी सहायतासे शत्रुओंपर फेंकते हैं *'परकाल अग्नि जंजीरी बंबादि'* (बं० पा०)। **घहराना**=गरजनेका-सा शब्द करना। घोर शब्द करना। **लटना**=लड़खड़ाना, थककर गिरना। (सं० लड=हिलना) **जर्जर**=टूटाफूटा वा खंडित। झांझर। चलनी-सरीखे।

अर्थ—अगणित पर्वत-शिखर ढहाते हैं। अनेक प्रकारके अगणित गोले चले। वज्रपातका-सा शब्द उनमें होता है। ऐसे गरज रहे हैं मानो प्रलयकालके मेघ गरज रहे हों। भयङ्कर योद्धा वानर भिड़ते हैं, कटकर आहत हो जाते हैं, उनके शरीर जर्जर होनेपर भी वे लटपटाते नहीं (न गिरें, न हार मानें)। पर्वतको हाथसे पकड़कर उसे गढ़पर फेंकते हैं जो निशिचर जहाँ है वहीं मर जाता है।

बं० पा०—१ भारी तोपोंका गर्जन ऐसा होता है जैसा वज्रपात होनेसे होता है और जैसे प्रलयके

बादलोंका गर्जन होता है। भाव कि ऐसा युद्ध हो रहा है मानो प्रलय होने ही चाहता है।

पं०—१ पर्वत-शिखर गिरनेसे वज्रपातका-सा शब्द होता है और गोलों-(तोपों-) का शब्द ऐसा है मानो प्रलयके बादल गरजते हैं। यहाँ यथासंख्यालङ्कारसे उदाहरण और उत्प्रेक्षा कही गयी। (प० प० प्र०)

वीर कवि—गोले ऐसे घहराते हैं जैसे वज्रपात हो और उनके शब्द ऐसे होते हैं मानो प्रलयकालके मेघ गरजते हों। यहाँ उदाहरण और उक्तविषयावस्तूत्प्रेक्षा है।

नोट—१ त्रेतायुगमें अनेक प्रकारकी तोपें और बड़े-बड़े यन्त्र थे, यह वाल्मी० में हनुमान्‌जीके वचनोंसे स्पष्ट सिद्ध होता है—**'परिखाश्च शतघ्न्यश्च यन्त्राणि विविधानि च। शोभयन्ति पुरीं लङ्कां रावणस्य दुरात्मनः॥'** (२३)

नोट—२ *'जुटत कटत न लटत तन·······'* इति। अर्थात् रणसन्मुख तोपके सामने शरीर हटता नहीं, और न कटता ही है यद्यपि घावोंसे बिंध गया है। 'न' और 'तन' दीपदेहरी हैं। *'जहँ सो तहँ'* अर्थात् जो निशिचर जिस मोर्चेपर है वहीं मरकर रह जाता है। [*'जहँ सो तहँ हए'* का भाव कि निशाना चूकता नहीं है। (रा० प्र०)]

प्रथम युद्ध	द्वितीय युद्ध
३८ (९) *जानत परम दुर्ग अति लंका*	*कोपि कपिन्ह दुर्घट गढ़ घेरा।* ४८ (९)
३८ (१०) *घटाटोप करि चहुँ दिसि घेरी*	*लागे कपि पुनि चहूँ दुआरा।* ४८ (९)
३९ (१) *लंका भएउ कोलाहल भारी*	*नगरु कोलाहल भएउ घनेरा।* ४८ (९)
३९ *नानायुध सरचापधर जातुधान······*	*बिबिधायुधधर निसिचर धाए।* ४८ (१०)
४० (८) *निसिचर सिखर समूह ढहावहिं*	*गढ़ ते पर्बत-सिखर ढहाए।*
४० *कूदि धरहिं कपि फेरि चलावहिं*	*गहि सैल तेइ गढ़पर चलावहिं।* ४८ छंद
☞कपि कोपकर चले, गढ़पर न (विशेष) चढ़े, रामयश न गाया	*बिबिध बिधि गोला चले।*

☞यहां तक सेना-सेनाका युद्ध कहा, आगे मेघनादका युद्ध है। *'लागे कपि पुनि चहूँ दुआरा।'* (४८। ८) उपक्रम है और *'मेघनाद सुनि श्रवन अस गढ़ पुनि छेंका आइ॥'* (४८) उपसंहार है। सेनाका सेनासे युद्ध जैसा पूर्व हुआ वैसा ही अबकी, यह दिखाकर तब मेघनादका बल दिखाते हैं। सेना कुछ न कर सकी।

दूसरा निशिचर-कीश-युद्ध समाप्त हुआ।

मेघनाद (प्रथम) युद्ध प्रारम्भ

दो०—मेघनाद सुनि श्रवन अस गढ़ पुनि छेंका आइ।
उतर्‌यो बीरु दुर्ग तें* सन्मुख चल्यो बजाइ॥ ४८॥

शब्दार्थ—**छेंकना**=घेरना। '**बजाइ**'—यह मुहावरा है। डंका बजा-बजाकर, डंकेकी चोटपर, ललकारकर वा खुल्लम-खुल्ला। यथा—*'देउँ भरत कहँ राज बजाई।'*

अर्थ—कानोंसे यह सुनकर कि वानरोंने फिर गढ़को आकर घेर लिया है, वीर मेघनाद किलेपरसे उतरकर डंका बजाकर डंकेकी चोटपर सामने चला॥ ४८॥

पं०१—गढ़का घेरा जाना सुनकर दुर्गसे उतरा कि *'कौतुक प्रात देखियहु मोरा।'*, इस अपनी प्रतिज्ञाको चलकर पूरा करूँ, उसका समय आ गया। पं० २—गढ़से उतरकर सम्मुख चला। भाव कि कोटके निकट जो कपिदल था उसको भगाकर श्रीराम-लक्ष्मणादिके सम्मुख चला और पास आकर बोला। इसीसे 'बीरु' कहा।

वि० त्रि०—अबतक फाटक बंद करके किलेपरसे राक्षस लड़ाई करते थे। इधरसे वानर बराबर धावा करके किलेपर चढ़ जाते थे, और लंकाभरमें उपद्रव मच जाता था, किलेसे उतरकर मैदानमें आकर युद्ध करनेका साहस राक्षसी सेनाको नहीं हुआ। यह दुर्दशा वीरवर मेघनादको सह्य न थी। वह मैदानमें उतर

* पाठान्तर—उतरि दुर्ग तें बीरबर।'

पड़ा और डंका देकर श्रीरामदलका सामना करनेके लिये आगे बढ़ा। युद्धका रास्ता तबसे बदल गया। जितनी लड़ाइयाँ हुईं मैदानमें हुईं। मेघनादका युद्ध पुष्य नक्षत्रमें हुआ था।

कहँ कोसलाधीस द्वौ* भ्राता। धन्वी सकल लोक बिख्याता॥ १॥
कहँ नल नील दुबिद सुग्रीवा। अंगद हनूमंत बल सींवा॥ २॥
कहाँ बिभीषन भ्राता द्रोही। आजु सबहि† हठि मारौं ओही॥ ३॥

अर्थ—(मेघनादने ललकारा कि) कोशलाधीश दोनों भाई जो समस्त लोकोंमें प्रसिद्ध धनुर्धर हैं वे कहाँ हैं?॥ १॥ नल, नील, द्विविद, सुग्रीव और बलकी सीमा अङ्गद और हनुमान् कहाँ हैं?॥ २॥ भ्राताका द्रोही विभीषण कहाँ है? आज मैं सबको और उसको तो हठ-(प्रतिज्ञा-) पूर्वक मारूँगा॥ ३॥

नोट—१ यहाँ नौ नाम गिनाये हैं। इन्हीं नौको यहाँ मेघनादने नाम लेकर ललकारा, औरोंका नाम न लिया। इसका कारण यह है कि प्रथम आठको पूर्व युद्धमें वानरसेनाने मुख्य माना है। श्रीरामलक्ष्मण और सुग्रीवकी जय बोलते थे, यथा—*'जयति राम जै लछिमन जय कपीस सुग्रीव।'* (३८); और जब निशाचरोंकी मारसे व्याकुल हुए थे तब त्राहि-त्राहि कर अङ्गद, हनुमान, नल, नील, और द्विविदको पुकारा था—*'कोउ कह कहँ अंगद हनुमंता। कहँ नल नील दुबिद बलवंता॥'* (४२। २) मेघनाद भी उस समय पश्चिम द्वारपर युद्ध कर रहा था, वहींपर हनुमान्‌जी थे। हनुमान्‌जीने यह पुकार सुनी—*'निज दल बिकल सुना हनुमाना।'* अतः उसने भी वानरोंको ये नाम लेते सुना था। इससे उन्हींको ललकारा, क्योंकि वे ही वानरोंके सहायक हुए थे। और विभीषणको ललकारना तो स्वाभाविक ही है, होना ही चाहिये, वह घरका भेदी है। 'भ्राता द्रोही' होना ही प्रधान कारण है।

नोट—२ *'कहँ कोसलाधीस द्वौ भ्राता।.........'* इति। (क) 'कोसलाधीश' का भाव कि सब कोसलपति पराक्रमी और वीर हुए; तुम भी वैसे ही हो। (ख) *'द्वौ भ्राता'* दोनों भाई 'धन्वी' 'सकल लोक विख्यात' हैं अतः दोनोंको एक साथ कहा। शूर्पणखासे दोनोंको अतुलित बली और प्रतापी सुन चुका है, उसने दोनोंको धन्वी कहा था। यथा—*'देखत बालक काल समाना। परम धीर धन्वी गुन गाना॥ अतुलित बल प्रताप दोउ भ्राता।'* (३। २२। ६-७) (ग) 'सकल लोक विख्यात' खरदूषणवधसे कहा। उनके वधसे सुरलोक, पाताल और पृथ्वी तीनोंमें प्रसिद्ध हुए। विराध, कबंध, बाली, ताटका और सुबाहु भी विख्यात वीर थे। इनका वध अङ्गदादिसे भी सुना है। (घ) यह विशेषण देकर ललकारनेका भाव कि अभीतक तो मैं इन्द्रजित् ही विख्यात था, आज त्रैलोक्य-विजयी विख्यात होऊँगा। (ङ) ☞दोनों भाई कोसलाधीश नहीं हैं, तब 'कोसलाधीस द्वौ' कैसे कहा? इसका समाधान यह है कि पाठक्रमसे अर्थक्रम बली होता है। अर्थ प्रसंगानुकूल कर लेना होता है। देखिये *'हृदय सराहत सीय लुनाई। गुर समीप गवने दोउ भाई॥'* (१। २३७। १) का साधारण अर्थ यही होगा कि दोनों भाई सीताजीकी सुन्दरता हृदयमें सराहते थे, पर ऐसा है नहीं। केवल श्रीरामजीसे ही प्रथम चरणका सम्बन्ध है। गुरुसमीप दोनों गये, अतः 'दोउ भाई' एक साथ कहा। वैसे ही यहाँ कोशलाधीश रामजी हैं पर आगे 'धन्वी.........' दोनों हैं अतः 'द्वौ भ्राता' कहा। इस प्रकारके और भी अनेक उदाहरण ग्रन्थमें हैं—*'स्यामल गौर किसोर सुहाये॥ देखि रूप लोचन ललचाने।'* (१। २३२। ३-४); *'हौं मारिहौं भूप दोउ भाई।'* (७८। १२) इत्यादि। पुनः दूसरी प्रकार यों भी कह सकते हैं कि पहले केवल रामजीको कहनेको हुआ पर तुरन्त सोचा कि दोनों ही बड़े विख्यात वीर हैं, अतः तुरत 'द्वौ भ्राता' कह दिया।

नोट—३ *'कहँ नल नील दुबिद सुग्रीवा।.........'* इति। (क) यहाँ अङ्गद और हनुमान्‌जीको पीछे कहा; क्योंकि इनके बलकी परीक्षा उसे हो चुकी है—अङ्गदका बल पैर हटानेमें और हनुमान्‌जीका अशोकवनमें एवं यहाँ रण-भूमिमें प्रथम युद्धके समय। नलादिका बल सुना है, परीक्षा अभी नहीं हुई है; अतः उन्हें प्रथम ललकारा। पंजाबीजीका मत है कि हनुमान्‌जीके तिरस्कारहेतु उनको अन्तमें कहा। (ख) *'बल सींवा'*

* दोउ—(का०)। 'द्वौ'। † सठहि।

विशेषण सबका भी हो सकता है एवं केवल हनुमान्‌जी या अङ्गद और हनुमान्‌जीका। शुकसे सबको बलसींव सुना है, यथा—*'दुबिद मयंद नील नल अंगदादि बिकटासि। दधिमुख केहरि निसठ सठ जामवंत बलरासि॥ ए कपि सब सुग्रीव समाना।'* रावणने हनुमान्‌जीकी प्रशंसा की है—*'है कपि एक महाबलसीला'* पर उस समयतक उसने अङ्गदका बल न देखा था! (ग) *'कहँ'* का भाव कि मर्द हो तो सामने आकर बल दिखाओ, कहाँ छिपे बैठे हो? आज सबका पराक्रम भुला दूँगा।

नोट—४ *'कहाँ बिभीषन भ्राता द्रोही'* इति। (क) मेघनाद यज्ञविध्वंसके पश्चात् (वाल्मी० ८७। ११—१८) में विभीषणजीको देखकर मेघनादने उनसे कहा है कि—तू यहीं पैदा हुआ, बढ़ा और हमारे पिताका साक्षात् भाई है, पर तुझमें न जातित्व है न सौहार्द। तेरे द्रोह करनेका न तो कोई प्रमाण ही है और न यह धर्म है। सत्पुरुष तेरी निन्दा ही करेंगे कि तू अपने वर्गको छोड़ शत्रुवर्गका जाकर टहलुवा बना।.........शत्रु गुणवान् और स्वजन निर्गुण ही क्यों न हो तो भी वह स्वजन ही अच्छा है। शत्रुपक्षसे मिलनेवाला अपने पक्षके नष्ट होनेपर शत्रुओंद्वारा मारा जाता है। स्वजन होकर भी हमारे साथ तुम निर्दयता कर रहे हो।—ये सब भाव 'भ्राताद्रोही' पदसे जना दिये गये हैं। (ख) *'हठि मारउँ ओही।'* भाव कि मारूँगा तो सभीको पर इसको तो कदापि जीता न छोड़ूँगा चाहे कोई भी सहायता क्यों न करे। इस ललकारमें 'गर्वसंचारीभाव' है। (ग) पु० रा० कु०—यदि *'सठहि हठ मारौं'* पाठ हो तो 'सठ' इससे कि राज्यलोभसे भाईका त्याग ऐसे अवसरपर किया और आते ही तिलक भी करा लिया।

प० प० प्र०—मेघनाद क्रोधावेशमें आकर विभीषणपर 'भ्रातृद्रोही' का आरोप (मिथ्याही) कर रहा है। क्रोध चारों नेत्रोंसे अंधा होता है। रावणने एक बार भी विभीषणको भ्रातृद्रोही नहीं कहा। रावणके नाना 'मन्त्रीवर' माल्यवान्‌ने उन्हें 'नीतिविभूषण' ही कहा है। मन्दोदरी और प्रहस्तने भी उनको 'भ्रातृद्रोही' नहीं कहा। और कुम्भकर्णने तो, *'धन्य धन्य तैं धन्य बिभीषन। भएहु तात निसिचरकुल भूषन॥ बंधु बंस तैं कीन्ह उजागर।'* इन शब्दोंसे अपने उस छोटे भाईकी सराहना ही की है।

अस कहि कठिन बान संधाने। अतिसय क्रोध श्रवन लगि ताने॥ ४॥
सर समूह सो छाड़ै लागा। जनु सपच्छ धावहिं बहु नागा॥ ५॥
जहँ तहँ परत देखिअहिं बानर। सनमुख होइ न सके तेहि अवसर॥ ६॥

शब्दार्थ—**संधानना**=धनुषपर चढ़ाकर लक्ष करना, अस्त्रको प्रयोग करनेके लिये ठीक करना। **कठिन**=तीक्ष्ण। **समूह**=समुदाय, एक ही तरहकी बहुत-सी चीजोंका ढेर।

अर्थ—ऐसा कहकर उसने कठिन बाणोंका संधान किया और अत्यन्त क्रोधसे धनुषको कानतक खींचा॥ ४॥ वह बाणोंका समूह छोड़ने लगा। (जो चलते ऐसे जान पड़ते थे) मानो बहुत-से पक्षयुत सर्प दौड़े जा रहे हों॥ ५॥ वानर जहाँ-तहाँ गिरते देख पड़ने लगे। उस समय कोई उसके सम्मुख न हो सका॥ ६॥

नोट—१ श्रवणतक ताने जिसमें दूरहीसे बेध सके। 'कहँ कोसलाधीस' से यहाँतक रौद्ररस है (रा० प्र०)।

नोट—२ *'सपच्छ धावहिं बहु नागा'* इति। 'नाग' और उसपर 'पक्षवाले' कहकर—(क) बाणोंको अत्यन्त वेगवान् जनाया। सर्प स्वभावतः वेगसे चलते हैं और जब पक्षयुत हो जाते हैं तब तो उनका कहना ही क्या? कहते हैं कि पक्षयुत नाग उड़कर मलयागिरि चन्दनवृक्षमें जा लिपटते हैं। इसी प्रकार अत्यन्त वेगसे बाण उड़ते चले जाते हैं, यथा—*'संधानि धनु सर निकर छाँड़ेसि उरग जिमि उड़ि लागहीं'* —यह अनुक्तविषयावस्तूत्प्रेक्षा अलंकार है। (ख) उनका छूटनेपर सर्पोंके आकारका होना सूचित किया। (ग) शीघ्र डसना और प्राण हरण करना जनाया (रा० प्र०)। यहाँ बाण सर्प नहीं हो जाते किन्तु वेगमें, विषैले होनेमें, चमचमानेमें, शीघ्र प्राण हरनेमें वे सर्पके समान हैं। बाणोंका सर्प बनकर लगना ७२ (१०) में ही कहा गया, यहाँ केवल उत्प्रेक्षा है।

नोट—३ पां०—*'सनमुख होइ न सके तेहि अवसर'* अर्थात् लड़नेका अवसर नहीं पाते।

प० प० प्र०—यहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार है। अतः 'बाण सर्प बन जाते हैं' ऐसा अर्थ नहीं है। श्रीरामजीके बाणोंके

सम्बन्धमें ऐसी ही उत्प्रेक्षा की गयी है। यथा—*'चले बान सपच्छ जनु उरगा।'* (९१। १) दोनों जगह एक-सी उत्प्रेक्षा करके जनाया कि मेघनादके बाण कपिसेनाको वैसे ही भयदायक हैं जैसे श्रीरामजीके बाण निशाचरचमूको।

जहँ तहँ भागि चले कपि रीछा*। बिसरी सबहिं जुद्ध कै ईछा॥ ७॥
सो कपि भालु न रन महँ देखा। कीन्हेसि जेहि न प्रान अवसेषा॥ ८॥

शब्दार्थ—**अवशेष**=बचा हुआ, बाकी, शेष। अन्त।

अर्थ—वानर और ऋक्ष जहाँ-तहाँ (इधर-उधर जिधर मौका मिला) भाग चले। सबको युद्धकी इच्छा भूल गयी॥ ७॥ रणभूमिमें कोई भी ऐसा वानर या रीछ नहीं देख पड़ा जिसको उसने प्राणमात्र अवशेष न कर दिया हो। (अर्थात् उनके प्राणमात्र ही बचे, पुरुषार्थ किंचित् भी न रह गया था। बल, धीरता, वीरता जाती रही, मृतकवत् हो गये)॥ ८॥

बं० पा०—*'भागि चले'* इति। सब भाग चले इसीसे 'कपि रीछा' पद दिया क्योंकि इनका धात्वर्थ यही है—*'कपि संचलने'* और *'री गतौ।'* [रा० प्र०—इससे जनाया कि सब भयसे व्याकुल हैं। *'जहँ तहँ परत देखिअहिं बानर।.........'* (६) और (७) में भयानक-रस है।]

दो०—दस दस सर सब मारेसि परे भूमि कपि बीर।
सिंहनाद† करि गर्जा मेघनाद बलधीर॥ ४९॥

अर्थ—मेघनादने दस-दस बाण सबको मारे। वीर वानर पृथ्वीपर गिरे, तब प्रबल बलवान् और धीर मेघनाद सिंहके समान शब्द करके गर्जन करने लगा।

नोट—१ ☞*'दस दस सर सब मारेसि.........।'* एक-एकको दस-दस बाण मारना कहकर संख्यारहित बाणोंका चलाना जनाया। संख्या होती तो अवश्य लिखते, यथा—*'सत्यसंध छाँड़े सर लच्छा। काल सर्प जनु चले सपच्छा॥'* (६७। ३) इत्यादि। भटोंकी संख्या नहीं, अतः बाणोंकी संख्या न की।

पु० रा० कु०—दस ही दस बाण मारनेका अभिप्राय कि एक-एक बाणसे एक-एक इन्द्रिय, इस प्रकार दसों कर्मज्ञानेन्द्रियाँ व्याकुल हो जायँ, उनमें रणका सामर्थ्य न रह जाय।

नोट—२ *'सिंहनाद करि गर्जा'* इति यह गर्जन जय, गर्व और ललकारका सूचक है। गर्व हुआ कि मैंने वीरोंको गिरा दिया, कोई सम्मुख नहीं होता, सब घायल और व्याकुल पड़े हैं और ललकार यह कि मर्द हो सो सामने आवे। इसी तरह हनुमान्‌जीका अशोकवनमें गर्जन है। यथा—

जय—*'ताहि निपाति महाधुनि गर्जा।'* (अक्षयकुमारको मारकर गर्जे)।
ललकार—*'सुनि रावन पठये भट नाना। तिन्हहिं देखि गर्जेउ हनुमाना॥'* (५। १७। ५)
'कपि देखा दारुन भट आवा। कटकटाइ गर्जा अरु धावा॥' (५। १९। ४)
जय, बलगर्व—*'करि दाप चाप चढ़ाइ दस संधानि सर बहु बर्षई।'* (९६)
'किये सकल भट घायल भयाकुल देखि निज बल हर्षई।' (रावण)

बं० पा०—सिंहनादका भाव कि रीछ-वानररूपी मत्तगजगणको विदीर्ण कर चुका है। मेघनाद-नाम यहाँ सार्थक है क्योंकि मेघके समान बाण-वृष्टि की है और गर्जा भी है।

देखि पवनसुत कटक बेहाला। क्रोधवंत जनु धायेउ काला॥ १॥
महासैल एक तुरत‡ उपारा। अति रिस मेघनाद पर डारा॥ २॥

---

* 'भागे भय व्याकुल कपि रीछा'—(काशी) पर रा० प्र० में उपर्युक्त ही है।

† 'मारेसि दसदस बिसिष सब' और 'सिंहनाद गर्जत भयउ मेघनाद रनधीर' यह पाठ काशीकी प्रतिका कहा जाता है पर रा० प्र० में उपर्युक्त पाठ है।

‡ 'महामहीधर तमकि उपारा' (का०, ना० प्र०) तमकि उपारा—(रा० प्र०)।

शब्दार्थ—बेहाल=व्याकुल।—'*जनु बिनु पंख बिहंग बेहालू*'—(अ०)

अर्थ—सेनाको विकल देखकर पवनसुत क्रोधमें भरकर ऐसे दौड़े मानो काल ही दौड़ा हो॥ १॥ तुरंत एक विशाल पर्वत उखाड़ा और बहुत ही क्रोधसे मेघनादपर उसे डाल दिया॥ २॥

बं० पा०—'*क्रोधवंत*.........' से रौद्ररसकी प्रधानता दिखायी। कालकी उत्प्रेक्षाका भाव कि उसके प्राणहरणके लिये दौड़े हैं। रुद्रावतार हैं ही, इससे कालकी उत्प्रेक्षा भी बड़ी उत्कृष्ट हुई है।—उक्तविषयावस्तूत्प्रेक्षा है।

हनुमान्-मेघनाद-युद्ध यहाँतक तीन बार हुआ। इन तीनोंके मिलान नक्शे और आवृत्तिरूपमें नीचे दिये हैं जिनसे सबका दिग्दर्शन सहज ही हो जायगा—

प्रथम युद्ध	दूसरा युद्ध	तीसरा युद्ध
१ *कपि देखा*	*मेघनाद तहँ करइ लराई*	अबकी ललकारा है—
दारुन भट आवा	*टूट न द्वार परम कठिनाई*	'*कहँ*.........*अंगद हनुमंत* .....'
२	*निज दल बिकल सुना हनुमाना*	*देखि पवनसुत कटक बेहाला*
३ *कटकटाइ गर्जा*	*पवन तनय मन भा अतिक्रोधा*	*क्रोधवंत जनु धायेउ काला*
अरु धावा	*गर्जेउ प्रबल काल सम जोधा*	
४ *अति बिसाल*	*कूदि लंक गढ़ ऊपर आवा*	*महासैल एक तुरत उपारा*
तरु एक उपारा	*गहि गिरि मेघनाद कहुँ धावा*	*अति रिस मेघनाद पर डारा*
५ *बिरथ कीन्ह*.......	*भंजेउ रथ सारथी निपाता*	*रथ सारथी तुरग सब खोई*
६ *मुठिका मारि*........	*ताहि हृदय महँ मारेसि लाता*	*आवत देखि गएउ नभ सोई*
७ *ताहि एक छन*	*दुसरे सूत बिकल तेहि जाना*	*बार बार प्रचार हनुमाना।*
मुरछा आई।	*स्यंदन घालि तुरत गृह आना*	*निकट न आव मरम सो जाना।*

☞ हनुमान्जीका क्रोध, गर्जन और पुरुषार्थ उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया—

१ प्रथम बार (सुन्दरकाण्डमें) मेघनादको देखकर ही दारुण भट जान 'कटकटाए' 'गर्जे' 'धाये'। दूसरी बार उससे मोर्चा लड़ रहे थे, द्वार टूटता न था और अपनी सेनाकी पुकार सुन पड़ी, अतः तब 'अति क्रोध हुआ' '**प्रबल काल सम गर्जे**' और धाये। तीसरी बार सारा कटक व्याकुल देखा तब '***क्रोधवंत जनु काला***' '*जनु धायेउ काला।*' अर्थात् पहलेमें साधारण क्रोधादि, दूसरेमें कालसमान और तीसरेमें वे स्वयं ही मानो काल हो गये। इति प्रथमावृत्तिः।

२ प्रथम बार अपनेको रावणतक पहुँचाना था और वनमें युद्ध हो रहा था, अतः '*अति बिसाल तरु*' उखाड़कर मारा। दूसरी बार द्वार न टूटता था तब मारना चाहा, अतः '*गहि गिरि*' पड़ा हुआ पर्वत शिखर उठाकर मारा, पर वह मूर्च्छित हुआ, मरा नहीं। अतः तीसरी बार 'महाशैल उखाड़कर' दौड़े। इति द्वितीयावृत्तिः।

३ प्रथम दो युद्धोंमें आदिमें क्रोध दिखाया और तीसरेमें आद्यन्त क्रोध है, यथा—'*क्रोधवंत जनु धायेउ काला*' और '*अति रिस मेघनाद पर डारा।*' इति तृतीयावृत्तिः।

४ जब वृक्षसे मारा तब वह रथहीन मात्र हुआ—'*बिरथ कीन्ह*........*।*' जब गिरि चलाया तब रथ और सारथीरहित हुआ—'*भंजेउ रथ सारथी निपाता।*' और जब महाशैल डाला तब रथ, सारथी और घोड़े तीनोंका नाश हुआ-'*रथ सारथी तुरग सब खोई।*' इति चतुर्थावृत्तिः।

५ प्रथम बार वह स्वयं लड़ने आया था, दूसरी बार दोनों एक ही मोर्चेपर नियुक्त किये गये थे, तीसरी बार वह ललकारता हुआ आया था। अतः उत्तरोत्तर इन्होंने अधिक पराक्रम दिखाया। दो बार उसने न ललकारा तब इन्होंने भी न ललकारा। अबकी उसने आते ही ललकारा था, अतः इन्होंने भी उसे ललकारा। उसने एक बार ललकारा, इन्होंने बारंबार ललकारा—'*बारबार प्रचार हनुमाना।*' उसने ललकारा तब ये सामने न थे और इसने सम्मुख ललकारा। वह ललकारपर भागा। इति पञ्चमावृत्तिः।

६ उत्तरोत्तर मेघनादका अधिक अपमान और पराजय हुआ। पहली बार घूँसा खाया, दूसरी बार लात

खायी, तीसरी बार भागा। जब 'मुठिका' मारी तब क्षणभर मुर्च्छा हुई—*'मुठिका मारि चढ़ा तरु जाई। ताहि एक छन मुर्छा आई॥'* जब लात मारी तब देरतक मूर्च्छा रही—*'दुसरे सूत बिकल तेहि जाना.........'* तीसरी बार *'निकट न आव मरम सो जाना।'* इति षष्ठावृत्तिः।

७ पहली बार साधारण क्रोध और गर्जन, दूसरी बार कालसमान गर्जन था, काल-समान 'धावा' न था और तीसरी बार 'कालरूप क्रोध' और 'धावा' दोनों थे। कालवत् गर्जनसे मेघनाद न डरा, अतः दूसरी बार भी सामने आया। तीसरी बार कालरूप हो दौड़े अतः वह सामने न आया। कालको देख सामने कैसे आता? इति सप्तमावृत्तिः।

८ प्रथमसे दूसरेमें अधिक काम था और दूसरेसे तीसरेमें। वैसे ही हनुमान्‌जीने उत्तरोत्तर शीघ्रता की। प्रथम युद्ध आठ अर्धालियों और एक दोहेमें, दूसरा युद्ध छः अर्धालियोंमें और तीसरा साढ़े तीन अर्धालियोंमें समाप्त किया। तीसरेमें 'तुरत' पद भी आया है। इति अष्टमावृत्तिः।

आवत देखि गएउ नभ सोई। रथ सारथी तुरग सब खोई॥ ३॥
बार बार पचार हनुमाना। निकट न आव मरमु सो जाना॥ ४॥

अर्थ—पर्वतको आते देख वह आकाशमें चला गया। उसके रथ, सारथी, घोड़े सब नष्ट हो गये॥ ३॥ हनुमान्‌जी उसे बारंबार ललकारते हैं। परन्तु वह मर्म जानता है इससे पास नहीं आता॥ ४॥

नोट—१ *'गएउ नभ'* का भाव कि पूर्व गढ़परसे उतरकर पृथ्वीपर आया था, यथा—*'उतर्‍यो बीर दुर्ग ते.........'* (४८) और पृथ्वीपर ही सबको बाणोंसे विकल कर दिया था। अब पर्वत आते देख आकाशको चला गया।

नोट—२ *'रथ सारथी तुरग सब खोई'* से जनाया कि गढ़से उतरकर रथपर सवार होकर रणभूमिमें आया था, अब रथ छोड़ प्राण बचाये। पुनः, यहाँ हनुमान्‌जीकी शीघ्रता और पर्वतकी विशालता भी दिखायी कि सारथी न अपनेको और न रथादिको ही बचा सका। मर्म=स्वरूप, रहस्य, भेद। वह इनके रहस्यको, इनके स्वरूप बलादिको जानता है। पूर्व दो बार हनुमान्‌जीसे पाला पड़ चुका है। तब हनुमान्‌जीने जो दुर्गति की थी वह याद आ गयी है। वही हाल यहाँ होगा। अबकी प्राण ही ले लेगा। प्रथम बार घूँसा खा चुका है, उनके एक घूँसेसे ही मूर्च्छित हो गया था। दूसरी बार भूलसे लात भी खायी। अब यह तीसरी बार सामना है, इससे सँभल गया और प्रथम ही वहाँसे हट गया। प्रथम बार मल्लयुद्ध करके शरीर-बल भी देख चुका है।—५० (१-२) देखिये।

वि० त्रि०—हनुमान्‌जीके फेंके हुए पर्वतको अपने रथके ऊपर आते हुए देखकर, उसने समझ लिया कि रथ, सारथी, घोड़े अब एक नहीं बचते, इस रथपर रहनेसे मैं भी पिस जाऊँगा, अतः रथपरसे आकाशमें उड़ गया, नीचे नहीं कूदा क्योंकि हनुमान्‌जीके लाघव-(फुर्ती-) को जानता है। चारों फाटकोंकी लड़ाईमें जब हनुमान्‌जी कूदकर गढ़पर चढ़ गये, तो मेघनादपर पर्वत फेंका था। उससे रथ टूट गया, सारथी पिस गया, मेघनाद नीचे कूदे, तब हनुमान्‌जीकी लात बैठ गयी। दूसरे सूतने उसे अपने रथपर लाद लिया और घर पहुँचा दिया। इस बार भी वही दशा होगी इसलिये पृथ्वीपर न कूदकर आकाशमें उड़ गया।

पं०—अथवा, मर्म यह कि सूक्ष्म वेष किये रुद्र हैं। वा, यह कि मेरी मृत्यु उससे है जो १२ वर्ष निद्रा, नारि और भोजनका त्याग कर चुका हो सो कदाचित् इन्होंने निद्रा और भोजनका त्याग न किया हो।

प० प० प्र०—मर्म यह कि ये अवध्य हैं; ब्रह्मास्त्र और नागपाशोंका भी प्रभाव इनपर नहीं पड़ सकता, समीप जानेसे अपना ही नाश सम्भव है।

रघुपति निकट गएउ घननादा। नाना भाँति कहेसि* दुर्बादा॥ ५॥

अर्थ—मेघनाद श्रीरघुनाथजीके समीप गया और अनेक तरहके दुर्वचन कहे॥ ५॥

☞ *'घननादा'* नाम देकर जनाया कि गर्ज-गर्जकर (क्रोधसहित) दुर्वचन कहेगा और अपना पुरुषार्थ

* करेसि—गी० प्रे०।

जनायेगा। क्रोधयुक्त भी जनाया, यथा—*'तब सकोप बोलेउ घननादा। कौतुक प्रात देखियहु मोरा॥'* (४८। ५-६) जब-जब इसने 'दुर्बाद' मुँहसे निकाला और कोप दिखाया है तब-तब इसको 'घननाद' नाम कविने दिया है। यथा—*'ब्याकुल कटक कीन्ह घननादा। पुनि भा प्रगट कहइ दुर्बादा॥'* (७३। ३) पर इसका अर्थ यह नहीं है कि जहाँ-जहाँ घननाद शब्द है वहाँ दुर्वाद अवश्य है।

'घननादा' में वाल्मी० ८८ मेंका कथित भाव भी जनाया कि उसने कहा कि जैसे गरजते हुए मेघोंके सामने कोई खड़ा नहीं रह सकता वैसे ही मेरे गर्जन और शरवृष्टिके सामने कोई नहीं खड़े रह सकते हो। वाल्मीकीयमें ऐसे प्रसंगोंपर विस्तार है जो युद्धकाण्डके सर्ग ८८ में उदाहृत हैं। गोस्वामीजीने जान-बूझकर दुर्वचनवाले प्रसंगोंका विस्तार नहीं किया है, क्योंकि भक्तोंके लिये यह अप्रिय है, रावणके वचनोंमें दुर्वादके उदाहरणसे उसके प्रकारको स्पष्ट कर दिया है। यथा—*'आजु बयरु सब लेउँ निबाही। जौं रन भूप भाजि नहिं जाहीं॥ आजु करउँ खलु काल हवाले। परेहु कठिन रावनके पाले॥ सुनि दुर्बचन………।'* (८९। ७—९)

पं०—प्रथम उसने ललकारा था पर उत्तम विशेषण दिये थे, दुर्वचन न कहे थे। अब दुर्वचन कहनेका भाव कि निशिचरने स्वभावसे नीति त्याग दी। अथवा, हनुमान्‌जीसे खिसियाया हुआ है। उनसे न चली तब इनपर खीझने लगा और दुर्वचन कहे। मानो खिसियानेका बदला इनसे लेना चाहता है।

अस्त्र सस्त्र आयुध सब डारे। कौतुक ही प्रभु काटि निवारे॥ ६॥
देखि प्रताप मूढ़ खिसिआना। करै लाग माया बिधि नाना॥ ७॥
जिमि कोउ करै गरुड़ सैं खेला। डरपावै गहि स्वल्प सपेला॥ ८॥

अर्थ—मेघनादने श्रीरामजीपर अस्त्र और शस्त्र सभी प्रकारके सब हथियार चलाये। प्रभुने उन्हें खेलमें (सहज) ही काटकर निवारण किये (रोके, पास तक न आने दिये)॥ ६॥ वह मूर्ख श्रीरामजीका प्रताप देखकर लज्जित हुआ और अनेक प्रकारकी माया करने लगा॥ ७॥ जैसे कोई गरुड़से खेल करे और छोटा-सा सर्पका बच्चा (हाथमें) लेकर उसे डरवाये॥ ८॥

नोट—१ (क) *'देखि प्रताप'*—यह कि हमारे सब आयुधोंको सहज की काट डाला। अस्त्र-शस्त्र—*'अस्त्र-शस्त्र कछु नयन न देखा।'* (१४। १) देखिये। (ख) *'मूढ़'* का भाव कि मन्दबुद्धि न होता तो इनका प्रताप देख शरणमें आता पर अभी उसे अपनी मायाका गर्व है इससे नहीं समझता, उनके बलकी थाह लेना चाहता है। यथा—*'मूढ़ तोहि अतिसय अभिमाना।'* (४। ९। ९), *'मूढ़ मंदमति कारन कागा।'* (३। १। ७), *'ताहि दिखावइ निसिचर निज माया मति खोट।'* (५०)

नोट—२ (क) *'जिमि कोउ करै………।'* इति। यहाँ उदाहरण अलंकार है। रघुनाथजी और गरुड़, मेघनादकी माया और छोटा सपेला उपमेय उपमान हैं। सर्प पकड़कर दिखाना खेल करना है। 'स्वल्प सपेला' का भाव कि मेघनादकी माया 'स्वल्प सपेला' ब्रह्मादिकी माया सपेला, और प्रभुकी माया बड़ी नागिन है। जब बड़ी नागिन ही गरुड़से डरे तो अत्यन्त छोटे सर्पकी बात ही क्या? *'जो माया सब जगहि नचावा'* वह ही जब प्रभुके भ्रू-विलासपर नाचती है तब इसकी माया क्या चीज है? यही भाव आगेके दोहेमें स्पष्ट करते हैं। पुनः, भाव कि विधि-हरि-हरकी माया भी रामजी- (तो दूर रहे उन-) के भक्तके हृदयपर भी प्रभाव डालनेको समर्थ नहीं हो सकती थी, यथा—*'बिधि हरि हर माया बड़ि भारी। सोउ न भरत मति सकइ निहारी॥'* (अ० २९५) तब भला निशिचर माया स्वयं उनका क्या कर सकेगी?

दो०—जासु प्रबल माया* बस सिव बिरंचि बड़ छोट।
ताहि देखावै निसिचर निज माया मति खोट॥ ५०॥

* बिबस—(का०)।

शब्दार्थ—**खोट**=दूषित, क्षुद्र, बुरी। बड़ छोट—छोटे-बड़े मुहावरा है।=जो सबसे बड़े हैं उनसे लेकर सबसे छोटेतक अर्थात् सभी। जैसे—*'तुम्हहि आदि खग मसक प्रजंता।'*

अर्थ—जिनकी अत्यन्त बलवान् मायाके वश में शिव-ब्रह्मा (से लेकर) सभी बड़े-छोटे जीव हैं उन्हींको क्षुद्रबुद्धि निशाचर अपनी माया दिखाता है (मायासे डरवाना चाहता है)॥ ५०॥

नोट—१ *'जासु प्रबल माया बस·······।'* यथा—**'यन्मायावशवर्ति विश्वमखिलं ब्रह्मादिदेवासुराः'**—(बा० मं० श्लो०), *'सुर नर मुनि कोउ नाहिं जेहि न मोह माया प्रबल।'* (१। १४०)

नोट—२ भाव यह कि मेघनादने यह माया शिवजी और ब्रह्माजीसे पायी और इनको जो कुछ मिला वह प्रभुसे। जब वर देनेवालोंकी सामर्थ्य नहीं कि वे प्रभुकी मायाकी ओर देख भी सकें—***'सिव चतुरानन जाहि डेराहीं। अपर जीव केहि लेखे माहीं॥'*** (७। ७। ८) तब यह समझना कि मैं अपनी मायासे इन्हें मोहित कर लूँगा, मूर्खता है; इसीसे 'मति खोट' कहा।

नोट—३ प्र० स्वामीजीका मत है कि यहाँ भी विष्णुका अन्तर्भाव न करके विष्णु-अवतारी रामावतार सूचित किया है। यथा—*'सिव बिरंचि जेहि सेवहिं·······।'* (४७)

नभ चढ़ि बरष बिपुल अंगारा। महि ते प्रगट होहिं* जलधारा॥ १॥
नाना भाँति पिसाच पिसाची। मारु काटु धुनि बोलहिं नाची॥ २॥
बिष्टा† पूय रुधिर कच हाड़ा। बरषइ कबहुँ उपल बहु छाड़ा॥ ३॥
बरषि धूरि कीन्हेसि अँधियारा। सूझ न आपन हाथ पसारा॥ ४॥
कपि अकुलाने माया देखें। सब कर मरन बना एहि लेखें॥ ५॥

शब्दार्थ—**बिष्टा** (**विष्ठा**)=मैला, मल, पाखाना। **पूय**=पीप, मवाद। **हाड़**=हड्डी, अस्थि। **छाड़ा** (छार, क्षार)=राख।=छोड़ा या गिराया। **पसारा**=फैलाया। **लेखना**=ठीक-ठीक अन्दाजा करना; मन-ही-मन ठहराना, सोचना। **बनना**=संयोग होना।

अर्थ—(मेघनाद) आकाशमें चढ़कर बहुत अङ्गारे बरसाने लगा। पृथ्वीसे जलकी धाराएँ प्रकट होने लगीं। (भाव कि वानर ऊपर जायँ तो आगमें जलें और पृथ्वीपर रहें तो जलकी धारामें डूबें और बह जायँ। ऊपर-नीचे दोनों जगह मरण ही हो)॥ १॥ अनेक प्रकारके पिशाच, पिशाचिनियाँ नाच-नाचकर अनेक प्रकारसे मारो-काटो यह शब्द बोल रही हैं॥ २॥ कभी विष्ठा, पीप, रुधिर (खून), बाल और हड्डियाँ बरसाता है और कभी बहुतसे पत्थर और राख बरसाता है॥ ३॥ धूल बरसाकर ऐसा अँधेरा कर दिया कि अपना ही फैलाया हुआ हाथ नहीं सूझ पड़ता (दिखायी देता)॥ ४॥ मेघनादकी माया देख वानर व्याकुल हो गये और यह सोचने लगे कि सबकी मृत्युका संयोग आ बना। (वा, इस हिसाबसे अर्थात् ऐसा ही रहा तो सबकी मृत्यु बनी-बनायी है)॥ ५॥

नोट—१ पूर्व कहा कि ***'करै लाग माया बिधि नाना'*** अब उन नाना विधिकी मायाओंका वर्णन करते हैं। (१) अङ्गारे बरसाना। (२) जलधारा प्रकट करना। (३) नाना जातिके पिशाची-पिशाच उत्पन्न करना जो नाचते इत्यादि हैं। (४) 'विष्ठा, पूय' आदिकी वर्षा। (५) राखकी वर्षा। (६) पत्थरकी वर्षा। (७) धूलिकी वर्षा।

नोट—२ (क) ***'पिसाच पिसाची।'*** ये यक्षों और राक्षसोंसे हीन कोटिके कहे गये हैं। इनका स्थान मरुस्थल बताया गया है। ये बहुत अशुचि और गन्दे कहे गये हैं। युद्धक्षेत्रों आदिमें इनके बीभत्स काण्डोंका वर्णन कवियोंने किया है, जैसे खोपड़ीमें रक्त पीना आदि। (श० सा०) यही कारण है कि इनको 'मार काट' में आनन्द मिलता है। इसीसे 'नाची' पद दिया अर्थात् वे 'मारो काटो' ध्वनि करनेमें आनन्द मानते

* होहि, बोलहि, कबहु। † विष्ठा—(का०)

हैं—(पु० रा० कु०, बं० पा०)। (ख)—*'मारु काटु धुनि बोलहिं।'* डर उत्पन्न करनेके लिये, यथा—*'धरु धरु धरु करहिं भयंकर गिरा।'* (आ० २० छंद)

कौतुक देखि राम मुसुकाने। भए सभीत सकल कपि जाने॥ ६॥
एक बान काटी सब माया। जिमि दिनकर हर तिमिर निकाया॥ ७॥

अर्थ—यह कौतुक देखकर श्रीरामजी मुस्कुराये और जाना कि सभी वानर डर गये हैं॥ ६॥ तब प्रभुने एक ही बाणसे सब माया काट दी जैसे (एक) सूर्य अन्धकार-समूहको हर लेता है॥ ७॥

नोट—१ *'कौतुक देखि राम मुसुकाने'* इति। जो मेघनादके लिये बड़ी भारी माया थी वह प्रभुके लिये कौतुक था। मानो वह खेल-तमाशा दिखाता था और ये देखते थे। जैसे खेलसे डर नहीं लगता वैसे ही उसकी मायासे इनको कुछ भय न उत्पन्न हुआ······यह भाव 'कौतुक' से जनाया।

नोट—२ 'मुसुकाने' निरादरसूचक है। हँसे कि—(क) हमें अपनी मायासे डराना चाहता है। (ख) मेघनादकी मायासे कपि डर गये यह देख हँसी आ गयी कि देखो तो इसने अपनी मायासे सबको भयभीत कर दिया। (पं०) (ग) कौतुक देखकर हँसना कृपासूचक है—*'हृदय अनुग्रह इंदु प्रकासा। सूचत किरन मनोहर हासा॥'* (१। १९८। ७) यह विचारकर हँसे कि देखो तो हमारे देखते ही वानरोंपर संकट पड़ रहा है, हमारे लिये ही ये सब कष्ट सह रहे हैं। (पु० रा० कु०) आगे 'कृपादृष्टि' कवि स्वयं लिखते हैं—*'कृपादृष्टि कपि भालु बिलोके।'* वा, (घ) सब देवांश होकर भी झूठी मायाको सत्य समझे। (रा० प्र०) वा, हँसी आपकी माया है, यथा 'माया हास·········' हँसकर प्रभुने मेघनादकी राक्षसी मायाका विनाश करनेको अपनी माया छोड़ी। बाणके साथ जाकर उसने निमिषमात्रमें राक्षसी मायाका संहार किया। स्मरण रहे कि हँसीमें मायाको प्रेरणा और मायाका आकर्षण भी होता है। (प० प० प्र०)

नोट—३ *'जिमि दिनकर हर तिमिर निकाया'* इति। (क) माया 'नाना बिधि' की है, इसीसे *'तिमिर निकाया'* कहा। एक सूर्य सब प्रकारके अन्धकारको नष्ट कर देता है वैसे ही यहाँ एक ही बाणने सब प्रकारकी माया हर ली। (ख) जैसे तिमिरनिकाय (अन्धकार) भूखण्डमें व्याप्त रहता है, एक स्थानसे सूर्य निकलते हैं और सम्पूर्ण अन्धकार ऐसा नष्ट हो जाता है कि कुछ भी शेष नहीं रह जाता। इसी भाँति सम्पूर्ण रणभूमिमें माया फैली हुई थी। *'बिष्टा पूय रुधिर कच हाड़'* से भरी हुई थी, धूलिकी वर्षा हो रही थी, सरकारके एक बाणके उदय होते ही सब माया नष्ट हो गयी, विष्ठा, पूय, रुधिरादि कहीं कुछ भी नहीं। जैसे कोई सिनेमाके प्रकाश-विस्तारक यन्त्रको एक बाणसे तोड़ दे, और परदेपरका सम्पूर्ण दृश्य उसी क्षण निःशेष हो जाय। (वि० त्रि०) (ग) *'दिनकर'* का दृष्टान्त देकर यह भी सूचित किया कि भास्कर-बाणसे ही तमका नाश किया और बिना परिश्रम ही। (प० प० प्र०) (घ) मेघनादपर बाण क्यों न चलाया, इसका कारण यह है कि वह रावणका पुत्र है और प्रभुका जोड़ रावण और कुम्भकर्णसे ही उचित है; पुत्रपर हाथ क्या चलावें। इसकी जोड़में लक्ष्मणजीको भेजेंगे।

कृपादृष्टि कपि भालु बिलोके। भए प्रबल रन रहहिं न रोके॥ ८॥

अर्थ—कपि-भालुपर कृपा-दृष्टिसे देखा जिससे वे ऐसे प्रबल हो गये कि रणमें रोकनेसे भी नहीं रुकते (अर्थात् उनको मेघनादके मुकाबिलेमें जानेसे रोका भी गया तो भी वे नहीं मानते। ऐसा बल आ गया कि अब उसको तुच्छ समझने लगे।)॥ ८॥

नोट—१ श्रीरामजीने बाणसे माया काट दी, पर वानर लड़नेको न दौड़े। कारण कि प्रथम तो वे उसके बाणोंसे ही ऐसे प्राणावशेष हो गये थे कि उनको युद्धकी इच्छा भूल ही गयी। उसपर भी मायाने और भी व्याकुल कर दिया था, इससे लड़नेका उत्साह भी जाता रहा। नहीं तो वे माया कटते ही तुरन्त फिर लड़नेको दौड़ते जैसे अकंपनादिकी माया कटते ही दौड़े थे, यथा—*'भालु बलीमुख पाइ प्रकासा। धाए हरष बिगत श्रम त्रासा॥'* (४६। ३—५) यहाँ न धावा करनेसे उत्साहहीन समझकर प्रभुने उनपर कृपादृष्टिसे भी देखा।

कृपावलोकनसे वे प्रबल हो गये, शिथिलता जाती रही। यथा—'*देखी राम सकल कपि सैना। चितइ कृपा करि राजिवनयना॥ राम कृपा बल पाइ कपिंदा। भए पच्छजुत मनहु गिरिंदा॥*' (सुं० ३५। २-३)

नोट—२ प्रथम बाण चलाकर माया हरण की, फिर कृपादृष्टिसे उनमें बल और उत्साह भर दिया। पूर्व अनिप और अकंपनकी माया अग्निबाणसे हरी; वैसे ही यहाँ भी अग्निबाणसे माया हरी, वा भास्करबाणसे।

नोट—३ '*भए प्रबल रन रहहिं न रोके*' इति। इससे यह ध्वनि भी निकलती है कि जब वे न रुके तब मेघनादको प्रबल जानकर श्रीरामजी स्वयं उनकी सहायताको चले। यह देख लक्ष्मणजीने आज्ञा माँगी। वाल्मी० ५९ के शक्ति-प्रसङ्गमें आज्ञा इसी कारण माँगी गयी है। दोहा ५१ में देखिये।

मेघनाद-लक्ष्मण-प्रथम युद्ध

(शक्ति-प्रकरण)

दो०—आएसु माँगि राम पहि अंगदादि कपि साथ।
लछिमन चले क्रुद्ध* होइ बान सरासन हाथ॥५१॥

अर्थ—श्रीरामचन्द्रजीसे आज्ञा माँगकर अङ्गदादि वानरोंके साथ श्रीलक्ष्मणजी क्रोधित होकर हाथमें धनुष-बाण लिये हुए चले॥ ५१॥

नोट—१ '*आएसु माँगि*'। भाव कि श्रीरामजीने उन्हें जानेको नहीं कहा, पर उन्होंने यह उचित न समझा कि हमारे रहते स्वामी स्वयं कष्ट उठावें, दूसरे वे यह न सह सके कि हमारे रहते मेघनाद प्रभुको दुर्वचन कहे और उन्हें अपनी माया दिखावे। अतः उन्होंने स्वयं आज्ञा माँगी। आज्ञा माँगनेपर उन्हें आज्ञा मिली तब गये। आज्ञा न मिलती तो न जाते। धनुष तोड़नेकी आज्ञा माँगी थी—'*नाथ जानि अस आयसु होऊ।*' वहाँ आज्ञा न मिली—'*सयनहिं रघुपति लखन निवारे।*' फिर चित्रकूटमें भरतका सेनासहित आगमन सुन आज्ञा माँगी थी—'*उठि कर जोरि रजायसु माँगा।*.........' (अ० २३०। १) पर वहाँ भी न मिली। इससे वे काम न किये।

वाल्मी० ५९ में शक्तिका प्रसङ्ग रावण-लक्ष्मण-युद्धमें है। वहाँका प्रसङ्ग इस दोहेसे मिलता है। वाल्मीकिजी लिखते हैं कि—'बादमें महात्मा रामजी धनुष लेकर जल्दीसे चले। तब लक्ष्मणजीने हाथ जोड़कर परमार्थयुक्त वचन कहे कि—हे आर्य! इस दुरात्माके वधके लिये मैं अच्छी तरह सुपर्याप्त हूँ। हे विभो! मैं इसका विध्वंस करूँगा, आप ऐसा समझिये। यथा—'**काममार्य सुपर्याप्तो वधायास्य दुरात्मनः। विधमिष्याम्यहं चैतमनुजानीहि मां विभो॥**' (४७) तब सत्यपराक्रम रामजी बोले कि 'जाइये, यत्नपूर्वक रहियेगा।' '**गच्छ यत्नपरश्चापि भव लक्ष्मण संयुगे॥**' (४८) उसके छिद्रोंको देखते रहना और अपने छिद्रोंको बचाते हुए रहना। नेत्रों और धनुषसे होशियारीसे अपनी रक्षा करना।

मा० म० का मत है कि रामचन्द्रजीने कणमात्र भी दत्तचित्त होकर श्रीलक्ष्मणजीको जानेको नहीं कहा; क्योंकि स्वामीके समीप अपनी रुचि-अनुसार बोलना अनुचित है।

पं०—लक्ष्मणजीने लड़नेकी आज्ञा माँगी कि वह रावणका पुत्र है और मैं आपका पुत्र हूँ। इस तरह मेरा और उसका संग्राम उपयुक्त है।

बं० पा०—'*बान सरासन हाथ*' से निज पुरुषार्थका बल जनाया।

नोट—२ '*अंगदादि कपि साथ*'। 'आदि' पद देकर दोहा ७४ में अङ्गदके बाद गिनाये हुए नाम यहाँ भी सूचित किये, यथा—'*अंगद नील मयंद नल संग सुभट हनुमंत।*' आगे कहना है इससे यहाँ एक ही नाम दिया।

नोट—३ यहाँ चलते समय प्रणाम करना नहीं कहा गया। इसका कारण '**क्रुद्ध होइ**' है। क्रोधमें ज्ञान

* सकोप तब-(का०)। क्रुद्ध होइ (भा० दा०)।

नहीं रह जाता—*'करइ क्रोध जिमि धर्महि दूरी।'* (४। १५। ४) क्रोधावेशमें प्रणाम करना भूल गये; इसीका फल शक्ति लगना है। दूसरे युद्धमें जाते समय प्रणाम किया है, यथा—*'रघुपति चरन नाइ सिर चलेउ तुरंत अनंत॥'* (७४) वहाँ क्रोध नहीं है। अतएव उस संग्राममें विजय प्राप्त हुई। दोहा ७५ (१५) देखिये।

प्रथम संस्करणमें हमने इतना लिखा था। परन्तु पीछे देखा कि रावणसे युद्ध करनेके लिये जब श्रीलक्ष्मणजी गये तब वे प्रणाम करके गये हैं। यथा—*'निज दल बिकल देखि कटि कसि निषंग धनु हाथ। लछिमन चले क्रुद्ध होइ नाइ राम पद माथ॥'* (८१) यद्यपि 'क्रुद्ध होइ' चले तथापि प्रणाम नहीं भूले। प्रणाम करके गये तो भी उनको शक्ति लगी और वे मूर्च्छित हुए। यथा—*'सो ब्रह्मदत्त प्रचंड सक्ति अनंत उर लागी सही। परयो बीर बिकल उठाव दसमुख अतुल बल महिमा रही॥'* (८२ छंद) अतएव उपर्युक्त भावमें शिथिलता आ जाती है। अतः तीनों प्रसङ्गोंका कुछ विस्तृत मिलान किया जा रहा है—

प्रथम युद्धमें—*'आयसु माँगि[१] चले[२] क्रुद्ध होइ[३]'*

दूसरे युद्धमें—*'रघुबीर[१] दीन्हि अनुसासन।'* (७४। ११), *'प्रभु[५] प्रताप उर धरि रनधीरा। बोले[३] घन इव गिरा गँभीरा।.........'* (७४। १२—१५), *'रघुपति चरन नाइ[४] सिरु चलेउ[२]...........।'* (७४) और युद्धमें भी *'सुमिरि कोसलाधीस प्रतापा'*।

तीसरे युद्धमें—(वानरोंकी पुकारपर[१]) *'लछिमन चले[२] क्रुद्ध होइ[३] नाइ[४] रामपद माथ।'*

तीनोंके मिलानसे स्पष्ट है कि प्रथम और तृतीय युद्धमें स्थिति प्रायः एक-सी है। दोनोंमें निज पुरुषार्थका भरोसा है। प्रथममें 'आयसु' माँगना स्पष्ट है, तीसरेमें स्पष्ट नहीं है पर प्रणाम करनेमें आयसु माँगनेका भाव लिया जा सकता है। *'चले क्रुद्ध होइ'* दोनोंमें है, किन्तु तीसरेमें *'नाइ राम पद माथ'* यह विशेषता है। इस विशेषताका फल यह हुआ कि इस बार ब्रह्मदत्त शक्तिका प्रभाव कुछ विशेष न पड़ा। प्रभुके इतना कहते ही कि *'तुम्ह कृतांत भच्छक सुर त्राता'* वे उठ बैठे और *पुनि कोदंड बान गहि धाए। रिपु सनमुख अति आतुर आए॥'* और फिर रावणको ऐसा व्याकुल कर दिया कि *'गिरयो धरनि दसकंधर बिकलतर बान सत बेध्यो हियो। सारथी दूसर घालि रथ तेहि तुरत लंका लै गयो। रघुबीर बंधु प्रताप पुंज बहोरि प्रभु चरनन्हि नयो॥'* (८३ छंद) प्रणाम करनेसे इनके प्रतापकी जय हुई।

दूसरे युद्धमें भी 'क्रुद्ध होइ' का भाव*'बोले घन इव गिरा गँभीरा।......जौं सत संकर करहिं सहाई।'* (७४। १२-१५) इन शब्दोंसे ग्रहण हो सकता है। परन्तु इस युद्धमें दो विशेषताएँ हैं—एक तो प्रभुका प्रताप उरमें धारण करके क्रोधके वचन बोले हैं, अर्थात् पुरुषार्थका अहंकार नहीं है। दूसरे प्रणाम करके चले। अतः जय हुई।

☞इन प्रसङ्गोंसे उपदेश मिलता है कि अपने पुरुषार्थका अहङ्कार छोड़कर प्रभुके प्रतापका स्मरण और बल भरोसा करके भगवान्‌को प्रणाम करके जो कठिन कार्य किया जाता है तभी उसमें सफलता प्राप्त होती है।

☞लक्ष्मण-मेघनाद-युद्ध-प्रकरणके आदिमें ही *'क्रुद्ध होइ'* पद दिया क्योंकि आगे इनको शेष कहेंगे और इनके क्रोधका स्वरूप कहकर उसीसे पार्वतीजीका समाधान भी करेंगे। प्रकरणभरमें इस क्रोधका निर्वाह किया गया है।

टिप्पणी—१ मेघनादको विनयमें 'काम' कहा है—*'पाकारिजित काम बिश्रामहारी॥'* इस पक्षके अनुसार पूरे प्रसङ्ग-(दोहा ४८ से ५० तक-) के भावार्थ इस प्रकार होते हैं कि—काम वैष्णवोंको जीतने चला—विभीषण, वानर, भालु सब भागवत हैं। सामान्यको वह कुछ नहीं गिनता, विशेषको ढूँढ़ता है अतः कहा कि *'कहँ नल नील दुबिद......'* इत्यादि। यह कह काम अपने बाण चलाने लगा। जिसको काम बाण मारता है उसमें कुछ प्राण रह जाते हैं वह मरता नहीं है; क्योंकि मरण कालाधीन है, पर ज्ञान-वैराग्यादि सदाचरण नहीं बचते। वैसे ही यहाँ मेघनादके बाणोंसे प्राणमात्र बचे हैं। दस इन्द्रियाँ हैं; अतः प्रत्येकको एक-एक बाण मारा।

टिप्पणी—२ काम गर्जा कि जीत लिया तब पवनसुत महावैराग्य क्रोध करके दौड़ा (कामपर क्रोध करे तभी वह जीता जा सकता है) और महीधररूपी वेदपुराणोंका सहारा लेकर उनके वाक्यसे समझाया

तब काम, जो पहले ब्रह्माण्डपरसे उतर आया है पुनः वहाँ चढ़ गया। ऊपर चढ़ा कि अच्छा देख लेंगे और वहींसे पुष्पबाण मारता है, निकट नहीं आता; क्योंकि जानता है कि ये महारुद्र हैं।

टिप्पणी—३ तब प्रभुके पास गया कि तुम्हारा ही बल पाकर ये बचते हैं—*'सीम कि चापि सकइ कोउ तासू। बड़ रखवार रमापति जासू॥'* यहाँ इनका प्रताप देखकर वह खिसिया गया।

टिप्पणी—४ तत्पश्चात् काम हृदयाकाशमें जाकर विरहाग्निसे हृदयको जलाने लगता है—*'काम कृसानु बढ़ावनिहारी'।* महिसे जल वृष्टि करके काम स्नेहमें डुबा देता है जिससे कुलकी लज्जा बह गयी तब अशौच होनेसे भूतादि संचरने लगे। मांस, कच, हाड़, विष्ठा, पीव, दुर्गन्ध, रुधिर ये सब स्त्रीमें हैं और *'ताके एक परम बल नारी'।* भूतादि मारकाट शब्द करते हैं, कामी मीन, पक्षी, पशु आदिको मरवाते-कटवाते हैं। स्त्री लातें मारती है, यही पत्थर बरसना है। जब स्त्री नहीं मिलती तो कामी अपना सिर पत्थरसे पीटता है, इत्यादि जब जीव सब पुरुषार्थ करके हार मान लेता है तब प्रभु कृपादृष्टि करके अज्ञानरूपिणी मायाको हर लेते हैं। एक बाणसे माया काटी अर्थात् एक ब्रह्म जाननेसे माया छूटती है। प्रभुकी कृपा पाकर सब बली हुए पर मेघनाद भ्रष्टाचार बना है। इसे देख रामाज्ञा ले रामानुज चले—ये रामानुजाचार्य शंकराचार्यादि हैं जो भागवतोंको साथ लेकर भागवतमार्ग चलाने क्रोधपूर्वक चले। कंठी-तिलक-मन्त्ररूपी बाण-धनुष-तरकस लेकर ये चले।

प० प० प्र०—आध्यात्मिक अर्थ—श्रीरामजी ज्ञानस्वरूप, लक्ष्मणजी वैराग्य और इन्द्रजित् काम हैं। जबतक वैराग्य ज्ञानके प्रतापको हृदयमें धारण नहीं करता तबतक काम अपनी शक्तिसे वैराग्यको मूर्च्छित करेगा ही। मानसमें सर्वत्र रावणको अति अभिमानी, अधम अभिमानी, प्रकृति अभिमानी कहा है। यह ज्ञानाहङ्कार है, इसके उत्पन्न होनेपर भक्ति हो ही नहीं सकती। काम अहंकार रावणका पुत्र है, कुम्भकर्ण मोह है। हनुमान्‌जी विवेक हैं। विवेककी अद्भुत करणीसे वैराग्य फिरसे जीवित होता है और मोहका नाश ज्ञानसे होनेपर ज्ञानप्रतापयुक्त प्रखर वैराग्य ही कामका नाश कर सकता है। अहंकारका नाश करनेमें वैराग्य असमर्थ है, पर जबतक कामका नाश वैराग्य न करेगा तबतक ज्ञान भी अहंकारका नाश करनेमें असमर्थ ही ठहरता है। अहंकारका नाश केवल ज्ञान (राम) ठीक कर सकता है। ज्ञानाहंकाररूपी रावणका वध सबके पीछे होगा तब भक्तिरूपी जानकीजीकी प्राप्ति होगी और ज्ञानभक्तिरूपी श्रीरामजानकीजीकी नर-देहरूपी अवधके हृदय-सिंहासनपर विराजमान होकर सब इन्द्रियों और उनके देवता आदि प्रजाको निर्भय और सुखी करेंगे।

छतज नयन उर बाहु बिसाला। हिमगिरिनिभ तनु कछु एक लाला॥ १॥

शब्दार्थ—**छतज** (क्षतज)=रक्त, लाल। **निभ**=सदृश, समान। **कछु एक**=कुछ ही, थोड़ा-सा, यथा—*'एहि लागि तुलसीदास इन्ह की कथा कछु एक है कही।'* (सुं० ३)

अर्थ—नेत्र लाल हैं, छाती चौड़ी, भुजाएँ लम्बी हैं। शरीर हिमाचलके समान गौर वर्ण है पर कुछ ललाई लिये है॥ १॥

नोट—१ (क) पहले *'लछिमन चले क्रुद्ध होइ'* कहा अब उसीका स्वरूप दिखाते हैं। क्रोधके कारण नेत्र रक्तवर्ण हैं। हिमालय-सदृश शुभ्रवर्ण शरीरपर भी लाली उसी क्रोधकी है। यथा—*'सीस जटा ससि बदनु सुहावा। रिसि बस कछुक अरुन होइ आवा॥ भृकुटी कुटिल नयन रिसि राते।'* (बा० २६८) (ख) अथवा उरकी विशालता यहाँ इससे कही कि बड़ी बरछी छातीपर सहना और सँभालना है और बाहु विशाल कहा; क्योंकि सेनासहित इन्द्रजित्‌को मरणप्राय करेंगे। (पं०) मा० म० कार लिखते हैं कि छातीको विशाल कहकर सूचित किया कि महाबलवान् भुजाओंसे भली-भाँति युद्ध करके तब शक्तिमिष युद्ध करके परिश्रमवश विश्राम करने लगे। (ग) लड़ने जा रहे हैं। नेत्र लाल हैं, उर और बाहु विशाल हैं और धनुषबाण लिये हैं—यह वीररसका स्वरूप है। वीरकी इन्हींसे शोभा है। (घ) प्रथम चरणोंमें वाचकधर्मलुप्ता और दूसरेमें पूर्णोपमा अलंकार है।

इहाँ दसानन सुभट पठाए। नाना अस्त्र सस्त्र गहि धाए॥ २॥
भूधर नख बिटपायुध धारी। धाए कपि जय राम पुकारी॥ ३॥

अर्थ—यहाँ दशाननने भी बड़े-बड़े योद्धा भेजे जो अनेक प्रकारके अस्त्र-शस्त्र लेकर दौड़े॥ २॥ पर्वत, नख और वृक्षरूप आयुध धारण करनेवाले वानर 'जय श्रीराम' (श्रीरामचन्द्रजीकी जय हो) ऐसा पुकारते हुए दौड़े॥ ३॥

नोट—१ *'इहाँ'* इति। *'उहाँ दसानन सचिव हँकारी।'* (४७। ३) देखिये। २ (क) *'दसानन सुभट पठाए।'* इति। जान पड़ता है कि रावणको जब समाचार मिला कि मेघनादने अपनी मायासे वानरोंको विकल कर दिया था पर रामने एक ही बाणसे सारी माया काट दी एवं लक्ष्मणजी प्रधान वानरोंके साथ युद्धको आ रहे हैं तब उसने मेघनादकी सहायताके लिये सुभट भेजे। (ख) *'भूधर'*—उधरसे सुभट अस्त्र-शस्त्र लेकर दौड़े। अतः और भी सब वानर पर्वत और वृक्ष लेकर दौड़े।—'रहहिं न रोके' का चरितार्थ भी हो गया। इसीसे उनका भेजा जाना लिखा और वानरोंका भेजा जाना न कहा, 'रहहिं न रोके' ही कहा। *'भूधर नख बिटप'* ये ही इनके अस्त्र-शस्त्र हैं। यथा—*'गिरि तरु नख आयुध सब बीरा।'* (१। १८८। ४) अतएव इन्हींका धारण करना कहा। निशिचरोंके आयुध कहे, अतः इनके भी बताये।

भिरे सकल जोरिहि सन जोरी। इत उत जय इच्छा नहिं थोरी॥ ४॥
मुठिकन्ह लातन्ह दातन्ह काटहिं। कपि जयसील मारि पुनि डाटहिं॥ ५॥

अर्थ—सब (वानर और राक्षस अपनी-अपनी) जोड़ी मिलाकर जोड़ी-से-जोड़ी भिड़ गये। इधर (वानरों) और उधर (राक्षसों) (दोनों दलोंमें) जयकी इच्छा थोड़ी न थी (बहुत थी)॥ ४॥ वानर राक्षसोंको घूँसों-लातोंसे मारते हैं और दाँतोंसे काटते हैं। कपि जयशील हैं, (प्रथम युद्धमें जय पाये हुए हैं एवं रामकृपादृष्टिसे सहज ही प्रबल और जयशाली हो गये हैं)। वे मारते भी हैं और ऊपरसे डाँटते भी हैं॥ ५॥

नोट—१ *'जोरिहि सन जोरी'* इति। (क) कुश्तीमें बराबर बलके पहलवान् जो चुने जाते हैं वे परस्पर एक दूसरेकी जोड़ी कहलाते हैं। समान बलवाले। वाल्मी० ४३। ५—१६ में जहाँ वानरों और राक्षसोंका प्रथम युद्ध है वहीं जोड़ी-से-जोड़ीका युद्ध लिखा गया है, इस स्थानपर नहीं। पर उसीके अनुकूल यहाँ भी जोड़ी समझ लें।—सम्पाती और प्रजंक, हनुमान् और जम्बुमालि, गज और तपन, नील और निकुम्भ, मयन्द और वज्रमुष्टि, द्विविद और अशनिप्रभ, नल और प्रतपन इत्यादि बड़ोंसे बड़े, छोटोंसे छोटे लड़ रहे हैं। मानसके प्रतिकूल जोड़ियाँ नहीं ली गयीं।

(ख) रा० प्र०—यहाँ भाव यह है कि सेनापतियोंसे सेनापतिका और वीरोंसे वीरोंका युद्ध हो रहा है। यदि एककी एकसे जोड़ी लें तो मल्लयुद्ध भाषित होता है, पर *'नाना अस्त्र सस्त्र गहि धाए'* से यह अर्थ विरुद्ध पड़ता है।

नोट—२ (क) घूँसों, लातों और दाँतोंसे लड़ाई करते हैं। भाव कि सभी अङ्गोंसे प्रहार कर रहे हैं। (ख) *'मारि पुनि डाटहिं।'* भाव कि—अभी न अघाये हो तो और लो। पुनः डाँट यह कि रामको न भजनेका फल लो,—*'काहुहि लात चपेटन्हि केहू।'*……' (ग) रा० प्र०—भागते देख मारकर डाँटते हैं; वा, एकको मारकर दूसरोंको डाँटते हैं।

वि० त्रि०—यह युद्ध बड़ा भयानक हुआ। इसीमें लङ्का बालवृद्धावशेषिता हो गयी। सम्पूर्ण वीर मारे गये। बात यह हुई कि मेघनादकी सहायताके लिये रावणने लङ्काके सभी सुभटोंको भेज दिया। यथा—*'इहाँ दसानन सुभट पठाए। नाना अस्त्र सस्त्र गहि धाए॥'* इधरसे भी सभी सुभट रणाङ्गणमें उतर पड़े। वीरोंको अपना जोड़ तजबीज करनेमें देर नहीं लगती। सम्पूर्ण रणाङ्गणमें द्वन्द्वयुद्ध होने लग गया। लक्ष्मणजीका सामना करनेके लिये स्वयं मेघनाद आ गया। बड़ा घोर संग्राम हुआ। *'कपि जयसील मारि पुनि डाटहिं'* से सभी राक्षस सुभटोंका मारा जाना दरसाया।

मिलान कीजिये—'रक्षसां वानराणां च द्वन्द्वयुद्धमवर्तत॥' 'वानराश्चापरे घोरा राक्षसैरपरैः सह। द्वन्द्वं समीयुः सहसा युद्ध्वा च बहुभिः सह॥ तत्रासीत्सुमहद्युद्धं तुमुलं रोमहर्षणम्। रक्षसां वानराणां च वीराणां जयमिच्छताम्॥' (वाल्मी० ४३। ५, १५-१६)

मारु मारु धरु धरु धरु मारू। सीस तोरि गहि भुजा उपारू॥ ६॥
असि रव पूरि रही नव खंडा। धावहिं जहँ तहँ रुंड प्रचंडा॥ ७॥

शब्दार्थ—**नव खण्ड** =पुराणोंके अनुसार सप्तद्वीप हैं और प्रत्येक द्वीपमें खण्ड माने गये हैं। जम्बूद्वीपमें नौ खण्ड हैं, उनमेंसे यह एक भरतखण्ड माना गया है। अन्य द्वीपोंमें सात-सात हैं। रुण्ड=धड़, कबन्ध। प्रचण्ड=भयंकर, बहुत अधिक वेगवान्, प्रबल, तेज।

अर्थ—'मारो-मारो, धर पकड़ो, धर पकड़ो, धर पकड़ो, मार डालो, हाथ पकड़कर सिर तोड़कर उखाड़ लो'॥ ६॥ ऐसा शोर इस द्वीपके नवों खण्डोंमें पूर्ण भर गया है (व्याप्त हो गया)। रुण्ड बड़े वेगसे जहाँ-तहाँ दौड़ रहे हैं॥ ७॥

नोट—१ '*मारु मारु*·········' इति। ५१ (२) देखिये। इससे योद्धाओंका पूर्णोत्साह दिखाते हैं, जीतेजी ऐसा कहते हैं और सिर कटनेपर भी ये शब्द निकल रहे हैं। तथा इससे रणभूमिकी भयंकरता दिखायी। ४५ (५) देखिये। [पु० रा० कु०—यहाँ '*पूरि रही नव खंडा*' में अत्युक्ति अलंकार है। युद्धकी उत्कर्षता दिखानेके लिये ऐसा कहा]।

देखहिं कौतुक नभ सुरबृंदा। कबहुँक बिसमय कबहुँ अनंदा॥ ८॥

शब्दार्थ—**बिस्मय** =आश्चर्ययुक्त भय वा खेद।

अर्थ—आकाशमें देववृंद कौतुक देख रहे हैं। कभी (निशिचरोंकी जयपर) विस्मित होते हैं, कभी (वानरोंकी जीतपर) आनन्दित होते हैं*॥ ८॥

☞देवताओंका रण देखना प्रथम-प्रथम यहीं कहा गया है और किंचित् भेदसे आगे भी बड़े-बड़े युद्धोंके अवसरोंपर जब-तब उनकी उपस्थिति पायी जाती है। देखिये—

१ लक्ष्मण-मेघनाद-युद्ध—'*देखहिं कौतुक नभ सुरबृंदा। कबहुँक बिसमय कबहुँ अनंदा॥*' (८)

२ राम-कुम्भकर्ण—'*गगन सिद्ध सुर त्रासित हाहा हेति पुकार॥*' (६९) '·········*सुरदुंदुभी बजावहिं हर्षहिं। अस्तुति करहिं सुमन बहु बर्षहिं॥*·········*करि बिनती सुर सकल सिधाए॥*' (७०। ९-१०)

यहाँ प्रत्यक्ष उपस्थिति और उसके वधपर स्तुति करके जाना कहा।

३ नागपाश—'*रनसोभा लगि प्रभुहि बँधाएउ। नाग पास देवन्ह दुख पाएउ॥*' (७२। १३)

मेघनादसे देवता अति सभीत रहते हैं; क्योंकि इसने इन्द्रको बाँध लिया था। इसलिये देवताओंका आगमन और प्रत्यक्ष उपस्थिति नहीं कहते। मनमें दुःख हुआ, हाहा न किया। अबतक मेघनादयुद्ध दो बार हुआ। दोनोंमें मेघनादकी जय देख देवता अब ऐसे सहम गये हैं कि तीसरे युद्धमें वे आये ही नहीं।

४ मेघनादवध—'*तासु मरन सुनि सुर गंधर्बा। चढ़ि बिमान आए नभ सर्बा॥*
बरषि सुमन दुंदुभी बजावहिं। श्रीरघुबीर बिमल जस गावहिं॥·········*अस्तुति करि सुर सिद्ध सिधाए॥*' (७६। २—५)

जैसा अधिक भय था वैसा ही कुम्भकर्णवधसे अधिक हर्ष मेघनादवधपर हुआ। वहाँ ३ चरणोंमें और यहाँ ५ चरणोंमें कविने उनका हर्ष प्रकट किया है। अबसे आगे देवताओंका आगमन और प्रत्यक्ष रण दर्शन पाया जाता है।

५ राम-रावणके रणभूमिमें आनेपर } *सुर ब्रह्मादि सिद्ध मुनि नाना। देखत रन नभ चढ़े बिमाना॥*
हमहू उमा रहे तेहि संगा। देखत रामचरित रनरंगा॥

६ रावणके मूर्च्छित होनेपर—'*इहाँ देवतन्ह अस्तुति कीन्ही। दारुन बिपति हमहिं एहि दीन्ही'॥*
'*हर्षे देव बिलोकि छबि॥*'—८५ (५) से ८६ तक।

७ राम-रावण-युद्ध—'*देवन्ह प्रभुहि पयादे देखा। उपजा उर अति क्षोभ बिसेषा॥*'

* प्रत्यनीक और उल्लास अलंकारकी संसृष्टि है।

अब यहाँसे बराबर युद्धभर देवता लोग उपस्थित रहे हैं।

☞उपर्युक्त मिलानसे नतीजा यह निकलता है कि—१ सेना-सेनाका युद्ध साधारण समझ उसको देखने न आये। २—जब-जब श्रीराम या श्रीलक्ष्मणजी रणभूमिमें होते थे तब यह समझकर कि मेघनादादि इनके सामने हमपर आक्रमण करनेका साहस नहीं कर सकते। वे रण देखने वहाँ आते थे। ३—मेघनाद-युद्धको जब देखा छिपकर देखा।

दो०—रुधिर गाड़ भरि भरि जम्यो ऊपर धूरि उड़ाइ।
जनु* अंगाररासिन्ह पर मृतक धूम रह्यौ छाइ॥ ५२॥

शब्दार्थ—**गाड़**=गड्ढा, गड़हा। छाना=फैलना, बिछ जाना, भर जाना, ऊपरसे ढक लेना। **मृतक धूम**=राख, भस्म।

अर्थ—गड्ढोंमें रुधिर भर-भरकर जम गया है और उसपर धूल उड़ रही है। मानो अङ्गारोंकी ढेरीपर राख छा रही है॥ ५२॥

नोट—पु० रा० कु० जी लिखते हैं कि—यहाँ 'मृतक' पदसे चिताका ग्रहण है। इस उत्प्रेक्षासे रणभूमिकी अत्यन्त भयानकता सूचित की। पंजाबीजीका मत है कि घोड़ोंके खुरों और रथों आदिसे ये गड्ढे बने हैं। रुधिर पड़ा हुआ सघन हो गया और ऐसा चमकता है जैसे अङ्गारोंपर भस्म पड़नेसे कुछ लाली प्रकट रहती है।

☞करुणासिंधुजी, पंजाबीजी और हिन्दी-शब्द-सागरने मृतकधूमका अर्थ 'राख' दिया है; पर दो-एक टीकाकारोंने 'मृतकके शवके जलते समयका धुआँ' अर्थ किया है। वीरकविजी लिखते हैं कि 'यहाँ जमे हुए खूनके गड्ढोंपर धूलका उड़ना उत्प्रेक्षाका विषय है। इसके अनुरूप बलपूर्वक उपमान कल्पित करना कि मानो मृतककी चिताके अङ्गारोंपर धूम छाया हो, 'उक्तविषयावस्तूत्प्रेक्षा अलंकार' है।

घायल बीर बिराजहिं कैसे। कुसुमित किंसुक के तरु जैसे॥ १॥

शब्दार्थ—**कुसुमित**=फूला हुआ। **किंसुक**=पलाश, ढाक, टेसू।

अर्थ—घायल वीर कैसे शोभित हो रहे हैं जैसे फूले हुए ढाकका वृक्ष शोभित हो॥ १॥

नोट—१ यहाँ वीर पलाश वृक्ष हैं। घाव लगनेसे खून शरीरपर ठौर-ठौर निकला हुआ है और पलाशके फूल भी रक्तवर्ण होते हैं। इससे फूले हुए पलाशकी उपमा दी। यहाँ उदाहरण अलंकार है। यथा—*'अंग अंग दलित ललित फूले किंसुक से हने भट लाखन लखन जातुधानके।'* (क० लं० ४८), **'तयोः कृतव्रणौ देहौ शुशुभाते महात्मनोः॥ सुपुष्पाविव निष्पत्रौ वने (शाल्मलिकिंशुकौ)।'** (वाल्मी० ८९। ३६-३७) ☞२ *'इहाँ दसानन सुभट पठाए'* (५२। २) से यहाँतक सेनाका सेनासे युद्ध कहा। आगे मेघनाद-लक्ष्मण-युद्ध कहते हैं।

बं० पा०—समर वसन्तपञ्चमीको प्रारम्भ हुआ। अतएव ऋतु-अनुकूल पलाशके फूलोंका उदाहरण दिया।

लछिमन मेघनाद द्वौ जोधा। भिरहिं परसपर करि अति क्रोधा॥ २॥
एकहि एक सकै नहिं जीती। निसिचर छलबल करै अनीती॥ ३॥

शब्दार्थ—**छल**=कपट, माया, युद्धके नियमके विरुद्ध शत्रुपर शस्त्र-प्रहार। भिरना (भिड़ना)—पास आ-आकर लड़ाई करना, सटकर लड़ना।

अर्थ—लक्ष्मण और मेघनाद दोनों योद्धा अत्यन्त क्रोध कर-करके आपसमें भिड़ते हैं॥ २॥ एक-दूसरेको जीत नहीं सकते। निशिचर (मेघनाद) छल, बल और अधर्म युद्ध करता है॥ ३॥

नोट—१ (क) *'भिरहिं परसपर करि अति क्रोधा'* इति। युद्धमें क्रोधकी शोभा है अतः *'भिरहिं करि अति क्रोधा'* कहा। (ख) *'द्वौ जोधा।'* *'एकै एक सकहि नहिं जीती'।* इति। यही भाव वाल्मीकीयके **'विक्रान्तौ बलसम्पन्नावुभौ विक्रमशालिनौ। उभावपि सुविक्रान्तौ सर्वशस्त्रास्त्रकोविदौ। उभौ परमदुर्जेयावतुल्यबलतेजसौ।'** (वाल्मी० ८८। ३४) इन श्लोकोंमें है।

* जिमि—(का०)।

नोट—२ '*छलबल*'। कभी छिप जाना, कभी प्रकट होना छल है। यथा—'*तकि तकि तीर महीस चलावा। करि छल सुअर सरीर बचावा। प्रगटत दुरत जाइ मृग भागा।*' (१। १५७), '*बिबिध बेष धरि करइ लराई। कबहुँक प्रगट कबहुँ दुरि जाई॥*' (७४। ११। १२) ☞युद्धमें बुद्धिसे अपनेको बचाना अनीति नहीं है, पर दूसरा यत्नसे भी देख न सके इस प्रकार छिपकर वहींसे आघात करना अधर्म है, यथा—'*धर्म हेतु अवतरेहु गोसाईं। मारेहु मोहि ब्याध की नाईं॥*' मायाके बलसे वह अदृश्य होता था, उसे लक्ष्मणजी देख न सकते थे। वाल्मी० ८८ में लक्ष्मणजीने मेघनादसे कहा है कि तू वीर नहीं है। तू तो चोरका-सा चरित्र करता है कि अन्तर्धान हो जाता है, यथा—'**अन्तर्धानगतेनाजौ यत्त्वया चरितस्तदा। तस्कराचरितो मार्गो नैष वीरनिषेवितः॥**' (१५) यही भाव 'अनीति' का है। छल बुद्धिके उपायको भी कहते हैं, यथा—'*सो मति मोरि भरत महिमाही। कहै काह छलि छुअति न छाँही॥*' (२। २८८), '*सोहहिं नभ छलबल बहु करहीं। कज्जलगिरि सुमेरु जनु लरहीं॥ बुधिबल निसिचर परइ न पार्‌यो। तब मारुतसुत प्रभु संभार्‌यो॥*' (९४। ७-८) यह अनीति नहीं है।

क्रोधवंत तब भएउ अनंता। भंजेउ रथ सारथी तुरंता॥ ४॥
नाना बिधि प्रहार कर सेषा। राक्षस भएउ प्रान अवसेषा॥ ५॥
रावनसुत निज मन अनुमाना। संकट भएउ हरिहि मम प्राना॥ ६॥

शब्दार्थ—**अनन्त**=यह एक नाम श्रीलक्ष्मण और शेषजीका है। शेष भी उन्हींका नाम है। यथा—'**शेषेऽनन्तो वासुकिस्तु सर्पराजः।**' (अमरकोश) **प्रहार**=आघात, चोट, वार। **प्रान अवसेषा**=प्राणावशेष=जिसके प्राणमात्र रह गये हों=मृत्युतुल्य। **अनुमाना**=सोचना, अटकलसे जानना।

अर्थ—तब लक्ष्मणजी क्रोधित हुए और उन्होंने तुरन्त उसके सारथी और रथको टुकड़े-टुकड़े कर डाला॥ ४॥ शेषजी उसपर अनेक प्रकारसे वार करने लगे। राक्षस प्राणावशेष हो गया॥ ५॥ रावणपुत्रने मनमें अन्दाज लिया कि सङ्कट पड़ गया, ये मेरे प्राण ले लेंगे॥ ६॥

☞मेघनादसे यहाँ लक्ष्मणजीने वानरोंका बदला चुकाया है।

मेघनाद-वानरसेना	लक्ष्मण-मेघनाद
१ '*सो कपि भालु न रन महँ देखा। कीन्हेसि जेहि न प्रान अवसेषा॥*' (४९। ८)	*राक्षस भएउ प्रान अवसेषा*
२ '*दस दस सर सब मारेसि।*' (४९)	*नाना बिधि प्रहार कर सेषा*
३ '*परे भूमि कपि बीर।*' (४९)	*भंजेउ रथ सारथी तुरंता*
४ '*सब कर मरन बना।*' (५१। ५)	*संकट भएउ हरिहि मम प्राना*
५ '*एहि लेखे।*' (५१। ५)	*रावन सुत निज मन अनुमाना*

मा० म०, पं०—'रावणसुत' का भाव कि जैसे रावण सारे जगत्‌को रुलानेवाला है वैसे ही मेघनाद जो कर्म करनेको है उससे वह सारी सेनासहित रामजीतकको रुलावेगा। और इन्हींको नहीं वरन् भरतसहित माताओंको भी दुःख पहुँचायेगा।—[इस चौपाईमें 'अनुमान-प्रमाण अलंकार' है।]

नोट—१ रावणसुतका भाव कि रावण-लक्ष्मणयुद्धमें लक्ष्मणजीने यही दशा रावणकी की, तब रावणने भी शक्ति चलायी थी। यह उसी रावणका पुत्र तथा उसके राज्यका उत्तराधिकारी है, अतः यह भी वैसा ही करेगा। दोनोंका मिलान देखिये—

	लक्ष्मण-मेघनाद	लक्ष्मण-रावण
१	*लछिमन चले क्रुद्ध होइ*	*लछिमन चले क्रुद्ध होइ (८१)*
२	*बान सरासन हाथ*	*कटि कसि निषंग धनु हाथ*
३	*भंजेउ रथ सारथी तुरंता*	*स्यंदन भंजि सारथी मारा*
४	*नाना बिधि प्रहार कर सेषा*	*सत सत सर मारे दसभाला। सत सर पुनि मारा उर माहीं॥*

५ *राच्छस भएउ प्रान अवसेषा*	*पर्यो अवनितल सुधि कछु नाहीं॥*
६ *संकट भएउ हरिहि मम प्राना*	*उठा प्रबल पुनि मुरछा जागी*
७ *बीरघातिनी छाड़िसि साँगी*	*छाँड़ेसि ब्रह्म दीन्हि जो साँगी*
८ *तेजपुंज लछिमन उर लागी*	*सो ब्रह्मदत्त प्रचंड सक्ति अनंत उर लागी सही*
९ *मुरछा भई*	*पर्यो बीर बिकल*
१० *मेघनाद सम कोटिसत जोधा रहे उठाइ*	*उठाव दसमुख अतुल बल महिमा रही। तेहि चह उठावन।*
११ *जमूंदाधार सेष*	*ब्रह्मांड भुवन बिराज जाके एक सिर*
१२ *किमि उठै चले खिसिआइ*	*तेहि चह उठावन मूढ़ रावन जान नहिं त्रिभुवनधनी*
१३ *क्रोधानल जासू। जारै भुवन ....।*	*तुम्ह कृतांत भक्षक।*
१४ *सेवहिं सुरनर अगजग जाही*	*सुरत्राता। त्रिभुवनधनी*
१५ *तब लगि लेइ आएउ हनुमाना*	*लछिमन कहँ कपि ल्यायो*

बीरघातिनी छाड़िसि साँगी। तेजपुंज लछिमन उर लागी॥ ७॥
मुरुछा भई सक्ति के लागे। तब चलि गएउ निकट भय त्यागे॥ ८॥

शब्दार्थ—**साँगी**=बरछी, शक्ति। **तेज**=दीप्ति, प्रकाश।

अर्थ—(अनुमानकर) उसने वीरोंका नाश करनेवाली अपनी 'वीरघातिनी' नामक साँगी चलायी जो बड़ी तेजोमय थी। वह लक्ष्मणजीकी छातीमें लगी॥ ७॥ शक्तिके लगनेसे श्रीलक्ष्मणजीको मूर्छा आ गयी। तब वह भय छोड़कर उनके पास चला गया॥ ८॥

वि० त्रि०—'***बीरघातिनी*** ....' इति। प्रख्यातपौरुष अस्त्र-शस्त्रोंके नाम होते हैं जैसे रामजीके धनुषका नाम शार्ङ्ग, रावणके खड्गका नाम चन्द्रहास, विष्णुके चक्रका नाम सुदर्शन, इसी भाँति इस शक्तिका नाम वीरघातिनी था। यह दिव्य शक्ति थी, इसीसे इसे तेजपुंज कहा गया है (यथा—'*तेजपुंज लछिमन उर लागी*')। अतः मेघनाद अपने हाथसे जाने देना नहीं चाहता था, पर लक्ष्मणजीके प्रहारोंसे जर्जर होकर जब प्राणावशेष हो गया, तब उसने इस वीरघातिनी साँगीको लक्ष्मणजीपर चला दी।

नोट—१ (क) प्रथम चरणमें कहा कि '*छाड़िसि साँगी*' और चौथेमें कहा कि '*मुरुछा भई सक्ति के लागे*'। इस प्रकार शक्ति और साँगीको एक ही जनाया। (ख) '*तेजपुंज*'—तेजराशि। भाव यह कि वह शक्ति अपने विपुल तेजसे वज्रके समान दीप्तिमान् थी और उसमेंसे प्रचण्ड अग्निवत् ज्वालाएँ निकलती थीं। यथा—'**इत्येवमुक्त्वा तां शक्तिमष्टघण्टां महास्वनाम्। मयेन मायाविहिताममोघां शत्रुघातिनीम्। ....लक्ष्मणाय समुद्दिश्य ज्वलन्तीमिव तेजसा॥**', '**जिह्वे वोरगराजस्य दीप्यमाना महाद्युतिः॥**' (वाल्मी० १००। ३०-३१, ३५) अर्थात् यह कह रावणने आठ घण्टे बँधी, बड़ा शब्द करती, मयकी मायासे बनी हुई शत्रुओंके प्राण नाश करनेवाली, अमोघ, तेजसे दीप्यमान शक्ति लक्ष्मणजीपर बड़ा क्रोध करके चलायी। जो सर्पराजकी जीभके समान देदीप्यमान थी।

२ मा० म० के मतानुसार मूर्च्छा लगनेका एक कारण यह भी है कि श्रीरामचन्द्रजीने अयोध्याजीसे चलनेके समय लक्ष्मणजीको कहा था कि वनमें जानेसे दुःख सहना पड़ेगा। इसी कारण मूर्छित होकर उन्होंने उस वचनको सत्य किया। और किसीका मत है कि शबरीजीके बेर लक्ष्मणजीने जूठे होनेके कारण नहीं खाये फेंक दिये। उसके कारण यह शक्ति लगी। गोस्वामीजीके मतानुसार तो लक्ष्मणजीने भी शबरीजीके फल खाये हैं। यथा—'*केहि रुचि केहि छुधा सानुज माँगि माँगि प्रभु खात॥........प्रभु खात माँगत देत सबरी राम भोगी जाग के। बालक सुमित्रा कौसिला के पाहुने फल साग के॥*' (गी० आ० ४। १६-१७)

पर मानसकविने इस ग्रन्थमें लक्ष्मणजीका खाना स्पष्ट न लिखकर सब कल्पोंकी कथाओंकी गुंजाइश रखी है।

३ '*तब चलि गएउ निकट भय त्यागे*' इति। '*भय त्यागे*' से जनाया कि उसे उसके पूर्व भय

था। यथा—'*संकट भएउ हरिहि मम प्राना*'। अब जान लिया कि मूर्छित हैं वा मर गये, क्योंकि शक्ति अमोघ है; इससे निकट जानेमें भय न रह गया। पास आया कि उठाकर लङ्कामें ले जायँ। हमारे पिता सीताको ले आये, हम भाईको ले जायँ। एकका दुःख था, अब दोका हो जायगा, बिना उपाय ही राम भी मर जायेंगे। पुनः, पितासे मैंने प्रतिज्ञा की थी। इनको देखकर वे बड़े प्रसन्न होंगे।

दो०—मेघनाद सम कोटि सत जोधा रहे उठाइ।
जगदाधार* अनंत किमि उठइ चले खिसिआइ॥५३॥

अर्थ—मेघनादके समान अगणित योद्धा उठा रहे हैं, परंतु जगत्‌के आधार अनन्त (शेष) कैसे उठ सकते? (तब सब योद्धा) लज्जित होकर चल दिये॥ ५३॥

नोट—१ (क) '*मेघनाद सम कोटि सत*' कहकर उन योद्धाओंकी उत्कृष्टता तथा श्रीलक्ष्मणजीका महत्त्व दिखाया। (ख) इससे यह भी जनाया कि एक-एकसे न उठा तब कई एक मिलकर भी न उठा सके। यह 'विशेषोक्ति अलङ्कार' है। (ग) क्यों न उठा सके? इस सम्भावित शङ्काका समाधान वक्ता शिवजी स्वयं कर रहे हैं कि वे 'जगदाधार' हैं, शेष भगवान् ही हैं जो ब्रह्माण्डको एक सिरपर धारण किये हैं। इनको वही उठा सके जो इनसे अधिक हो या जिसपर इनकी कृपा हो। (घ) 'जगदाधार' और 'शेष' दो पद देकर चारों कल्पोंके अवतार जना दिये। यथा—'*लच्छन धाम राम प्रिय सकल जगत आधार। गुरु बसिष्ठ तेहि राखा लछिमन नाम उदार॥*' (१। १९७), '*जो सहससीस अहीस महिधरु लखन सचराचर धनी।*' (अ० १२६) (ङ) अनन्त (अन्+अंत=सीमा)=जिसकी सीमा नहीं, जो देशकाल वस्तुसे अपरिच्छिन्न, सर्वव्यापी, नित्य और, सर्वात्मरूप हैं। भाव यह कि जिसका अन्त नहीं उसको अन्तवाला कैसे उठा सकता है।

शीला—यहाँ पार्वतीजीको शङ्का हुई कि शतकोटि योद्धा कैसे लगे? उसी हेतुसे 'जगदाधार', 'शेष' वा 'अनन्त' नाम यहाँ लक्ष्मणजीके दिये। जगदाधार हैं, सारे ब्रह्माण्डको सिरपर लिये हैं और शेष हैं, इसीसे इतने भारी हैं। अनन्त हैं, इनका अन्त नहीं, तो एक उँगलीमें भी सारे राक्षस लग जाते तो पता न चलता (यह भी कौतुक है)।

☞ मेघनादद्वारा शक्तिका लक्ष्मणजीको मारा जाना वाल्मीकि, अध्यात्म, हनुमन्नाटक, आनन्द रामायण, पद्मपुराण आदि कई ग्रन्थोंमें नहीं मिलता। कल्पभेदके कारण ऐसा है। उपर्युक्त रामायणोंमें भगवान् विष्णु या श्रीमन्नारायणके रामावतारोंकी कथाएँ हैं। सम्भवतः साकेतावतारवाले कल्पमें मानसके अनुसार होगा, पर वह ग्रन्थ दासको उपलब्ध नहीं है जिसमें ऐसी कथा है। इसीसे समानार्थी श्लोक युद्ध-प्रसङ्गमें नहीं दिये जा सकते।

वाल्मी० सर्ग ५९ और १०० में रावण-लक्ष्मण-युद्ध है। वाल्मी० ५९ में रावणने अपने प्राणोंपर आ बनी देख शक्ति चलायी—(श्लो० १०५) और इनको उठाना चाहा पर न उठा सका। हनुमान्‌जीने घूँसा मारा, जिससे वह अचेत हो गया। तब हनुमान्‌जी उन्हें उठा ले गये। शक्ति रणभूमिको छोड़कर रावणके रथमें चली गयी। लक्ष्मणजी (बिना ओषधि) सावधान हो गये। इस तरह सर्ग ५९ वाली कथा मानसके रावण-लक्ष्मण-युद्ध दोहा ८१-८३ में मेल खाती है। वह शक्ति ब्रह्मदत्त है और मानसकी भी। मानसमें भी वहाँ लक्ष्मणजी बिना दवा अच्छे हो गये। वाल्मी० १०१ अथवा १०२ में रावणका उठाना वा हनुमान्‌जीका ले जाना नहीं है; क्योंकि श्रीरामजी भी रणभूमिमें ही हैं, पर रामजीका अधिक विलाप और सुषेणका दवा बताना एवं हनुमान्‌जीका द्रोणशिखरको लाना इसी युद्धमें है। यहाँ शक्ति विभीषणजीको बचानेपर इनपर चलायी गयी थी।

समयादर्श रामायणमें मेघनादका शक्ति मारना तो नहीं लिखा है पर उसके युद्धके सिलसिलेमें ही रामचन्द्रजीका ओषधि मँगाना कहा गया है, जिससे पूरा अनुमान वहाँ मेघनादद्वारा शक्ति चलाये जानेका होता है। यथा—'**संतर्प्याग्निमथोनभश्चररथं संप्राप्य दिव्यं ततो रात्रौ शक्रजिता जितं पुनरथो शुक्लद्वितीया दिने। ओषध्यानयनैस्तृतीयदिवसा यावत्तिथिः सप्तमी श्रीरामो दिनपञ्चकं च कृतवान् युद्धावहारन्तदा॥**' (८८)

* सेष—१७२१, १७६२ छ०, भा० दा०। अनन्त—१७०४, को० रा०।

सुनु गिरिजा क्रोधानल जासू। जारै भुअन चारिदस आसू॥ १॥
सक संग्राम जीति को ताही। सेवहिं सुरनर अग जग जाही॥ २॥

शब्दार्थ—**आसू** (आशु)=शीघ्र, तुरंत। यथा—*'लागहिं सैल बज्र तनु तासू। खंड खंड होइ फूटहिं आसू॥'* (८१। ३) **अग**=स्थावर, अचर, जड़। **जग**=जङ्गम, चर, चेतन।

अर्थ—हे गिरिजे! सुनो। जिसकी क्रोधाग्नि चौदहों भुवनोंको शीघ्र ही जला डालती है॥ १॥ और देवता, मनुष्य तथा चराचर मात्र जिसकी सेवा करते हैं उसको रणमें कौन जीत सकता है। अर्थात् कोई नहीं॥ २॥

☞ प्रलयकालमें शेषरूपसे लक्ष्मणजी हजारों मुखोंसे फुंकारद्वारा कालाग्नि प्रकटकर सृष्टिको भस्म कर देते हैं। यथा—*'जुग-षट भानु देखे, प्रलय कृसानु देखे, सेष मुख अनल बिलोके बार-बार हैं।* (क० सुं० २०)'

'भुअन चारि दस' इति १४ लोक ये हैं—भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः, सत्य, तल, अतल, वितल, सुतल, रसातल, तलातल और पाताल। न जीत सकनेका समर्थन इस प्रकार करना 'काव्यलिङ्ग अलंकार' है। यहाँ वक्रोक्ति और प्रतिषेध भी है—(वीर)।

यह कौतूहल जानै सोई। जा पर कृपा राम कै होई॥ ३॥
संध्या भई फिरी द्वौ बाहिनी। लगे सँभारन निज निज अनी॥ ४॥

शब्दार्थ—**कौतूहल**=कुतूहल, कौतुक, रहस्य। **बाहिनी** (वाहिनी)=सेना। **संध्या**=शाम। सूर्यास्तके लगभगका समय।

अर्थ—इस आश्चर्यमय चरित्रको वही जान सकता है जिसपर श्रीरामचन्द्रजीकी कृपा हो॥ ३॥ सन्ध्या होनेपर दोनों ओरकी सेनाएँ लौटीं। यूथपति अपनी-अपनी सेनाकी देखभाल, गिनती करने लगे (कि कौन बचे, कौन मारे गये, कितनी सेना काम आयी)॥ ४॥

पं०—*'यह कौतूहल·······'*। जैसे कि विभीषणजी, हनुमान्‌जी, भुशुण्डिजी, शिवजी, वाल्मीकिजी और गोस्वामीजी आदि जानते हैं।

नोट—१ कविको कैसे मालूम हुआ? गुरुपदके प्रभावसे, यथा—*'सूझहिं रामचरित मनि मानिक। गुपुत प्रगट जहँ जो जेहि खानिक॥'* (१। ८) पुनः, रामकृपासे ही ये भी जानते हैं, यथा—*'जेहि पर कृपा करहिं जन जानी। कबि उर अजिर नचावहिं बानी॥', 'तस कहिहउँ हिय हरिके प्रेरे।'*

नोट—२ इस चरितमें क्या रहस्य है, इस विषयमें ग्रन्थोंमें जहाँ-तहाँ कुछ उल्लेख मिलता है। (क) वाल्मी० ७४ में नागपाशप्रसङ्गमें अङ्गदादिके व्याकुल होनेपर विभीषणजीने समझाया है कि ब्रह्माका सम्मान करने, उनके अस्त्रकी सफलता दिखाने और मर्यादा पालन करनेके लिये श्रीरामलक्ष्मणजीने जान-बूझकर ऐसा किया। अतः इसमें शोक करनेकी क्या बात है? यथा—'**मा भैष्ट नास्त्यत्र विषादकालो यदार्यपुत्रौ ह्यवशौ विषण्णौ। स्वयंभुवो वाक्यमथोद्वहन्तौ यत्सादिताविन्द्रजितास्त्रजालैः॥ तस्मै तु दत्तं परमास्त्रमेतत्स्वयंभुवा ब्राह्ममोघवीर्यम् (वेगम्)। तान्मानयन्तौ युधि राजपुत्रौ निपाततौ कोऽत्र विषादकालः॥**' (३-४)

श्रीहनुमान्‌जीने भी यही सोचकर अपनेको बँधाया था, यथा—*'जौं न ब्रह्मसर मानउँ महिमा मिटइ अपार।'* (५। १९) (ख)—कालनेमि और मकरीको शापसे मुक्त करना है, ऋषिके वचन सत्य करने हैं। (ग) नरनाट्य कर रहे हैं अतएव *'जस काछिय तस चाहिय नाचा'*। नरतनमें शक्तिसे घायल होना, प्रभुका भाईको देखकर स्नेह और प्रलाप, राक्षसोंको मोहित करनेके लिये जरूरी हैं। अमोघशक्तिको मनुष्य क्या देवता भी व्यर्थ नहीं कर सकते। उसके व्यर्थ करनेसे इसका ब्रह्मावतार होना प्रकट हो जायगा। रावणकी मृत्यु नरके हाथ होनेका वरदान है; उस ब्रह्मवाक्यको भी सत्य करना है। पुनः, (घ) शक्ति-प्रसङ्गद्वारा हनुमान्‌जीका अभिमान दूर करना है। भरत और सुमित्राजीकी निःस्वार्थ भक्ति और प्रेम जगत्‌को दिखाना है, लक्ष्मणजीका प्रेम (रामजीमें) अयोध्याकाण्डमें दिखाया गया, यहाँ इस बहाने श्रीरामजीका अतिशय प्रेम जो लक्ष्मणजीपर है वह दिखाना है—'**ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्**' गीताके इस वाक्यको भी चरितार्थ किया है। जैसे लक्ष्मणजीके प्राण श्रीरामजीका साथ छूटनेपर रह नहीं सकते, वैसे ही लक्ष्मणजीके बिना प्रभु रह नहीं सकते। यथा—*'गिरि*

कानन जैहैं शाखामृग हौं पुनि अनुज सँघाती।' (गी० लं०) पुन: (ङ) पंजाबीजी यह भी लिखते हैं कि इस चरितसे श्रीरामजी दु:खित होकर शीघ्रतासे वरोन्मत्त राक्षसोंका वध करेंगे। इत्यादि यह मत वाल्मीकीयसे मिलता है। यथा—'**राज्यनाशं वने वासं दण्डके परिधावनम्। वैदेह्याश्च परामर्शो रक्षोभिश्च समागमम्॥.........प्राप्तं दु:खं महाघोरं क्लेशश्च निरयोपम:॥**' (वाल्मी० १००। ४९-५०) अर्थात् राज्यका नाश, वनमें वास, दण्डकवनमें इधर-उधर दौड़ना, जानकी-हरण, राक्षसोंका समागम—इन सब बातोंसे हमने नरक-समान बड़ा घोर दु:ख पाया है, उन सब दु:खोंको आज हम रावणको रणमें मारकर त्याग करेंगे।

दूसरा युद्ध एवं तदन्तर्गत मेघनाद-लक्ष्मण-प्रथम युद्ध समाप्त हुआ।

ब्यापक ब्रह्म अजित भुवनेस्वर। लछिमन कहाँ बूझ करुनाकर॥ ५॥
तब लगि लै आएउ हनुमाना। अनुज देखि प्रभु अति दुख माना॥ ६॥

अर्थ—व्यापक, ब्रह्म, किसीसे न जीते जाने योग्य, सब लोकोंके स्वामी, करुणाकी खानि श्रीरामचन्द्रजीने पूछा कि लक्ष्मण कहाँ हैं?॥ ५॥ तबतक (इतनेहीमें) श्रीहनुमान्‌जी उनको ले आये*। छोटे भाईको देखकर प्रभुने अत्यन्त दु:ख माना॥ ६॥

नोट—१ *'ब्यापक ब्रह्म.........'* इति। इन चार विशेषणोंको देकर जनाया कि उनके पूछनेसे यह न जानो कि ये जानते नहीं। ये सब जानते हैं; क्योंकि सर्वत्र व्याप्त हैं—*'कहहु सो कहाँ जहाँ प्रभु नाहीं', 'जहँ न होउ तहँ देउ कहि तुम्हहिं दिखावउँ ठाउँ'।* ब्रह्म हैं अत: वे सर्वज्ञ हैं, उनका ज्ञान अखण्ड एकरस है, उनसे कुछ छिपा नहीं है। पुन:, आगे भाईको देखकर दु:खित होंगे उससे यह न जानना कि मनुष्य हैं। इनमें दु:ख-सुख आदि कहाँ? यह केवल नरनाट्य है। अजित और भुवनेश्वरसे यह भी जनाया कि वे जानते हैं कि लक्ष्मणजी मरे नहीं हैं और न उन्हें कोई जीत सकता है। इत्यादि।

नोट—२ *'बूझ करुनाकर'।* इससे जनाया कि शक्ति सन्ध्याके लगभग ही लगी थी। बहुत-सी सेना लौट आयी पर लक्ष्मणजी इस युद्धमें प्रधान थे वे तबतक न दिखायी पड़े; यद्यपि उनको प्रथम ही वा सबके साथ आना चाहिये था, जैसे दूसरी बार मेघनादवध होते ही *'लछिमन कृपासिंधु पहिं आए'।* इसीसे पूछना पड़ा। इतनी देर न आनेसे अनुमान किया कि कुछ कष्ट उनको अवश्य पहुँचा है। रघुनाथजीका स्वभाव करुणामय है। किसीको दु:खी देख नहीं सकते, यथा—*'करुनामय रघुनाथ गोसाईं। बेगि पाइयहि पीर पराई॥'* (अ० ८५। २) इसीसे *'बूझ करुनाकर'* पद दिया। प्रभुको पूछना पड़ा, इससे यह भी जनाया कि किसीने शोक-समाचार सुनाना उचित न समझा था, इससे न कहा। पुन:, *'करुनाकर'* में यह भाव है कि करुणाभावसे पूछा, अज्ञतासे नहीं। पुन:, पूछनेमें भाव यह कि दासको बड़ाई देना है, यथा—*'संतत दासन्ह देहु बड़ाई। ताते मोहि पूछेहु रघुराई॥'* (आ०) (पु० रा० कु०)

नोट—३ *'तब लगि'* का भाव कि पूछनेपर बतानेकी आवश्यकता न रही; क्योंकि उसी समय हनुमान्‌जी लेकर आ गये।

नोट—४ *'अति दुख माना'।* इससे प्रभुका नरनाट्य दिखाया, यथा—'**मानुषत्वमुपाश्रित्य लीलयानुशुशोच ह।**' (अ० रा० ६। ३२) शक्ति लगनेपर सुषेणसे प्रभुने जो वचन वाल्मी० १०१ में कहे हैं—'यदि समर-श्लाघी सर्वशुभलक्षणयुक्त हमारे ये भाई मृतक हो गये तो हमको प्राणों और सुखसे क्या है? इनकी दशा देख हमारा वीर्य लज्जित हो जाता है, हाथसे धनुष-बाण गिरे जाते हैं, दृष्टि आँसुओंसे बंद हुई जाती है। दु:स्वप्न देखनेके समान सब अङ्ग काँपते हैं, हमारी चिन्ता बढ़ रही है, यही नहीं वरन् मरनेको जी चाहता है'—इत्यादि दु:खसूचक शब्द कहते-कहते वे विलाप करने लगे।.........इत्यादि'; यथा—'**अयं स**

* 'आनयद्राघवाभ्याशं बाहुभ्यां परिगृह्य तम्। वायुसूनो: सुहृत्त्वेन भक्त्या परमया च स:। शत्रूणामप्यकम्प्योऽपि लघुत्वमगमत्कपे:।' (वाल्मी० ५९। ११७) अर्थात्—(तेजस्वी हनुमान्‌जी) अपनी दोनों भुजाओंसे उन्हें उठाकर रामजीके पास लाये। शत्रुओंसे कम्पित होनेके अयोग्य लक्ष्मणजी हनुमान्‌जीके सौहार्द तथा उनकी परमभक्तिसे प्रसन्न हो हलके हो गये।

समरश्लाघी भ्राता मे शुभलक्षणः। यदि पञ्चत्वमापन्नः प्राणैर्मे किं सुखेन वा॥ लज्जतीव हि मे वीर्यं भ्रश्यतीव कराद्धनुः। सायका व्यवसीदन्ति दृष्टिर्बाष्पवशं गता॥', 'अवसीदन्ति गात्राणि स्वप्नयाने नृणामिव। चिन्ता मे वर्धते तीव्रा मुमूर्षाऽपि च जायते॥', '………परं विषादमापन्नो विललापाकुलेन्द्रियः।' (वाल्मी० १०१। ५-७, १०), वे सब ***'अति दुख'*** से कविने जनाया है। वाल्मी० में 'परम विषाद' है, वही यहाँ 'अति दुःख' है।

जामवंत कह बैद सुषेना। लंका रहइ को पठई लेना॥ ७॥
धरि लघु रूप गएउ हनुमंता। आनेउ भवन समेत तुरंता॥ ८॥

अर्थ—जामवन्तजीने कहा कि सुषेण वैद्य लङ्कामें रहता है, उसे ले आनेको कौन भेजा जाय?॥ ७॥ श्रीहनुमान्‌जी छोटा रूप धरकर वहाँ गये और उनको घरसहित तुरंत ले आये॥ ८॥

नोट—१ वाल्मी० ७४ में जाम्बवन्तजीने स्वयं ओषधि बतलायी है और हनुमान्‌जीको लाने भेजा है। अ० रा० ५ में यही ओषधि लानेको स्वयं श्रीरामजीने ही हनुमान्‌जीको भेजा था। वाल्मी० १०२ में सुषेणने ओषधि बतायी और हनुमान्‌जी लेने गये। हनुमन्नाटक और मानसके अनुसार सुषेण लङ्कासे लाये गये। हनु० १३। १७ और गीतावलीमें रघुनाथजीका हनुमान्‌जीको लङ्कासे सुषेण वैद्यको लानेके लिये कहना पाया जाता है। यथा—**'वैद्यं सुषेणमधुनैव तदानय त्वं लङ्कापतेरनुचरोऽपि यतो भिषक् सः। नैवान्यथा वदति रामगिरा हनूमान्पर्यङ्कसुप्तमचिरेण तमानिनाय॥'** अर्थात् हे वीर! तुम इस समय सुषेण वैद्यको ले आओ; वह वैद्य रावणका अनुचर है तथापि अन्यथा नहीं करेगा। श्रीरामजीकी यह वाणी सुन पलँगपर सोते हुए उस सुषेणको हनुमान्‌जी शीघ्र ले आये **'सुनि हनुमंत बचन रघुबीर। सत्य समीरसुवन सब लायक कह्यो राम रनधीर॥ चाहिय बैद ईस आयसु धरि सीस कीस बल ऐन। आन्यो सदन सहित सोवतही जौं लौं पलक परै न॥'**

मानससे उसका समन्वय यों हो सकता है कि जाम्बवन्तने नाम और स्थान बतलाया, उसपर श्रीरघुनाथजीने हनुमान्‌जीको आज्ञा दी कि तुम जाकर ले आओ। आज्ञा पाकर हनुमान्‌जी गये।—इस प्रकार मानस और हनुमन्नाटककी कथा मिल जाती है। विशेष ६१ (४) में देखिये।

पंजाबीजीका मत है कि जाम्बवन्तके वचन सुनकर वे स्वयं ही चल दिये। क्योंकि उनको पश्चात्ताप है कि हमारे रहते लक्ष्मणजीको शक्ति लगी। इससे वे लज्जित हैं।

वि० त्रि०—***'जामवंत कह………'*** इति। यहाँ विभीषणका बोलना प्राप्त था। लङ्काके राजवैद्य 'सुषेण' जिनकी ख्याति जाम्बवान्‌जीतक पहुँची थी, उनका परिचय विभीषणजीको न हो, यह तो हो नहीं सकता। फिर विभीषणजीके मौन रहनेका कारण होना चाहिये। कारण यही जान पड़ता है कि विभीषणजीके आनेपर, वे राजा सुग्रीवद्वारा संशयकी दृष्टिसे देखे गये थे, (यथा—***'जानि न जाइ निसाचर माया। कामरूप केहि कारन आया॥'***) यद्यपि प्रभुने वह बात नहीं मानी, फिर भी बात तो ऐसी हुई थी। यहाँ लक्ष्मणजीके जीवन-मरणका प्रश्न है, और विभीषणजी जानते हैं कि सुषेणकी ख्यातिसे यहाँपर भी लोग अपरिचित नहीं हैं, अतः विभीषणजी सुषेणके लिये कहनेमें अग्रगण्य नहीं हुए। जाम्बवान्‌जी सब समझते थे। इसलिये विभीषणजीके कहनेकी प्रतीक्षा न करके उन्होंने स्वयं कहा कि 'सुषेणको बुलाना चाहिये।'

नोट—२ ***'धरि लघु रूप'*** इति। (क) छोटा रूप धरकर गये जिससे कोई देख न पावे। अपने रूपसे जाते तो कार्यमें विघ्न और विलम्ब हो जाना सम्भव था। ***'लघुरूप'*** वैसा ही समझ लें जैसा सीता-शोध-समय—***'मसक समान रूप कपि धरी। लंका चले सुमिरि नरहरी॥',*** था। पंजाबीजीका मत है कि एक वैद्यहीको लाना था इसलिये बड़े रूपकी आवश्यकता न थी। (ख) यहाँ यह कहा जा सकता है कि 'लौटते समय जब घरसहित लाये तब तो राक्षस विघ्न कर सकते थे, घर तो छोटा नहीं किया गया?' इसका उत्तर यह है कि लौटतेमें इनको विघ्नका भय न था, क्योंकि वेगमें इनको पवन और गरुड़ भी न पा सकते थे तब दूसरा इन्हें कब पा सकता था और लङ्कामें जाते समय विघ्न उपस्थित होनेपर युद्ध होने लगता, इनका सुषेणके यहाँतक पहुँचना ही असम्भव हो सकता था। पुनः, प्र० स्वामीजी भी ठीक

ही लिखते हैं कि जब कालकेतुके समान एक निशाचर राजमहलके बंद द्वारोंमेंसे राजाको अंदर ले जाकर रानीके पास शय्यापर सुला दे सकता है तब अष्टसिद्धियाँ जिनकी सेविकाएँ हैं वे श्रीहनुमान्‌जी क्या घरको भी छोटा नहीं कर सकते? अष्टसिद्धि प्राप्त पुरुष सब कुछ कर सकता है।

नोट—३ *'आनेउ भवन समेत ""'।* घरसमेत लानेके कारण ये हो सकते हैं कि—(क) वह सो रहा था। सोतेसे जगानेपर चलता या न चलता। अथवा न जाने कब जागता। (ख) यहाँ आनेपर सम्भव था कि कहता कि दवा घरपर है तो फिर जाना पड़ता और सम्भवतः दूसरी बार घरतक पहुँचना भी कठिन हो जाता।

वीरकवि—जाना और वैद्यको तुरंत ले आना—यह 'अक्रमातिशयोक्ति अलङ्कार' है। छोटा रूप धारण करने तथा घरसहित ले आनेका हेतु बिना कहे कठिन-सा मालूम होता है, पर जान लेनेसे सरल। अतः 'अस्फुट गुणीभूत व्यंग' है।

दो०—रामपदारबिंद* सिरु नाएउ आइ सुषेन।
कहा नाम गिरि औषधी जाहु पवनसुत लेन॥५४॥

अर्थ—सुषेणने आकर श्रीरामजीके चरणकमलोंको माथा नवाया। पर्वत और ओषधिका नाम बताया। (और तब रामचन्द्रजीने अथवा उसीने कहा कि) हे पवनसुत! ओषधि लेने जाओ॥ ५४॥

नोट—१ *'जाहु पवनसुत लेन'।* सीधा अर्थ यही है कि सुषेणने हनुमान्‌जीसे स्वयं कहा। यह अर्थ वाल्मी० १०१ के अनुसार है। वाल्मी०, अ० रा० और हनु० ना० में मतभेद होनेसे दोनों तरह अर्थ किया गया है।

१—'**सुप्तोत्थितं रघुपतिर्भिषजां वरिष्ठं पप्रच्छ तं सकरुणं तरुणोपचारम्। स व्याजहार हिमरश्मिरुचा रजन्यां जीवत्यसौ द्रुहिणशैलविशल्यवल्ल्या॥**' (हनु० १३। १८)

अर्थात् श्रीरामचन्द्रजीने निद्रासे जागे हुए वैद्यराज सुषेणसे करुणासहित तरुण लक्ष्मणजीके उपचारको पूछा। तब वह बोला कि शीतरश्मि चन्द्रमाकी कान्तिसे प्रकाशित ही रात्रिमें द्रुहिण पर्वतकी संजीवनी बूटीसे ये जीवित हो जायँगे अर्थात् आज रात्रिमें ही बूटी आ जाय।

२—'**रामः (सभयम्)। आर्तः संकुचितमुखकमलः सतमरसंकटे भगवतो रुद्रावतारस्य मारुतेः साशंकमुखकमलविकाशं पश्यति।'''''''''लक्षाणां षष्टिरास्ते द्रुहिणगिरिरितो योजनानां हनूमांस्तैलाग्रेः सर्षपस्य स्फुटनरवपरस्तत्र गत्वाऽत्र चैमि॥**' (हनु० १३। २०)

अर्थात् रामचन्द्रजी दुःखी होकर मलिन-मुखकमल होकर रणसङ्कटमें शङ्कासे भगवान् रुद्रावतार हनुमान्‌जीके मुखकमलकी निर्मलताको देखने लगे।'''''''''हनुमान्‌जीने कहा कि स्वामिन्! मुझे आज्ञा दीजिये! यहाँसे वह पर्वत ६० लाख योजनपर है, सो मैं हनुमान् अग्निपर धरे हुए तेलकी ज्वालामें डाले हुए सरसोंके फूटनेका शब्द जितनी देरमें हो उतनी ही देरमें वहाँ जाकर फिर यहाँ आ जाऊँगा।

३—'**ततः प्राह हनूमन्तं वत्स जीवय लक्ष्मणम्॥**' (अ० रा० ६। २२; श्रीरामोवाच), '''''''''**तथेतिराघवेणोक्तो जगामाशु महाकपिः॥**' (३३) अर्थात् श्रीरामजीने हनुमान्‌जीसे कहा कि हे प्रिय! लक्ष्मणजीको जिलाओ। राघवके ऐसा कहनेपर महाकपि तुरंत चले।

४—वाल्मी० १०१ में लिखा है कि श्रीरामजीको शोकातुर देख सुषेणने उनको समझाकर फिर हनुमान्‌जीको ओषधि लानेको कहा। सुषेणका लाया जाना नहीं कहा गया। यथा—'**एवमुक्त्वा महाप्राज्ञः सुषेणो राघवं वचः॥ समीपस्थमुवाचेदं हनुमन्तं महाकपिम्। सौम्य शीघ्रमितो गत्वा पर्वतं हि महोदयम्॥**' (२९-३०) अर्थात् राघवसे ऐसा कहकर महाप्राज्ञ सुषेण समीप उपस्थित महाकपि हनुमान्‌जीसे बोले कि हे सौम्य! तुम शीघ्र पर्वतपर जाकर (ओषधि लाओ)।

नोट—२ *'कहा नाम गिरि औषधी'* इति। (क) *'गिरि'*। वाल्मी० १०१ में सुषेण हनुमान्‌जीसे कहते हैं कि '**पूर्वं तु कथितो योऽसौ वीर जाम्बवता तव**' (३१) अर्थात् पूर्व जिस पर्वतको जाम्बवान्‌ने तुमको

* 'रघुपति चरन सरोज' (काशी)।

बताया था'। जाम्बवान्ने हनुमान्जीसे वाल्मी० यु० ७४। २९-३० में कहा कि—'समुद्रके ऊपर-ऊपर दूरतक चले जाओ और पर्वतश्रेष्ठ हिमवान्पर पहुँचो। उसके आगे तुम्हें स्वर्णका ऋषभ पर्वत देख पड़ेगा, फिर वहाँसे कैलास पर्वत देखोगे। इन दोनों पर्वतोंके बीचमें सर्वौषधियुक्त प्रकाशित पर्वत देखोगे।' और हनु० ना० में पर्वतका नाम द्रुहिणगिरि बताया गया है जिसको हनुमान्जी ६० लक्ष योजनपर बताते हैं। अ० रा० ५ में श्रीरामचन्द्रजीने हनुमान्जीको बताया है कि यह क्षीरसागरमें है। यथा—'**उवाच मारुतिं शीघ्रं गत्वा क्षीरमहोदधिम्॥'''''''तत्र द्रोणगिरिर्नाम दिव्यौषधिसमुद्भवः॥**' (७१-७२) यह क्षीरसागर सप्त बड़े सागरोंमेंसे एक है। (ख) ओषधिके नाम विशल्यकरणी (घावभरनेवाली), सावर्ण्यकरणी (पूर्ववत् शरीर कर देनेवाली), सञ्जीवकरणी (जीवित करनेवाली) और संधानी (टूटे अङ्गोंको जोड़ देनेवाली) हैं। द्रोणपर्वतके दक्षिण शिखरपर ये मिलती हैं। यथा—'**दक्षिणे शिखरे जातां महौषधिमिहानय॥ विशल्यकरणीं नाम्ना सावर्ण्यकरणीं तथा। संजीवकरणीं वीर संधानीं च महौषधीम्॥**' (वाल्मी० १०१। ३१-३२)

नोट—३ *'पवनसुत'* सम्बोधनका भाव कि—(क) अति शीघ्रताका काम है पवनवेगसे जाकर रात्रिमें ही ले जाओ। (ख) तुम पवनके समान बल, विवेक और विज्ञानके निधान हो, तुम्हीं यह कार्य कर सकते हो। (ग) जैसे पवनकी गति कोई रोक नहीं सकता वैसे ही तुम्हारी गति कोई रोक न सकेगा। '**ज्येष्ठः केसरिणः पुत्रो वातात्मज इति श्रुतः।''''''''''कामरूपो हरिश्रेष्ठो बलरूपसमन्वितः। अनिवार्यगतिश्चैव यथा सततगः प्रभुः॥**' (वाल्मी० २८। १०-११) (सारणवाक्य रावणप्रति)। कालनेमिने भी कहा है—*'तासु पंथ को रोकनिहारा'।* (घ) पवन सबके जीवन हैं, तुम भी ओषधि लाकर लक्ष्मणजीके जीवन बनो। (ङ) तुम्हारी पवनदेव इस कार्यमें सहायता भी करेंगे—(हनु० १३। २३ के मतानुसार द्रोणाचल उखाड़नेमें और गीतावलीमें भरतबाणसे गिरनेपर पवनदेवने सहायता की है। कि० ३० (४-६) के भाव इस पदमें जना दिये हैं, अतः विशेष भाव यहाँ देखिये।

रामचरनसरसिज उर राखी। चला प्रभंजनसुत बल भाखी॥ १॥

अर्थ—श्रीरामचन्द्रजीके चरणकमलोंको हृदयमें रखकर और अपना बल बखानकर पवनपुत्र श्रीहनुमान्जी चले॥ १॥

नोट—१ *'बल भाखी'* इति। रामचन्द्रजीकी व्याकुलता देख उनका शोक हरने, उनको ढाढस देनेके लिये कार्य-तत्परताकी मूर्ति पवनसुतमें यह वीरोत्साह हुआ। हनु० ना० और गीतावलीमें उनकी अत्युक्ति इस प्रसङ्गमें कैसी वीररसपूर्ण है तथा कि० काण्डमें समुद्रतटपर जैसे गर्जकर उन्होंने अपना बल कहा था उससे भी अधिक उत्साह यहाँ दिखाया है, देखिये-

'**हनूमान् (*सविस्मयो रामम्*) हनुमति कृतप्रतिज्ञे देवमदैवं यमोऽप्ययमः। पुनर्देव पश्य-**
पातालतः किमु सुधारसमानयामि निष्पीड्य चन्द्रममृतं किमुताहरामि।
उद्दण्डचण्डकिरणं ननु वारयामि कीनाशपाशमनिशं किमु चूर्णयामि॥' (१३। १६)

आश्चर्यपूर्वक हनुमान्जी श्रीरामजीसे बोले कि हनुमान्के प्रतिज्ञा करनेपर दैव-अदैव और यम-अयम हो जाता है। क्या मैं पातालसे अमृतरसको ले आऊँ? अथवा, चन्द्रमाको निचोड़कर अमृत ले आऊँ? या प्रचण्ड किरणमाली सूर्यको वारण कर दूँ? वा, निरन्तर पाशधारी यमराजको ही चूर-चूर कर डालूँ। इत्यादि। पुनश्च—

'**जौं हौं तव अनुसासन पावौं। तौं चंद्रमहि निचोरि चैल ज्यों आनि सुधा सिर नावौं॥**
कै पाताल दलौं ब्यालावलि अमृतकुंड कहि ल्यावौं। भेदि भुवन करि भानु बाहिरो तुरत राहु दै तावौं॥
बिबुधबैद बरबस धरि आनौं तौ प्रभु अनुग कहावौं। पटकौं मीचु नीच मूषक ज्यों सब कौं पाप बहावौं॥
तुम्हरिहि कृपा प्रताप तिहारेहि नेकु बिलंब न लावौं। दीजै सोइ आयसु तुलसी प्रभु जौं तुम्हरे मन भावौं॥(गीता० ६। ८)

इसी भावोद्वेगमें पवनसुत तुरंत चल पड़े, प्रणाम करनेतकको सुधि न रही। भगवान्की हँसी यदि माया है तो रुलाई महामाया है। वह शेष भगवान् तथा मारुतितकको भुलावेमें डाल देती है। उसीके फेरमें पड़कर राहमें अनेक विघ्नोंका सामना करना पड़ा है।

नोट—२ ओषधि लानेकी आज्ञा देनेमें *'पवनसुत'* और बल कहकर चलनेमें उससे भी बड़ा *'प्रभंजनसुत'* पद दिया। प्रभंजनका भी अर्थ पवन है। अतएव इसमें 'पवनसुत' के भाव तो हैं ही पर कुछ विशेष भी हैं। प्रभंजन=विशेष भंजन (चूर्ण) करनेवाला। इस शब्दको देकर कविने जनाया है कि जो बल यहाँ बखान किया है वह ऐसा ही है। उपर्युक्त उद्धरणोंके *'चूर्णयामि', 'दलौं', 'पटकौं', 'बरबस धरि आनौं',* इत्यादि शब्द 'प्रभंजन' पदको सार्थक कर रहे हैं।

बं० पा० १—यहाँ दो बातें प्रतिकूल हुईं। एक तो प्रणाम न किया, दूसरे स्वामीके आगे बल बखान किया। अतएव क्लेश होगा। २—*'चरन सरसिज उर राखी'* का भाव कि श्रमका ताप न हो; इन चरणोंने त्रिलोकीको नाप लिया था, अतएव इनकी कृपासे षट् समुद्र पार होना क्या बड़ी बात है?

नोट—३ मेरी समझमें श्रीरामचरणकमल हृदयमें धारण किया है, अत: कार्यमें सफलता अवश्य होगी। *'राम चरन पंकज उर धरहू।'* (६। १। ८) देखिये। पर बल बखानकर चले हैं इससे विघ्न उपस्थित होंगे। जैसा बल बखान किया वैसी शीघ्रतासे कार्य न होगा। सेवकमें दैन्यभाव चाहिये चाहे वह कितना ही पराक्रमी क्यों न हो। इस बल बखानके साथ ही प्रणामका न किया जाना भी बड़ा भारी अपराध माना गया, नहीं तो हृदयमें स्मरण करना भी प्रणामहीके तुल्य था।

उहाँ दूत एकु मरमु जनावा। रावनु कालनेमि गृह आवा॥ २॥

अर्थ—उधर एक दूत (गुप्तचर) ने रावणसे यह भेद बता दिया। रावण कालनेमिके घर आया॥ २॥

वि० त्रि०—लक्ष्मणजीकी स्थिति जाननेके लिये, तथा चिकित्साकी व्यवस्था जाननेके लिये रावणने दूत छोड़े थे। भवनसहित सुषेणका लाना एक ऐसी घटना थी, जो कि दूतोंसे छिप न सकी। किसी एकको सुषेणकी कही हुई बातोंके सुननेका भी अवसर हाथ लग गया, उसने तुरंत समाचार रावणको दिया। रावणने समझा कि लङ्काभरमें ऐसा मायावी कालनेमि ही है, जो हनुमान्‌का रास्ता रोक सकता है, और वह अन्तर्मुख हो रहा है, ऐसे काममें हाथ न बँटावेगा, अत: रावण स्वयं कालनेमिके घर गये। इसी भाँति मारीचके पास भी स्वयं गये थे। स्वार्थसाधनमें रावण अभिमानको स्थान नहीं देते (यथा—*'नाइ माथ स्वारथ रत नीचा।'*)

नोट—☞१ कालनेमिके पास आनेमें 'रावण', उससे मर्म कहनेमें *'दसमुख'* और उसकी बातपर क्रोधित होनेपर 'दशकण्ठ' शब्दोंका प्रयोग इस प्रसङ्गमें कविने किया है। यह भेद भी भावसे खाली नहीं है। नोट—२ कालनेमिको रुलावेगा, यथा—*'पुनि पुनि कालनेमि सिर धुनेऊ',* रुलाना क्या, उसके तो प्राण ही ले लिये। अत: यहाँ 'रावण' नाम कहा।

नोट—३ (क) *'कालनेमि गृह आवा'* इति। इससे जनाया कि मुनिवेष धारण करनेमें यह बहुत बड़ा निपुण था जैसे मारीच मायामृग बननेमें था। रावणकी यह प्रजा है। रावणको पूर्ण विश्वास है कि यह कार्य यही कर सकेगा, दूसरा नहीं, अतएव इसके पास उसी समय अकेला आया—**'जगाम रात्रावेकाकी कालनेमिगृहं क्षणात्।'** (६। ३६) (ख)—कालनेमिका प्रसंग अ० रा० ६—७ और आ० रा०। १। ११ में भी है।

दसमुख कहा मरनु तेहिं सुना। पुनि पुनि कालनेमि सिरु धुना॥ ३॥

शब्दार्थ—'सिर धुनना'=शोक या पछतावेसे सिर पीटना, पछताना, शोक करना।

अर्थ—दशाननने उससे सब मर्म कहा और उसने सुना। कालनेमिने बारंबार अपना सिर पीटा॥ ३॥

नोट—१ 'दसमुख' पदसे जनाया कि अभिमानपूर्वक सब हाल कहा मानो दसों मुखोंसे कहा है। यथा—*'दसमुख सकल कथा तेहि आगे। कही सहित अभिमान अभागे।'*—(मारीचसे)। पुन:, भाव कि वह इतना व्याकुल था कि वही एक बात उसने दसों मुखोंसे कही, यथा—*'दसमुख बोलि उठा अकुलाना'* [समुद्रपर सेतुका बाँधना सुनकर। (पं०)] नोट—२ *'मरमु'* इति। एक तो हनुमान्‌जीका लक्ष्मणजीके लिये ओषधि लाने जानेका सब वृत्तान्त कहा, दूसरे, यह बताया कि मायासे मुनिवेष धारण कर कपिको मोहित कर सकते हो फिर जिस प्रकार निशाकाल व्यतीत हो वह करना। यथा अध्यात्मे—

'मायया मुनिवेषेण मोहयस्व महाकपिम्। कालात्ययो यथा भूयात्तथा कृत्वैहि मन्दिरे॥' (६। ४१)

नोट—३ ***'सिरु धुना'*** इति। भाव कि कहाँसे यह अभागा हमारे प्राण लेनेको आ गया। काल सिरपर आ गया यह समझ सिर पीटकर पश्चात्ताप करता है कि मायामें कुशल होना आज हमारे लिये प्राणघातक ही हो रहा है। सिंहिकाकी माया हनुमान्‌जीसे न चली तब हमारी क्या चलेगी। अवश्य मरण होगा, यह समझकर उसे अत्यन्त दुःख हुआ, इसीसे सिर पीटने लगा। यथा—***'अति बिषाद पुनि पुनि सिर धुनेऊ।'*** (६१। ५) अ० रा० में कालनेमिने रावणसे कहा है कि मेरे प्राण न बचेंगे जैसे मारीचके न बचे थे। यथा—**'प्रियं ते करवाण्येव न प्राणान्धारयाम्यहम्। मारीचस्य यथारण्ये पुराभून्मृगरूपिणः। तथैव मे न संदेहो भविष्यति दशानन॥'** (अ० रा० ६। ४३-४४)

प० प० प्र०—इसके दोनों चरणोंमें एक-एक मात्रा कम है। रावण-मारीच-प्रसङ्गके ***'सस्त्री मर्मी प्रभु सठ धनी। बैद बंदि कबि भानसगुनी॥'*** इस अर्धालीमें एक-एक मात्रा कम है। भाव भी दोनोंमें एक-सा है। भाव कि मर्म सुनते ही उसे उसका मरण निश्चय हो गया—***'उभय भाँति देखा निज मरना'।*** इससे किंकर्त्तव्यमूढ़ होकर स्तम्भित हो गया, कलेजा धड़कने लगा और विषादवश कुछ देर बोल न सका।

देखत तुम्हहि नगर जेहि जारा। तासु पंथ को रोकन* पारा॥ ४॥

अर्थ—(और बोला कि) तुम्हारे देखते-देखते जिसने नगर जला डाला, उसका मार्ग कौन रोक सकता है? (कोई नहीं। भाव कि ऐसे विषम बलीसे वैर ठानना व्यर्थ है)॥ ४॥

दोहा ३५ (५) और दोहा ५४ देखिये।

भजि रघुपति करु हित आपना। छाँड़हु नाथ मृषा† जलपना॥ ५॥
नीलकंज तनु सुंदर स्यामा। हृदय राखु लोचनाभिरामा॥ ६॥

अर्थ—रघुनाथजीका भजन करके अपना कल्याण करो। हे नाथ! झूठी व्यर्थकी बकवाद छोड़िये॥ ५॥ नेत्रोंको आनन्द देनेवाले सुन्दर श्याम नील कमल शरीर (मूर्ति)को हृदयमें रखिये॥ ६॥

नोट—***'भजि रघुपति करु हित आपना'*** इति। (क) ऐसा ही अ० रा० में कहा है, यथा—**'भजस्व रामं परिपूर्णमेकं विहाय वैरं निजभक्तियुक्तः। हृदा सदा भावितभावरूपमनामरूपं पुरुषं पुराणम्॥'** (६। ६३) अर्थात् वैर छोड़कर भक्तियुक्त होकर नाम-रूपरहित पुराणपुरुष, परिपूर्ण, अद्वितीय, सदा हृदयमें भावपूर्वक ध्यान करने योग्य रामचन्द्रजीको भजो। (ख)—***'हित'*** अर्थात् लोक-परलोक दोनोंका कल्याण। यहाँ प्राण बचेंगे, अविचल राज्य रहेगा और अन्तमें मुक्ति होगी। अ० रा० में ***'हित'*** के बदले मुक्ति है, यथा—**'भक्त्या परमया युक्तो मुच्यते नात्र संशयः॥'** (६। ६१) (ग) ***'रघुपति'।*** ***'तुम्हहि रघुपतिहि अंतर कैसा॥'*** (६। ६। ६) और ***'जाइ भजिअ रघुनाथ।'*** (६। ६) में देखिये। भाव कि जीवको उनका भजन करना योग्य ही है। आगे भजनकी विधि बताता है—***'नीलकंज········।'***—(बं० पा०)। ☞ कालनेमिका ज्ञान-भक्ति-उपदेश अ० रा० में ६। ४७—६३ में है।

प० प० प्र०—मात्राकी न्यूनता करके बताया कि रावणका अहंकार और उसका दुष्परिणाम विचारमें आनेसे कालनेमिकी छाती दया, विषाद, भय आदि विकारोंसे व्यथित हो गयी।

अहंकार ममता मद‡ त्यागू। महा मोह निसि सूतत जागू॥ ७॥
काल ब्याल कर भक्षक जोई। सपनेहु समर कि जीतिअ सोई॥ ८॥

अर्थ—अहंकार, ममत्व और मदको छोड़ो। महामोहरूपी रात्रिमें सोते-से जागो॥ ७॥ जो कालसर्पका

* रोकनहारा—(का०)। पारा—(भा० दा०)। यहाँ वक्रोक्ति अलङ्कार है।

† वृथा जल्पना—(पां०, न० प्र०)। 'मृषा जल्पना'—(का० भा० दा०)

‡ यह का० का पाठ है। 'मैं तैं मोर मूढ़ता'—(भा० दा०)

खानेवाला है, उसे स्वप्नमें भी संग्राममें कौन जीत सकता है? (भाव कि जागतेकी कौन कहे स्वप्नमें भी तुम उसे लड़कर नहीं जीत सकते, वे भक्तिसे ही वशमें होते हैं)॥ ८॥

नोट—१ *'अहंकार ममता मद त्यागू'* के भाव। (क)—इन्हींके कारण तुम भूले हुए हो और समझते हो कि हमसे कौन लड़ सकता है, राम मनुष्य हैं, हनुमानादिक वानर हैं, इनसे क्या डरना इत्यादि। (ख) इनके त्याग करनेपर तुम उन्हें ईश्वर जानोगे। दोहा ३६ (५) *'मुधा मान ममता मद बहहू'* देखिये। (ग)—पूर्व कहा कि रघुपतिका भजन करो। ये भजनके बाधक हैं अतः अब इनके छोड़नेको कहा—*'परिहरि मान मोह मद भजहु कोसलाधीस।'* (सुं० ३९) और *'भजहु नाथ ममता सब त्यागी।'* (७। ५) देखिये।

नोट—२ *'महामोह निसि सूतत जागू'* इति। ईश्वरमें भ्रम होना महामोह है, यथा—*'महामोह उपजा उर तोरे। मिटिहि न बेगि कहे खग मोरे॥'* (उ० ५८) पुनः, धरनि, धाम, धन, परिवारादिमें लिप्त रहना मोहरात्रिमें सोना है और सबसे वैराग्य हो प्रभुके भजनमें लगना जागना है। आशय यह कि रामको परब्रह्म परमात्मा जानकर उनका भजन करो, उनको जानकी दे दो; इत्यादि।—इसकी विस्तृत टीका श्रीलक्ष्मणगीता अ० ९१—९३ में हो चुकी है। श्रीलक्ष्मणजीका—*'मोहनिसा सब सोवनि हारा। देखिअ सपन अनेक प्रकारा॥ जानिय तबहि जीव जग जागा। जब सब बिषय बिलास बिरागा॥ होइ बिबेक मोह भ्रम भागा। तब रघुनाथ चरन अनुरागा॥'* (अ० ९३। २—५), यह सारा उपदेश इस एक चरणमें आ गया।

नोट—३ *'काल ब्याल कर भक्षक जोई।.........'* इति। कालको सर्प कहा; क्योंकि यह शीघ्र ही सबको खा लेता है, किसीको रूरियायत नहीं करता—*'जो सुर असुर चराचर खाई'* उस कालके भी ये काल हैं। मनुष्य नहीं हैं। तब इनको कौन जीत सकता है? *'उतरे प्रभु दल सहित सुबेला।'* (३६। १), तथा **'कालमत्तेभसिंहम्।'** (मं० श्लोक १) देखिये।

दो०—सुनि दसकंठ रिसान अति तेहि मन कीन्ह बिचार।
रामदूत कर मरौं बरु यह खल रत मलभार॥५५॥

शब्दार्थ—बरु (वर=श्रेष्ठ, भला)=भले ही, कुछ हर्ज नहीं।

अर्थ—'दशग्रीव रावण सुनकर बहुत ही क्रोधित हुआ (तब) उसने मनमें विचार किया कि यह दुष्ट तो पापसमूहमें आसक्त है 'मरना ही है तो इसके हाथसे न मरकर) भले ही रामदूतके हाथों मरूँ॥ ५५॥

नोट—१ (क) *'दसकंठ'* का भाव कि दसों मुखोंसे क्रोध प्रकट किया, वा इसके दसों सिर काटे जानेको हैं—*'सुनु दसकंठ कहौं पन रोपी।.........॥'* (५। २३। ७) देखिये। (ख) *'रिसान अति'* का भाव कि क्रोधसे जल उठा, दसों मुख और सब नेत्र क्रोधसे लाल हो गये—*'सुनत बचन रावन परजरा। जरत महानल जनु घृत परा॥'* (२७। ८) देखिये। बहुत गालियाँ दीं कि तू हमें गुरु बनकर ज्ञान सिखाता है, जान पड़ता है कि तू शत्रुसे मिला हुआ है। (अ० रा० ७। १—३), यथा—*'सुनत जरा दीन्हेसि बहु गारी।'* (३। २६। १) देखो। (ग) *'रामदूत कर मरौं बरु.........।'* इति। *'बरु'* पदसे जनाया कि रावणने उससे कहा कि तू मेरा कहा नहीं करता तो मैं तुझे अभी अपने हाथसे मारता हूँ—**'निहन्मि त्वां दुरात्मानं मच्छासनपराङ्मुखम्।'** (अ० रा० ७) तब उसने मनमें सोचा कि पापीके हाथों मरनेसे यही भला है कि रामदूतके हाथ मरूँ। इसी प्रकार मारीचने सोचा था—*'उभय भाँति देखा निज मरना।.........'*, **'रामादपि च मर्तव्यं मर्तव्यं रावणादपि। उभयोर्यदि मर्तव्यं वरं रामो न रावणः॥'** (हनु० ३। २४), आ० २६ (५-६)। (घ) रामदूतका दर्शनमात्र अति पुण्यप्रद और पापनाशक है, यथा—*'तात मोर अति पुन्य बहूता। देखेउँ नयन राम कर दूता॥'* (५। ४। ८), *'कपि तव दरस भइउँ निष्पापा।'* (५७। १)

अस कहि चला रचिसि मग माया। सर मंदिर बर बाग बनाया॥ १॥
मारुतसुत देखा सुभ आश्रम। मुनिहि बूझि जल पिअउँ जाइ श्रम॥ २॥

अर्थ—ऐसा कहकर चला और उसने मार्गमें माया रची। तालाब, मन्दिर और श्रेष्ठ बाग बनाये॥ १॥ पवनसुत हनुमान्‌जीने सुन्दर पवित्र आश्रम देखा तो मनमें विचार किया कि मुनिसे पूछकर जल पी लूँ जिससे थकावट दूर हो॥ २॥

'रचिसि मग माया। सर मंदिर......।'

पंजाबीजी और बाबा हरीदासजी कहते हैं कि मार्गमें सर प्राचीन था जिसमें शापित मकरी शापके समयसे रहती आयी है। उसीपर उसने सुन्दर मन्दिर और बाग बनाया। गौड़जी लिखते हैं कि 'उसने मार्गमें माया रची अर्थात् आप मुनि बनकर बैठ गया। किसी उपयुक्त स्थानपर जहाँ बाग, तालाब और मन्दिर था वहीं अपना आसन जमाया। सर मन्दिर पहलेसे मौजूद देखा। उसे केवल ***'बर बाग बनाया'*** सुन्दर बाग सजाना था। उसने सजाया। तालाब झूठा न था और न उसकी मकरी।' और, करुणासिन्धुजी लिखते हैं कि 'सर भी मायाका है। अप्सराको राक्षसी होनेका शाप था। वह भी बड़ी मायाविनी थी। कालनेमिकी सम्मति वा रावणाज्ञासे वह सरमें मकरी बनकर आयी'। करुणासिन्धुजीके मतकी पुष्टिमें देखिये—'**हत्वा मायामहर्षीन्रजनिचरवरान् कन्धकालीमुदग्रां। ग्राहीरूपां प्रमथ्य प्रबलमथ बलं राक्षसान्मर्दयित्वा॥**' (हनु० १३। ३२)

इसमें मकरीरूपधारिणी कन्धकाली राक्षसीका मन्थन करना कहा है। और, अ० रा० एवं आ० रा० पंजाबीजी आदिके मतके पोषक हैं। यथा—'**त्वत्प्रसादादहं शापाद्विमुक्तास्मि कपीश्वर। शप्ताहं मुनिना पूर्वमप्सरा कारणान्तरैः। आश्रमे यस्तु ते दृष्टः कालनेमिर्महासुरः। मुनिवेषधरो नासौ मुनिर्विप्रविहिंसकः॥**' (६। ७। २५—२७)

अ० रा० ७ के इस श्लोकमें उसने अपना पूर्व अप्सरा होना और अब शापसे मुक्त होना कहा है। अपना राक्षसी होकर मायासे मकरी बनना नहीं कहा। कालनेमिका रावणाज्ञासे मुनि बनना कहा है। और, आ० रा० १। १०। ५६ में उसके ये वचन हैं—'**त्वत्तो मे निष्कृतिस्तेन कीर्तिता।**' अर्थात् ऋषिने मुझे शाप दिया जैसा तुमने मुझे देखा और मकरी-शरीर छूटनेका कारण आपसे मुझे बताया। फिर अन्तमें उसने यह भी कहा कि यह कालनेमि है, रावणने इसे भेजा है, आप इसे मार डालें—'**रावणप्रेषितो मार्गे स्थितस्तं जहि वेगतः।**'; अपनेको रावणकी भेजी हुई नहीं बताया। इन उद्धरणोंसे शापसे मकरी होना सिद्ध होता है और यह भी अनुमान होता है कि कालनेमि जानता था कि यह पकड़ा करती है अतः यहाँ आश्रम रचा। मानसकविके शब्दोंकी स्थिति ऐसी है कि सबके मतोंका पोषण हो जाय; पर मानसका क्या मत है यह मानससे ही स्पष्ट हो जाता है। मकरी मायाकी न थी, यही मानसका मत है। क्योंकि मरनेपर मायाका शरीर छूटकर राक्षस-शरीर प्रकट होनेपर ही दिव्य शरीर होना मारीच और कालनेमि दोनोंके प्रसंगोंमें पाया जाता है; पर मकरीके मरनेपर यह बात नहीं कही गयी। यदि वह मायाकी मकरी होती तो प्रथम उसका राक्षसी शरीर अवश्य प्रकट होता तब दिव्य देह बनता।

'मकरी-ताल' नामक सर श्रीअयोध्याजीसे दक्षिण लगभग १०-११ कोसपर मौजूद बताया जाता है और अब वहाँ मकरी-हनुमान्‌जीका मन्दिर भी है। यह भी सरके माया-रचित न होनेको प्रमाणित करता है। अ० रा० और आ० रा० में हिमाचलके पास तपोवन, आश्रम और ऋषि-शिष्योंका मायासे कल्पित किये जानेका स्पष्ट उल्लेख है, यथा—'**स गत्वा हिमवत्पार्श्वे तपोवनमकल्पयत्॥ तत्र शिष्यैः परिवृतो मुनिवेषधरः स्थितः॥**' (आ० रा० १। ११। ४८) सरका नहीं। आश्रम बनाया, इसीसे आश्रम देखना सर्वत्र कहा गया है।

नोट—१ (क) ***'अस कहि चला'।*** पूर्व कहा कि ***'मन कीन्ह बिचार'*** और यहाँ लिखते हैं कि ***'अस कहि',*** यद्यपि किसी बातका कहना यहाँ पाया नहीं जाता। मारीच-प्रसंगमें ***'कहि'*** पद नहीं है। वहाँ कवि लिखते हैं कि ***'अस जिय जानि दसानन संगा। चला.........॥'*** तब यहाँ ***'कहि'*** कैसे लिखा? इस शब्दको यहाँ देकर कवि सूचित करते हैं कि विचार करनेके बाद उसने रावणसे कहा कि आप क्रोध न करें, मैं जाकर आपका कहा करता हूँ। यथा—'**कालनेमिरुवाचेदं रावणं देव किं क्रुधा। न रोचते मे वचनं यदि गत्वा करोमि तत्॥**' (अ०-रा० ७। ३)

इसका अध्याहार ऊपरसे कर लेना होगा। यहाँ उसकी अत्यन्त शीघ्रता दिखानेके लिये वे वचन खोले न गये, ***'कहि'*** से ही जना दिये गये। कविने मायावी कालनेमिकी मायामें निपुणता और उसकी शीघ्रता

किस खूबीसे यहाँ दिखायी है। रावणसे बात कहना, चलना और माया रचना, यह सब एक साथ एक चरणमें देकर जनाया कि मानो ये तीनों कार्य एक साथ हुए। रावणसे कहते हुए कि मैं जाता हूँ वह मार्गमें हनुमान्‌जीके पहले ही पहुँच भी गया और माया भी रच ली।

नोट—२ *'सुभ आश्रम'* से जनाया कि वह देखनेमें पवित्र, रमणीय, मनभावन इत्यादि था, वन कुसुमित था, मधुकर पक्षी, मृग कोलाहल करते थे, इत्यादि, जैसे मुनियोंके आश्रम होते हैं। (अ० रा० ७। ९। ११ में ये सब बातें आश्रममें दिखायी गयी हैं।) मिलान कीजिये—*'बिस्वामित्र महामुनि ग्यानी। बसहिं बिपिन सुभ आश्रम जानी॥'* (बा० २०६), *'राम दीख मुनिबास सुहावन। सुंदर गिरि कानन जल पावन॥'*......*सुचि सुंदर आश्रम निरखि हरषे राजिवनयन॥'* (अ० १२४)

नोट—३ *'मुनिहि बूझि'*......*।'* इति। इससे जनाया कि इन्होंने तालाब अभी देखा नहीं, रात्रिका समय है। कपटी मुनिसे आगे पूछेंगे तब यह विद्यार्थीको साथ करेगा। यथा—**'उदकं कुत्र विद्यते' 'दर्शय मे जलम्', 'वटो दर्शय विस्तीर्णं वायुसूनोर्जलाशयम्।'** (अ० रा० ७। १८, १९)

नोट—४ *'जाइ श्रम'।* (क) यह प्रभुकी माया है। कालनेमि और मकरीका शापोद्धार करना है। इससे हनुमान्‌जीको श्रम भी हुआ और प्यास भी लग आयी। नहीं तो किष्किन्धाकाण्डमें दिखाया है कि सब वानर प्याससे व्याकुल हुए; पर इनको न प्यास थी न थकावट। प्यास न लगती तो रामकार्यको छोड़कर आश्रममें क्यों आते—*'रामकाज कीन्हे बिना मोहि कहाँ बिश्राम।'*

(ख) गौड़जी—'सीताजीकी खोजसे यह काम कम जरूरी नहीं था। इसमें समय कम था, दूरी अधिक। इतनेपर भी श्रीहनुमान्‌जीको श्रम हो गया, प्यास तेज लगी। प्रणाम न करना और बल भाषना उनके-से मूर्त्तिमान् विनयसे हो पड़ना भी विचारणीय है। प्रणाम न करके क्रोध भरकर चलनेसे श्रीलखनलालके शक्ति लगी। यहाँ हनुमान्-जैसे भक्तकी राह खोटी हुई, उन्हें *'रामकाज कीन्हे बिना'*, विश्राम करना पड़ा।'

वि० त्रि०—हनुमान्‌जी चल चुके। उसके बाद रावणको समाचार मिला। तब वह कालनेमिके यहाँ गया। उससे बातचीत हुई। तब कालनेमि चला। प्रश्न यह उठता है कि कहाँ हनुमान्‌जीकी यह प्रतिज्ञा कि **'तैलाग्रेः सर्षपस्य स्फुटनरवपरस्तत्र गत्वात्र चैमि'** खौलते हुए तेलमें सर्षप (सरसों) डालनेपर उसके फूटनेमें जो शब्द होता है, उतनी देरमें मैं जाकर लौट आ सकता हूँ। और कहाँ कालनेमिने उनसे पहिले पहुँचकर सर-मन्दिर बरबाग भी सजा लिया। मानना पड़ेगा कि उसने मायाबलसे हनुमान्‌जीके वेगको रोका। उसकी मायाके प्रतिकूलगमनमें हनुमान्‌जीको परिश्रम करना पड़ा, प्यास लग गयी, थकावट मालूम होने लगी (यथा—*'मुनिहि बूझि जल पियउँ जाइ श्रम'*), एवं वह हनुमान्‌जीसे पहिले पहुँचकर मायासे सर, मन्दिर तथा बाग सँवारकर स्वयं मुनि बनकर बैठा। यह उसकी मायाकी करतूत थी कि हनुमान्‌जीको उसी रास्तेसे जाना पड़ा।

राक्षस कपट बेष तहँ सोहा। मायापति दूतहि चह मोहा॥ ३॥

जाइ पवनसुत नाएउ माथा। लाग सो कहै राम गुन गाथा॥ ४॥

शब्दार्थ—**मोहना**=धोखा देना, भ्रममें डालना।—*'अस प्रचंड रघुपति की माया। जेहि न मोह अस को जग जाया॥'* लुभाना। ठगना।

अर्थ—कालनेमि राक्षस वहाँ बनावटी मुनिवेषसे विराजमान था। वह (अपनी मायासे) मायाके स्वामी श्रीरघुनाथजीके दूतको मोहित करना चाहता था॥ ३॥ पवनसुतने जाकर मस्तक नवाया। वह श्रीरामजीके गुणोंकी कथा कहने लगा॥ ४॥

नोट—१ *'मायापति दूतहि चह मोहा'* इति। (क) इस प्रकरणमें 'मायापति दूत' पद देकर जनाते हैं कि देवगुरुके—अ० २१८ (३) के *'मायापति सेवक सन माया। करइ त उलटि परइ सुरराया॥'* इन वचनोंका यहाँ चरितार्थ होगा। (ख) *'चह'* का भाव कि वह चाहता है पर मोहित कर न सकेगा क्योंकि *'सीम कि चाँपि सकै कोउ तासू। बड़ रखवार रमापति जासू॥'* 'मायापति' मायासे रक्षा करेंगे।

नोट—२ (क) *'जाइ पवनसुत नाएउ माथा'*, यह *'लखि सुबेष जग बंचक जेऊ। बेष प्रताप पूजिअहिं*

तेऊ॥' (१। ७। ५) का चरितार्थ है। वेषसे मुनि समझकर उसको प्रणाम किया। सन्तका वेष-बाना पूज्य है। यथा—*'निपट अमोल यह संतन को वेष है'।* (भक्तिरसबोधिनी कवित १५८) (ख) *'लाग सो कहै रामगुन गाथा'* इति। 'मनिरूप' दृढ़ करने और कपिके मोहनेके लिये रामगुणगान किया (पु० रा० कु०) हनुमान्‌जी रामचरितके रसिक हैं, यथा—**'सीतारामगुणग्रामपुण्यारण्यविहारिणौ।'**, **'जयति रामायनश्रवन संजात रोमांचलोचन सजल सिथिलबानी।'** (वि० २९) यहाँ सबेरेतक इसी बहाने रोके जा सकेंगे—दूसरे उसे डर था कि कहीं प्रणाम करके तुरंत चल न दें—*'राम काज कीन्हे बना मोहि कहाँ बिश्राम'* इससे प्रणाम करते ही वह बिना उनके कुछ पूछे गुणगान करने लगा। यह कल्पित प्रश्नका 'गूढ़ोत्तर अलङ्कार' है। ☞अ० रा० और आ० रा० में रामगुणगान नहीं है, वरन् प्रथम ही पानी पीने जानेका उल्लेख है।

होत महारन रावन रामहिं। जितिहहिं रामु न संसय या महिं॥ ५॥
इहाँ भए मैं देखौं भाई। ग्यान दृष्टि बल मोहि अधिकाई॥ ६॥

शब्दार्थ—**या**=इस। **महिं**=में। **भए**=से ही।

अर्थ—रावण और श्रीरामचन्द्रजीसे घोर युद्ध हो रहा है। श्रीरामचन्द्रजी जीतेंगे इसमें संदेह नहीं है॥ ५॥ भाई! मैं यहाँसे ही देख रहा हूँ, मुझे ज्ञानदृष्टिका अधिक बल है॥ ६॥

नोट—१ *'होत महारन रावन रामहिं'* इति। क्या रामगुणगान किया वह यहाँ बताया कि युद्धारम्भसे अबतककी कथा कही। (ख) *'जितिहहिं रामु न संसय·······'* इति। भाव कि तुम निश्चिन्त होकर सुखपूर्वक सो रहो, मुझे त्रिकालका ज्ञान है, मैं जानता हूँ कि श्रीरामजी जीतेंगे, किंचित् सन्देह न करो। (पु० रा० कु०) आशय यह कि हनुमान्‌जी विश्वासमें आकर सो रहें तो कार्यमें विलम्ब होनेसे सफलता न होगी। कथामें प्यास भूल गये थे पर जब उसने अपनी प्रशंसा की, तब उधरसे चित्त हटा क्योंकि संत तो *'निजगुन सुनत सदा सकुचाहीं।'* (३। ४६। १) और वह तो अपना गुण कथन कर रहा है। पुनः, रामचरित कहता रहा तबतक सुना, पर जब *'मैं' 'मोहि'* कहा, तब चित्त हट गया।

अ० रा० में जल माँगनेपर उसने कहा है **'कमण्डलुगतं तोयं मम त्वं पातुमर्हसि॥ भुङ्क्ष्व चेमानि पक्वानि फलानि तदनन्तरम्। निवसस्व सुखेनात्र निद्रामेहि त्वरास्तु मा॥ भूतं भव्यं भविष्यं च जानामि तपसा स्वयम्।·······॥'** (१५। १६) (अर्थात् तुम मेरे कमण्डलुका जल पी सकते हो। यहाँ फल मौजूद हैं, इन्हें खाओ और फिर सुखपूर्वक यहाँ विश्राम लेकर कुछ सो लो, ऐसी जल्दी न करो। मैं अपने तपोबलसे भूत, भविष्यत् और वर्तमान तीनों कालोंकी बात जानता हूँ।)—मानसके *'जितिहहिं रामु न संसय या महिं'* में ये सब भाव आ जाते हैं, परंतु मानसका कालनेमि अ० रा० के कालनेमिसे अधिक चतुर है। इसने ऐसी बातें न कहीं क्योंकि इनको तो *'रामकाज कीन्हे बिना'* विश्राम कहाँ! इसने रामचरित सुनाना प्रारम्भ किया।

पं०—*'न संसय'* से जान पड़ता है कि जब उसने कहा कि तुम रामदूत हो, औषध लेने जा रहे हो, तब हनुमान्‌जीकी चेष्टासे उसे जान पड़ा कि इन्हें सन्देह हो रहा है कि मुझसे प्रथम तो कोई यहाँ आ नहीं सकता था, तब इन्हें कैसे मालूम हुआ। अतएव उसने संदेहनिवारणार्थ स्वयं ही कहा कि संदेह न करो (युक्तिसे इस बातका समर्थन 'काव्यलिंग अलङ्कार' है)।

माँगा जल तेहिं दीन्ह कमंडल। कह कपि नहिं अघाउँ थोरे जल॥ ७॥
सर मज्जन करि आतुर आवहु। दिच्छा देउँ ग्यान जेहि पावहु॥ ८॥

शब्दार्थ—**अघाना**=तृप्त होना। **आतुर**=शीघ्र, जल्द, यथा—*'रुचिर बिमान चलेउ अति आतुर॥'* (११७) दीक्षा=मन्त्रोपदेश।

अर्थ—हनुमान्‌जीने उससे जल माँगा। उसने कमण्डलु दे दिया। हनुमान्‌जीने कहा कि मैं थोड़े जलसे तृप्त न होऊँगा॥ ७॥ तब वह बोला कि तालाबमें स्नान करके शीघ्र आ जाओ, मैं तुम्हें दीक्षा दूँ जिससे तुमको ज्ञान प्राप्त हो जाय॥ ८॥

नोट—१ *'सर मज्जन करि आतुर आवहु'* इति। (क) जब श्रीहनुमान्‌जीने कमण्डलु देखकर कहा कि इतने जलसे मेरी प्यास शान्त न होगी, मुझे कोई जलाशय बताइये जिससे प्यास बुझे, तब उसने शिष्योंको साथ किया कि इनको तालाब दिखा दो। यथा '**तच्छ्रुत्वा हनुमानाह कमण्डलुजलेन मे। न शाम्यत्यधिका तृष्णा ततो दर्शय मे जलम्॥ तथेत्याज्ञापयामास वटुं मायाविकल्पितम्। वटो दर्शय विस्तीर्णं वायुसूनोर्जलाशयम्॥ निमील्य चाक्षिणी तोयं पीत्वागच्छ ममान्तिकम्। उपदेक्ष्यामि ते मन्त्रं येन द्रक्ष्यसि चौषधिः॥**' (अ० रा० ७। १८—२०) (ख) 'स्नान करके शीघ्र लौट आओ' का भाव कि कहीं जल पीकर उधरहीसे चल न दें (पं०)।* (ग) लौटकर चले आवें इसके लिये ज्ञानप्राप्तिकी दीक्षाका लोभ दिखाया।

नोट—२ *'ज्ञान जेहि पावहु'* इति। कौन ज्ञान? अ० रा०में ओषधिका ज्ञान देनेको कहा। यहाँ केवल 'ज्ञान' शब्द देकर दोनों प्रकारका ज्ञान सूचित किया है—एक तो भूत-भविष्य-वर्तमान आदिका ज्ञान, क्योंकि इसने स्वयं कहा है कि *'ज्ञानदृष्टि बल मोहि अधिकाई'* वही ज्ञान पानेका लालच दिया। जब वह यह कहता है कि विश्राम करो, तुम्हें ओषधि लानेकी जरूरत ही नहीं, कृपादृष्टिसे लक्ष्मणजी जी उठेंगे तब ओषधिके ज्ञानकी जरूरत नहीं। दूसरे, यदि लेने जाना ही है तो वहाँ भ्रम न हो इसलिये ओषधिका ज्ञान भी बतानेको कहता है, जिससे वे अवश्य लौटें। दोनों भाव दरसानेके लिये ही कविने अ० रा० के '**येन द्रक्ष्यसि ओषधिः**' इस पदका ग्रहण नहीं किया। आ० रा० में कपटी मुनिका यह कथन है कि तुम गिरिको देख लोगे और-'**जानामि ज्ञानदृष्ट्याहं लक्ष्मणश्चोत्थितस्त्विति॥ गृहाण मन्त्रान् मत्तस्त्वं यैश्च पश्यसि तं गिरिम्। गोपितं त्वद्य गन्धर्वैर्य तं त्वं नेतुमिच्छसि॥ प्लवंगानां जीवनार्थं लङ्कायां वेगतः कपे। मत्तस्त्वं लब्धविद्यः सन् ददस्व गुरुदक्षिणाम्॥**' (५१—५३)

'अर्थात् ज्ञानदृष्टिसे मैं जानता हूँ कि लक्ष्मणजी उठ बैठे हैं। मुझसे तुम वे मन्त्र लो जिनके द्वारा तुम उस पहाड़को देख सको। जिस बूटीको गन्धर्वोंने छिपा रखा है, तुम जिसे लाना चाहते हो। जिससे हे कपि! तुम वानरोंको जिलानेके लिये उसे जल्द लङ्का ले जाओ। मुझसे तुम विद्या लो और मुझे गुरुदक्षिणा दो।'—(कालनेमिके इसी अन्तिम वाक्यका उत्तर मानसकारके *'गुरु दक्षिना लेहू। पीछे हमहिं मन्त्र तुम्ह देहू॥'* में स्पष्ट किया गया है।)

दो०—सर पैठत कपि पद गहा मकरी तब अकुलान।
मारी सो धरि दिब्य तनु चली गगन चढ़ि जान॥ ५६॥

अर्थ—तालाबमें घुसते ही एक मकरी (मगरनी) ने अकुलाकर (बड़ी शीघ्रतासे) कपिका पैर पकड़ लिया। उन्होंने उसे मार डाला। (तब) वह दिव्य देह धरकर विमानमें चढ़कर आकाशको चल दी॥ ५६॥

नोट—१ *'तब अकुलान'*। अर्थात् 'अकुलानी' इससे कि न जाने कबसे इस शरीरमें पड़ी हूँ वा खानेके लिये (अकुलाकर) शीघ्र दौड़ी। यथा—'**अग्रसत्तं महावेगान्मारुतिं घोररूपिणी।**' (अ० रा० ७। २२) इस तरह *'अकुलान'* में '**महावेगात्**' का भाव भी है। हनुमान्‌जीका कभी किसी विघ्नसे घबड़ा जाना कहीं सुननेमें नहीं आता, इसलिये *'अकुलान'* केवल मकरीके लिये आया है। *'मारी'* अर्थात् मुँह पकड़कर फाड़ डाला। यथा—'**मकरी ज्यों पकरि कै बदन बिदारिये।**' (इति बाहुके), '**तथेति मारुतिर्गत्वा कासारमपिबज्जलम्। पिधाय नेत्रे तावत्तमग्रसन्मकरी तदा॥ सोऽपि तां दारयामास धृत्वास्ये सा ममार ह। ततोऽन्तरिक्षे सा प्राह दिव्यरूपा तु मारुतिम्॥**' (आ० रा० १। ११। ५४-५५) अर्थात् हनुमान्‌जी वहाँ जाकर आँख बंदकर जल पीने लगे, त्यों ही मकरीने एक पैर निगला। हनुमान्‌जीने मुँह पकड़कर चीर डाला तब वह आकाशमें दिव्यरूप होकर बोली। [पाँव पकड़ना कारण, मार डालना कार्य साथ ही हुए। अतः यहाँ 'अक्रमातिशयोक्ति' है] नोट—२ *'दिव्य तन'* अर्थात् पूर्वका अप्सरारूप पाया। इसका नाम धान्यमाली था। यथा—'**धान्यमालीति विख्याताऽप्सराः पूर्वभवान्तरे। आश्रमे यं त्वया दृष्टः कालनेमिर्महासुरः॥**' (आ० रा० १। ११। ५७) दिव्य (देवताओंका-सा) रूप हो वह ब्रह्मलोकको गयी। '**गच्छाम्यहं ब्रह्मलोकं त्वत्स्पर्शाद्धतकल्मषा।**' (अ० रा० ७। २८)

* मा० मु० टी०—भाव कि स्नान करके दीक्षा ले लो तब जल पीना।

कपि तव दरस भइउँ निःपापा। मिटा तात मुनिबर कर सापा॥ १॥
मुनि न होइ यह निसिचर घोरा। मानहु सत्य बचन कपि* मोरा॥ २॥

अर्थ—हे कपि! आपके दर्शनसे मैं पापरहित हो गयी। हे तात! मुनिश्रेष्ठका शाप मिट गया॥ १॥ हे कपि! यह मुनि नहीं है, घोर निशाचर है, आप मेरा वचन सत्य मानें॥ २॥

नोट—१ (क) *'तव दरस भइउँ निःपापा·······'*; यथा—*'संतदरस जिमि पातक टरई।'* इससे जनाया कि मुनिने प्रसन्न हो बताया था कि रामदूत त्रेतायुगमें द्रोण पर्वतपर जायँगे। तब तुझे दर्शन होंगे। उससे तेरा पाप छूटेगा। जब वे तुझे मार डालेंगे तब तेरा शापित शरीर छूटकर तुझे दिव्यरूप प्राप्त होगा। दिव्यरूप अपना पा गयी अतः शापका मिटना कहा। ☞ किस मुनिने शाप दिया यह नहीं बताया। नाम न देना भी अभिप्रायगर्भित है। किस लिये शाप दिया, यह बात आ० रा० १। ११। ५६ में दी है कि मुनिने मुझसे रति माँगा, मैंने न दिया, इसलिये शाप दिया। यथा—'**पुरोऽहं मुनिना स्पृश्या प्रार्थिता न रतिर्मया। दत्ता शप्तास्मि त्वत्तो मे निष्कृतिस्तेन कीर्तिता॥**' 'रति' की याचना मुनिके लिये कलङ्क है, इसीसे उनका नाम न वहाँ दिया न यहाँ।

नोट—२ *'मानहु सत्य बचन'* कहा क्योंकि न माननेका कारण उपस्थित था कि वह मकरीसे अप्सरा हो गयी, दूसरे वह स्त्री है, स्त्रियोंकी बातपर लोग विश्वास कम करते हैं। (पं०)

वि० त्रि०—कालनेमिने मुनि बनकर ऐसी माया फैलायी कि *'गोमुखव्याघ्रोका न्याय'* देखनेवाले हनुमान्‌जी उसकी मायामें आ गये (यथा—*'अरुण मुख भ्रूविकट पिंगल नयन रोष कषाय। देखिहैं हनुमान गोमुख नाहरनि के न्याय'*) हनुमान्‌जीको साधु जानकर वह मुनि बना। रामगुणगाथाका रसिक जानकर उन्हें देर लगानेके लिये रामगुणगाथा कहने लगा, फिर अपने ज्ञानदृष्टिका महत्त्व बतलाया कि जो लड़ाई लङ्कामें हो रही है, वह मैं यहाँ बैठे देख रहा हूँ। रामजीकी विजय निश्चित है, कोई त्वरा नहीं है। तुम्हें इतने दिन रामजीकी सेवा करते हुआ पर ज्ञानदृष्टि नहीं हुई, जाओ तालाबमें स्नान करके आओ, मैं दीक्षा दूँ, और ऐसी शक्तिपात कर दूँ कि तुम्हें भी ज्ञान हो जाय। हनुमान्‌जी मान गये, और नहाने आये।

मकरी उनके दर्शनसे निष्पाप हुई, मुनिजीका शाप मिटा, अतः कृतज्ञ हृदयसे हनुमान्‌जीको सावधान करती हुई कहती है कि जिसपर आपको इतनी श्रद्धा है वह मुनि नहीं है, घोर निशाचर है। आप उसके वचनको सत्य न मानिये, वह तो आपको ठगने आया है, मेरे वचनको सत्य मानिये। मैं आपसे उपकृत हूँ, मैं असत्य नहीं कह सकती। मेरे लिये स्वर्गसे विमान आया है, मिथ्या कहनेसे मेरी गति स्वर्गमें नहीं हो सकती।

अस कहि गई अपछरा जबहीं। निसिचर निकट गएउ कपि तबहीं॥ ३॥
कह कपि मुनि गुरदछिना लेहू। पाछे हमहि मंत्र तुम्ह देहू॥ ४॥

अर्थ—ऐसा कहकर ज्यों ही वह अप्सरा गयी त्यों ही कपि निशिचरके पास गये॥ ३॥ कपि उससे बोले—हे मुनि! पहिले गुरुदक्षिणा लीजिये तब उसके पश्चात् हमें आप मन्त्र दीजिये॥ ४॥

नोट—१ *'निसिचर निकट गएउ·······'*। अप्सराने कहा था कि *'वह निसिचर घोरा'*। *'मानहु सत्य·······'।* अब यहाँ *'निसिचर'* पद देकर जनाया कि हनुमान्‌जीने बात सत्य मान ली नहीं तो 'मुनिवर' पद देते।

नोट—२ *'गुरुदक्षिना लेहू'*-५६ (८) देखिये। रामायणोंमें मुष्टिका मारना कहा है। इसके बाद अ० रा० में युद्ध कहा है। यथा—'**इत्युक्त्वा सा ययौ स्वर्गं हनूमानप्यथाश्रमम्॥ युयुधे वायुपुत्रेण नाना माया विधानतः। महामायिकदूतोऽसौ हनुमान्मायिनां रिपुः॥**' (अ० रा० ७। ३२। ३८-३९) '**मुष्टिं बध्वा दृढां घोरां गृहाण गुरुदक्षिणाम्। इत्युक्त्वा ताडयामास हृदि तं मुष्टिना तदा॥**' (आ० रा० १। ११) इससे ज्ञात होता है कि प्रथम मुष्टिका उठायी मानो मुट्ठीमें दक्षिणा लिये हैं, वह यही समझा कि सत्य ही दक्षिणा देते हैं। जब घूँसा लगा तब लड़ने लगा। अन्तमें लांगूलमें लपेटकर पटक दिया गया। मन्त्रोपदेश कारण है और गुरुदक्षिणा कार्य है। कारणसे पहिले कार्यका प्रकट होना 'अत्यन्तातिशयोक्ति अलङ्कार' है। (वीर)

* प्रभु—(का०), कपि—(भा० दा०)।

पं०—हनुमान्‌जीने उसके आश्रमपर विश्राम किया और उससे रामचरित सुना, यह उपकार मानकर उसे 'मुनि' सम्बोधन किया; क्योंकि संत कृतज्ञ होते हैं और उसको सद्‌गति देनी है इस विचारसे गुरुदक्षिणा अर्थात् मुक्तिरूपिणी बड़ी भारी दक्षिणा देनेको कहा जिसे पाकर फिर इच्छा न रह जाय। जो कहा कि मन्त्र पीछे देना सो अन्तकालमें महामन्त्र रामनाम उसने इनको सुनाया ही है।

सि० ति०—जब हनुमान्‌जीने जल माँगा तब उसने अपने कमण्डलुका जल देना चाहा। जब उन्होंने नहीं लिया तब उसने समझा कि वैष्णव साधु अपने ही कमण्डलुका जल शुद्ध मानते हैं, इससे देह-भेदकी दृष्टिसे इन्होंने नहीं लिया, तब उसने कहा कि तुम्हें अभी ब्रह्मज्ञान नहीं है। वह शुष्क ज्ञानी मुनि बना था, जिसमें साधक वाक्य-ज्ञानमात्रसे जीवन्मुक्त होकर अपनेको ब्रह्म मानने लगते हैं और फिर किसीमें देह-भेद नहीं रखते। यथा *'जे ब्रह्ममय देखत रहे।'* इस ज्ञानदीक्षाके पश्चात् गुरु-शिष्य भाव नहीं रह जाता। इसलिये गुरुदक्षिणा पहले ही देना योग्य है। इस दृष्टिसे श्रीहनुमान्‌जी उसे पहले ही गुरुदक्षिणा देनेको कहते हैं।

सिर लंगूर लपेटि पछारा। निज तनु प्रगटेसि मरती बारा॥ ५॥
राम राम कहि छाँड़ेसि प्राना। सुनि मन हरषि चलेउ हनुमाना॥ ६॥

शब्दार्थ—**लंगूर** (सं० लांगूल)=बन्दरकी पूँछ वा दुम। पछारना (पछाड़ना)=पटकना।

अर्थ—उसका सिर पूँछमें लपेटकर उसको पछाड़ दिया। मरते समय उसने अपना (राक्षसी) शरीर प्रकट किया॥ ५॥ राम-राम कहकर प्राण छोड़े, यह सुनकर हनुमान्‌जी मनमें प्रसन्न होकर चल दिये॥ ६॥

नोट—१ क्या गुरुदक्षिणा दी यह प्रथम चरणमें कहा।

पु० रा० कु०—*'सिर लंगूर लपेटि पछारा'* इस पदसे परस्पर युद्धका होना पाया जाता है। ५७ (४) देखिये।

नोट—२ *'निज तन प्रगटेसि मरती बारा'* इति। कपटी शरीर छोड़नेसे छल-रहित हो गया। जबतक कपट रहता है, मुक्ति नहीं हो सकती इसीसे कपट-शरीरका त्याग कहा। मारीचने भी *'प्रान तजत प्रगटेसि निज देहा॥'* (३। २७। १६)

☞*'राम राम कहि……।'* इति। सब जानते हैं कि मरते समय राम-नाम मुँहसे निकले तो मुक्तिमें संदेह नहीं=*'जाकर नाम मरत मुख आवा। अधमौ मुकुत होइ श्रुति गावा॥'* (आ० ३१) इसीसे कविने मुक्ति प्रकट न लिखी। मारीचने मनमें स्मरण किया था। वहाँ संदेह हो सकता था कि उस कपटीकी मुक्ति हुई या नहीं, इसीसे वहाँ कविने प्रकट लिखा कि प्रभुने उसे मुक्ति दी। उसकी मुक्तिपर देवगण प्रसन्न हुए और यहाँ कालनेमिकी मुक्तिपर हनुमान्‌जी प्रसन्न हुए।

नोट—३ *'सुनि मन हरषि चलेउ……।'* इति। (क) रामनाम उसके मुखसे सुननेपर प्रसन्न हुए। (ख) भाव कि यद्यपि अप्सरासे सुना था कि यह राक्षस है और उसकी बात मानकर इसे मारा भी था तथापि मनमें शंकित थे। जब उसने अपना राक्षसतन प्रकट किया तब प्रसन्न हुए। वह शंका मिट गयी। रामनाम उसके मुखसे निकला जिससे मुक्ति निश्चय हुई। अतः प्रसन्न हुए। वा, पयान समय मङ्गल जानकर हर्ष हुआ। वा, विघ्न निवृत्त होनेसे हर्ष हुआ। (पं०)

गौड़जी—इस प्रसङ्गमें यह शङ्का की जा सकती है कि भगवान् मारुतिने रामचरित बखाननेवाले मुनिवेषधारीको मारा, यह काम रामचरितके रसिया हनुमान्‌जीसे उचित नहीं जान पड़ता। परंतु इसका समाधान यह है कि कालनेमिने चरितकी ओट लेकर चरितको ही नष्ट-भ्रष्ट करना चाहा। कालनेमिकी मायाके लिये जो सर्वथा छल और असत्य थी राम-चरित अधिष्ठान बनाया गया। मायावी कालनेमि चरितके पर्देमें छिपा था। उसने इतना ही नहीं किया था। बाधा डालनेको हनुमान्‌जीको श्रमित और प्यासा बना दिया। मकरीद्वारा और अपने वाक्छलोंसे भी रोक रखना चाहा। इस मायाका पता जब मकरीसे लगा, तब हनुमान्‌जीके मनपरसे मायाका परदा हट गया। उस छलीको उन्होंने रामविरोधीके नाते मार डाला, रामगुणगायकके नाते नहीं, गुणगायकके

नाते नामोच्चारणके पूर्व उसकी गति हो गयी। इसपर तो वह हर्षित हुए। मकरीके पद गहनेमें भी दोनों बातें हुईं। उसने रोकनेके लिये पाँव पकड़े, पर भागवतके चरणोंको पकड़नेका फल उसकी सद्‌गति हुई।

कालनेमि और मारीचका मिलान

कालनेमि	मारीच
१ *रावन कालनेमि गृह आवा*	*दसमुख गयउ जहाँ मारीचा*
२ *दसमुख कहा मरम*	*दसमुख सकल कथा तेहि आगे। कही*.........।
३ *पुनि पुनि कालनेमि सिर धुना*	*तेहि पुनि कहा सुनहु दससीसा*
४ *महामोह-निसि सूतत जागू॥ नीलकंज तनु सुंदर स्यामा। हृदय राखु लोचनाभिरामा॥*	*ते नररूप चराचर ईसा। जेहि ताड़का सुबाहु हति खंडेउ हर कोदंड। खरदूषन त्रिसिरा बधेउ मनुज कि अस बरिबंड॥*
५ *काल-ब्याल कर भक्षक जोई। सपनेहु समर कि जीतिय सोई॥*	*तासों तात बयरु नहिं कीजै। मारे मरिय जियाये जीजै॥ तिन्हहिं बिरोधि न आइहि पूरा।*
६ *भजि रघुपति करु हित आपना*	*जाहु भवन कुल कुसल बिचारी*
७ *देखत तुम्हहिं नगरु जेहि जारा*	*बिनु फर सर रघुपति मोहि मारा। सत योजन*..........।
८ *तासु पंथ को रोकनिहारा*	*तिन्हहिं बिरोधि न आइहि पूरा*
९ *सुनि दसकंठ रिसान अति*	*सुनत जरा दीन्हेसि बहु गारी*
१० *तेहि मन कीन्ह बिचार*	*तब मारीच हृदय अनुमाना*
११ *रामदूत कर मरौं बरु*	*उतरु देत मोहि बधब अभागे।*
१२ *यह खल रत मलभार*	*कस न मरउँ रघुपति सर लागे॥*
१३ *अस कहि चला*	*अस जिय जानि दसानन संगा। चला*.........।
१४ *रचिसि मग माया। सर मंदिर*.........।	*तब मारीच कपट मृग भएऊ*
१५ *मारुत सुत देखा। सुभ आश्रम*।.........।	*सीता परम रुचिर मृग देखा*
१६ *मायापति दूतहि चह मोहा*	*प्रभुहि बिलोकि चला मृग भाजी।*
१७ *'लाग सो कहै रामगुनगाथा'* से *'दिक्षा देउँ ज्ञान जेहि पावहु'* तक	*प्रगटत दुरत करत छल भूरी।*.........'
	लछिमन कर प्रथमहि लेइ नामा
१८ *सिर लंगूर लपेटि पछारा*	*तब तकि राम कठिन सर मारा*
१९ *निज तन प्रगटेसि मरती बारा*	*प्रान तजत प्रगटेसि निज देहा।*
२० *राम राम कहि छाड़ेसि प्राना*	*सुमिरेसि राम समेत सनेहा॥*
२१ *सुनि मन हरष चलेउ हनुमाना*	*बिपुल सुमन सुर बर्षहिं*

प० प० प्र०—इस प्रकरणमें प्रयुक्त शब्दकला—प्रथम *'जाहु पवनसुत लेन'* से जनाया कि पवित्र कार्य करनेके लिये जाओ। *'चला प्रभंजनसुत'* से जनाया कि तूफानी हवाके समान अति वेगसे चले और भंजनका कार्य विशेष करेंगे। *'मारुतसुत देखा.........'* के मारुत (=जिसके बिना, एवं जिसके बढ़नेसे मृत्यु होती है=प्राणवायु) शब्दसे सूचित किया कि मार्गमें मारनेका कार्य करेंगे।*'जाइ पवनसुत नायउ माथा'* यहाँ पुनः *'पवनसुत'* शब्द देकर जनाया कि अब इस शुभ आश्रमको देखकर उनकी प्रभंजन गति और मारना इत्यादि कार्यकी इच्छा न रह गयी। शुभ आश्रममें पावनताका ही कार्य उचित है, पावनताकी उत्पत्ति करेंगे। *'कह कपि नहि अघाउँ थोरे जल'*—अब याचना करनेसे महत्त्व घट गया, अथवा उसे मुनि समझकर अपनी सब बड़ाई भूल गये। अतः *'कपि'* ही रह गये। आगे दोहे और चार अर्धालियोंमें सब मिलकर पाँच बार *'कपि'* शब्द आया है। इससे जनाया कि आगे सब व्यवहार कपिका-सा ही किया है। *'सुनि मन हरषि चलेउ हनुमाना'* के हनुमान् शब्दसे जनाया कि कुछ अद्भुत बल-बुद्धिका कार्य करेंगे। आगे दोहा ६० तक ११ बार कपि (एक

बार कीश) शब्द ही प्रयुक्त हुआ है। पर इसमें जब *'जय जयति कोसलाधीसा'* कहा तब *'कपीसा'* देकर जनाया कि सामान्य कपि नहीं है, कोई बड़ा रामभक्त है। जब भरतजीके *'बंदि चरन कर जोरी'* चलते हैं तब 'हनुमंत' शब्द देकर जनाया कि *'जैहौं नाथ तुरंत'* यह अद्भुत कार्य करेंगे। आगे भी अद्भुत कार्य करके आनेसे *'आइ गयउ हनुमान'*, *'हरषि राम भेटेउ हनुमाना'* कहा है।

देखा सैल न औषध चीन्हा। सहसा कपि उपारि गिरि लीन्हा॥ ७॥
गहि गिरि निसि नभ धावत भएऊ। अवधपुरी ऊपर कपि गएऊ॥ ८॥

शब्दार्थ—**सहसा**=एकदमसे, एकाएक।

अर्थ—(जाकर) पर्वत देखा पर ओषधि न पहचान सके। तब हनुमान्‌जीने एकदमसे पर्वत ही उखाड़ लिया॥ ७॥ पर्वत लेकर रातहीमें आकाश मार्गमें दौड़ते हुए हनुमान्‌जी अवधपुरीके ऊपर गये॥ ८॥

नोट—१ *'देखा सैल'* कहकर जना दिया कि कालनेमिको मारकर तुरंत वे चले और बहुत शीघ्र द्रोणाचलपर पहुँच गये। कवि अपने अक्षरोंसे शीघ्रता दिखा रहे हैं।

नोट—२ *'न औषध चीन्हा'* इति। ओषधि न पहिचाननेका कारण यह था कि हनुमान्‌जीको देखकर वे अदृश्य हो गयीं, यद्यपि प्रथम वे अति दीप्तिमान् देख पड़ी थीं। यथा—'**प्रदीप्तसर्वौषधिसंप्रदीप्तं ददर्श सर्वौषधिपर्वतेन्द्रम्॥ स तं समीक्ष्यानलराशिदीप्तं विसिस्मिये वासवदूतसूनुः। आप्लुत्य तं चौषधिपर्वतेन्द्रं तत्रौषधीनां विचयं चकार॥**', '**महौषध्यस्ततः सर्वास्तस्मिन्पर्वतसत्तमे। विज्ञायार्थिनं मायां तं ततो जग्मुरदर्शनम्॥**' (वाल्मी० ६। ७४। ६१-६२, ६४) पुनश्च '**अदृष्ट्वा चौषधीस्तत्र गिरिमुत्पाट्य सत्वरः॥**' (अ० रा० ७। ३४) 'अर्थात् सब ओषधियोंसे युक्त सर्वौषधिपर्वतश्रेष्ठको देखा। अग्निवत् प्रकाशित देख हनुमान्‌जी विस्मित हो पर्वतपर कूदकर ओषधि ढूँढ़ने लगे। इनको अर्थी समझ सब ओषधियाँ अदृश्य हो गयीं। ओषधियाँ न देखनेपर उन्होंने तुरंत पर्वत उखाड़ लिया। न पहिचाना, अतः पर्वतशिखर ही उखाड़ लिया कि वैद्य स्वयं पहिचान लेंगे। '**ओषधीर्नावगच्छामि ता अहं हरिपुंगव। तदिदं शिखरं कृत्स्नं गिरेस्तस्याहृतं मया॥**' (वाल्मी० १०१। ४१; हनुमत्वाक्य सुषेणप्रति)। हे वानरश्रेष्ठ! मैं ओषधिको नहीं पहचानता इसलिये ओषधिके सारे शिखरको मैं लाया हूँ। यह मत वाल्मी० एवं अ० रा० का हुआ। गीतावलीका मत यह जान पड़ता है कि सभी ओषधियाँ दिव्य थीं, सभी चमक रही थीं, इससे न पहिचान सके। यथा—*'कालनेमि दलि बेगि बिलोक्यौ द्रोनाचल जिय जानि। देखी दिव्यौषधि जहँ तहँ जरी न परी पहिचानि॥ लियो उठाइ कुधर कंदुक ज्यों बेगि न जाइ बखानि। ज्यौं धाए गजराज उधारन सपदि सुदरसनपानि॥'*

'देखी दिव्यौषधी' का अर्थ बैजनाथजी और बाबा हरिहरप्रसादजी आदिने यही किया है कि वे सब अत्यन्त प्रकाशित थीं (आसुरी मायासे-रा० प्र०) इसीसे भ्रम हुआ। यदि इसका अर्थ केवल यह लें कि दिव्य संजीवनी आदि ओषधियोंको जहाँ-तहाँ ढूँढ़ा, तो वाल्मी० से विरोध मिट जाता है, परंतु हनु० ना० का मत रा० प्र० और बैजनाथजीके अर्थका पोषक है। वहाँ भी यही उल्लेख है कि 'चन्द्रमाके समान प्रकाशमान देवदारुके सदृश किरणोंवाली रत्नरूप बूटियोंको देखकर भ्रमण करके वह वीर भुजाओंसे पर्वतको ही उखाड़ने लगे। यथा—(*तत्र द्रोणाद्रिशिखरे*) **हनुमान्—दृष्ट्वा सर्वास्तुहिनकिरणोद्यत्प्रभास्तत्र शैले वल्ली रत्नान्यमरखदिराङ्गारभास्वन्ति वीरः। भ्रान्त्वा दोर्भ्यां गिरिमुदहरन्नुत्पपातैष**·········॥' (हनु० १३। २३) पंजाबीजी लिखते हैं कि हनुमान्‌जीको देखकर रावणकी आज्ञासे द्रोणगिरिने सारा वन देदीप्यमान कर दिया; सुषेणने जो चिह्न बताया था वह कृत्रिम प्रकाशसे ढक गया। यही मत पं० शिवलाल पाठकका है। पर कोई प्रमाण दोनोंमेंसे किसीने नहीं दिया है। कविने सबके मतोंकी रक्षाके लिये *'न औषध चीन्हा'* ही कहा।

'अवधपुरी ऊपर गएऊ'

अवधपुरीमें जानेका हेतु यह जान पड़ता है कि लक्ष्मणजीके मूर्छित होनेपर भगवान्‌ने शोकातुर हो जब यह कहा कि हनुमान्‌के रहते हुए भी तुम (लक्ष्मण) पर यह आपत्ति आयी, यदि हमारे भाई भरत

यहाँ होते तो वे अवश्य तुम्हारी रक्षा करते, यथा—'**गोपायतीह भरतस्तु ममानुजः किं यस्त्वामधिज्यधनुरुद्धत-शक्तिपातात्।**' (हनु० १३। ११)

'*भरत-बाहुबल*' की प्रशंसा सुनकर हनुमान्‌जीको गर्व हुआ। उनके चित्तमें भरतजीके बलकी परीक्षाका भाव उठा। ५९ (५-६) देखिये। अतएव सर्वज्ञ, सर्वउरवासी प्रभुने उन्हें आज्ञा दी कि कोसलपुरका समाचार लेते आना। यथा—'**ध्यात्वात्मानं प्रणम्य प्रभुमवनिसुतावल्लभं तस्य वाक्यं, नीत्वाऽयोध्यां गमिष्यस्यखिलकुशलतामानयिष्यस्यपीति॥ चण्डोड्डीनं चकार द्रुतम्**.........॥' (१३। २१) अर्थात् अपनी आत्माका ध्यान करके भूमिसुतावल्लभ अपने प्रभुको प्रणाम करके उनके इस वाक्यको स्वीकार करके कि 'तुम अयोध्याजी जाकर सबकी कुशल लाओ' बड़े प्रचंड वेगसे उड़े। पुनः, '*भरत की कुशल अचल लै आएउ चलिकै।*' (क०) वहाँ जानेपर इनका अभिमान दूर हुआ। —प्रभुकी प्रतिज्ञा है कि वे भक्तमें अभिमानका अंकुर बढ़ने नहीं देते—'*उर अंकुरेउ गर्व तरु भारी। बेगि सो मैं डारिहउँ उपारी॥*' प्र० स्वामीका मत है कि परीक्षाके लिये अवधपुरी जानेकी बात अनुचित है।

दो०—देखा भरत बिसाल अति निसिचर मन अनुमानि।
बिनु फर सायक मारेउ चाप श्रवन लगि तानि॥५७॥

अर्थ—भरतजीने अत्यन्त विशालस्वरूप आकाशमें देखा। मनमें यह अनुमान करके कि यह कोई बड़ा विशाल निशिचर है, उन्होंने कानपर्यन्त धनुषकी प्रत्यंचा तानकर बिना फरका एक बाण मारा॥ ५७॥

नोट—१ (क) एक तो हनुमान्‌जी स्वयं विशालस्वरूप धारण किये हैं दूसरे द्रोणगिरि लिये हैं, अतः '*अति विशाल*' स्वरूप है। (ख) '*देखा भरत*' इति। अर्धरात्रिमें और अवधपुरीमें (नंदिग्राममें नहीं) भरतजीने देखा। यह कहकर जनाया कि भरतजी उस समय बाहर बैठे थे। हनु० १३। २२, २४। से यह प्रसंग और उसका कारण स्पष्ट हो जाता है।

यथा—'.........**जननी लक्ष्मणस्योपलभ्य।**'

'**स्वप्ने व्यालः समूलं कवलयति भुजं वाममुत्तस्थुषीति॥**' (२१)
'**प्रोवाच कोसलसुतापुरतोऽद्भुतं सा स्वप्नं च सा मुनिवसिष्ठपुरोहितस्य।**
पार्श्वे नियोज्य सशरं धनुरादधानं शान्तिं चकार भरतं मुनिराज्यहोमैः॥
(तत्रायोध्यायां शान्तिमण्डपे कुण्डसमीपस्थौ भरतवसिष्ठौ)
हुत्वा श्रीखण्डकाण्डं सतगरकुसुमं पुण्डरीकं मृणालं
कर्पूरोशीरगर्भं प्रचुरघृतयुतं नारिकेलं जुहाव।
तूर्णं पूर्णाहुतिं स ज्वलदनलनिभं शैलमादाय वीरः
प्राप्तस्तत्राञ्जनेयः स किमिति भरतस्तं शरेणाजघान॥' (२४)

अर्थात् उसी समय सुमित्राजीने स्वप्न देखा कि मेरी सारी बायीं भुजाको सर्प निगल रहा है। यह स्वप्न देख वे उठ बैठीं। उन्होंने यह अद्भुत स्वप्न कौसल्याजीको सुनाया, कौसल्याजीने पुरोहित वसिष्ठको। वसिष्ठजीने धनुर्बाण धारण कराके भरतजीको बिठाकर घृतके होमके द्वारा शान्ति करायी। तगर और फूलोंसमेत चन्दन, कमल, कमलनाल, कपूर, खस और बहुत-से घीसे भरे हुए नारियलसे पूर्णाहुति दे रहे थे, उस समय बड़े वेगसे जलती हुई अग्निकी तरह दीप्तिमान् पर्वतको लिये वहाँ हनुमान्‌जी मौजूद हो गये। भरतजीको शंका हुई कि, (दुःस्वप्नका मूल यही न हो। कोई निशिचर होगा। वह पर्वत अवधपुरीपर डालने न आया हो) यह क्या है और उन्होंने बाण मारा। २—'*बिनु फर सायक मारेउ*'। क्योंकि—(क) अभी अनुमानमात्र था। धोखेसे कोई और न मारा जाय। (ख) मारना नहीं है, शिथिल करके गिरा देना है। इसी प्रकार रामचन्द्रजीने मारीचको विश्वामित्रयज्ञके समय बिना फरका बाण मारा था जिसमें विघ्न शान्त हो जाय, उसे बल मालूम हो जाय और उसके प्राण बचे रहें। '*बिनु फर बान राम तेहि मारा*.........'। (ग) हनुमान्‌जी परीक्षा लेने आये हैं। अतः बिना फरके बाणका बल (रामजीकी प्रेरणासे) उनको दिखाया गया। (घ) होम समय हिंसा

करना शास्त्रवर्जित है। पर कोई यह भी कहते हैं कि सात्त्विक यज्ञ रात्रिमें नहीं होता, अतः बाण मारनेमें दोष नहीं है। उपर्युक्त उद्धरणसे स्पष्ट है कि भरतजीको रक्षाके लिये त्रिकालज्ञ वसिष्ठजीने धनुषबाणसहित अपने समीप बिठाया था, होम पूरा हो चुका था, अन्तिम पूर्णाहुति दी जा रही थी। दोनों प्रकार बाणका चलाना अविहित नहीं है। आगे मूर्च्छित होनेपर उनके पास दौड़कर जाना भी इन भावोंको पुष्ट करता है।

परेउ मुरुछि महि लागत सायक। सुमिरत राम राम रघुनायक॥ १॥
सुनि प्रिय बचन भरतु तब धाए। कपि समीप अति आतुर आए॥ २॥

अर्थ—बाण लगते ही मूर्च्छित होकर हनुमान्‌जी *'राम राम रघुनायक'* का स्मरण करते हुए पृथ्वीपर गिर पड़े॥ १॥ तब ये प्रिय वचन सुनकर भरतजी उठ दौड़े और बड़ी उतावलीसे कपिके पास आये॥ २॥

नोट—१ (क) *'परेउ मुरुछि.........'* यह भरतजीका बल और बिना फलके बाणका प्रताप दिखाया जैसे *'बान प्रताप जान मारीचा'* से श्रीरामजीके *'बिनु फर सायक'* का प्रताप दिखाया है।

मिलान कीजिये—'**(तदा भरतबाणेन भिन्नो हनुमान्भरतदोर्दण्डमुक्तकाण्डप्रचण्डप्रहारमूर्च्छितो विधिलिखिताक्षर-पंक्तिलोपात्प्राणान्परित्यक्तुमिच्छन्) पुंखावशेषभरतेषु ललाटपट्टो हा राम लक्ष्मण कुतोऽहमिति ब्रुवाणः। संमूर्च्छितो भुवि पपात गिरिं दधानो लांगूलशेखररुहेण सकेसरेण॥**' (हनु० १३। २५) अर्थात् उस समय भरतजीके बाणसे घायल होकर हनुमान्‌जी भरतजीके भुजदण्डोंसे युक्त हुए धनुषके प्रचण्ड प्रहारसे मूर्च्छित हो गये और प्रारब्धके लिखे हुए अक्षर-पंक्तिके नाशसे प्राण त्यागनेकी इच्छा करने लगे। पुंखमात्र शेष बचे हुए भरतजीके बाणसे ललाटपटमें बँधे हुए हनुमान्‌जी, 'हा राम! हा लक्ष्मण! मैं कहाँ हूँ', यह कहते हुए, केसरसहित लांगूलके अग्रभागमें द्रोणाचलको धारण करते हुए, मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़े। (ख) *'सुमिरत राम राम रघुनायक'* से रघुनाथजीका भक्त जनाया, जिससे भरतजीने उन्हें भाईका स्नेही जाना। *'भरत तब धाए'* से होमकी पूर्ति, रामभक्तमें परम प्रेम और भरतजीकी अत्यन्त आर्त्तता एवं आतुरता कही।

'सुनि प्रिय बचन' इति। *'राम राम रघुनायक'* ये प्रिय वचन हैं; इन्हें भरतजी स्वयं जपते हैं, यथा—*'राम राम रघुपति जपत स्त्रवत नयन जलजात'*—(उ० १)। (ख) *'अति आतुर'* अर्थात् वशभर जितनी शीघ्रता उनसे हो सकती थी उतनी जल्दी आये। *'आतुर'* के यहाँ शीघ्र और व्याकुल दोनों अर्थ हैं। शोक यह है कि एक रामभक्त मेरे हाथसे निरपराध मारा गया, इसीसे बड़ी उतावलीसे दौड़ आये।

☞ हनुमान्‌जी गिरे तो पर्वत कहाँ गया, इसके विषयमें गीतावलीमें पवनदेवताका उसे धारण करना लिखा है, यथा—*'कौतुक ही कपि कुधर लियो है। चल्यो नभ नाइ माथ रघुनाथहि सरिस न बेग बियो है॥ देख्यो जात जानि निसिचर बिनु फर सर हयो हियो है। पर्यो कहि राम पवन राख्यो गिरि पुर तेहि तेज पियो है॥'* (लं० १०)

अर्थात् बाणने उनका सब तेज पी लिया (हर लिया), वे 'हा राम!' कहते हुए गिर पड़े, तब पवनने पर्वतको थाम लिया। हनु० ना० में लांगूलके अग्रभागपर पर्वतका रुकना कहा है। दोनोंका एकीकरण इस प्रकार हो सकता है कि लांगूलपर जो पर्वत था उसको पवनदेव अदृश्यरूपसे आकाशमें रोके रहे। कहीं किसीने यह भी लिखा है कि भरतजीके बाणपर वह पर्वत स्थित रहा। भरतजीने यह सोचकर कि पर्वत लेकर अवधपर डालनेके लिये कोई निशिचर आ रहा है, ऐसा बाण चलाया कि हनुमान्‌जीको उसने मूर्च्छित कर दिया और पर्वतको भी आकाशमें ही रोक लिया, गिरने न दिया। बं० पा० जी लिखते हैं कि पवनने अपने चक्रसे उसे घुमाकर थाम रखा।

बिकल बिलोकि कीस उर लावा। जागत नहिं बहु भाँति जगावा॥ ३॥
मुख मलीन मन भ*एउ दुखारी। कहत बचन भरि† लोचन बारी॥ ४॥

शब्दार्थ—जागना=सावधान वा चैतन्य होना। जगाना=होशमें लाना, फिरसे ठीकसे स्थितिमें लाना।

* भये (का)०। † लोचन भरि—(का०)।

अर्थ—वानरको व्याकुल देखकर उन्होंने उसे हृदयसे लगा लिया और बहुत तरह उन्हें जगा रहे हैं पर वह होशमें नहीं आता॥ ३॥ तब भरतजीका मुख मलिन (उदास) हो गया, वे मनमें बड़े दुखी हुए, आखोंमें आँसू भरकर वे ये वचन बोले॥ ४॥

नोट—१ *'कीस उर लावा'* से रामभक्तमें प्रेम और अपने अपराधका विचार प्रकट किया। नोट—२ *'बहु भाँति जगावा'*। मुखपर जलकी छीटें देना, ओषधि सुँघाना, सिरपर हाथ फेरना इत्यादि उपाय जो आयुर्वेद आदिमें बताये हैं। नोट—३ *'मुख मलीन मन भएउ दुखारी'* यह समझकर कि हमसे बड़ा भारी भगवत्भागवतापराध हुआ, उनकी व्याकुल दशा और मूर्छारहित न होते हुए देख हृदयमें विषाद हुआ, हृदय दग्ध हो रहा है; इसीसे मुखपर उदासी छा गयी और वे दीन वचन बोले, यथा—*'हृदय दाहु अति बदन मलीना। कह कर जोरि बचन अति दीना॥'* (अ० ९४) नोट—४ *'मुख मलीन', 'मन दुखारी'* और *'कहत बचन भरि लोचन बारी'* कहकर उनको तन, मन, वचनसे दुखी दिखाया। ये सब शोकके चिह्न हैं। यथा—*'भएउ प्रेमबस हृदय बिषादू॥ तन पुलकित जल लोचन बहई'* (अ० ९०)

जेहिं बिधि रामबिमुख मोहि कीन्हा। तेहिं पुनि यह दारुन दुख दीन्हा॥५॥
जौं मोरे मन बच अरु काया। प्रीति रामपद कमल अमाया॥६॥
तौ कपि होउ बिगत श्रम सूला। जौं मोपर रघुपति अनुकूला॥७॥
सुनत बचन उठि बैठ कपीसा। कहि जय जयति कोसलाधीसा॥८॥

शब्दार्थ—**बिधि**=दैव। **'दैवं दिष्टं भागधेयं भाग्यं स्त्रीनियतिर्विधिः।'** (इत्यमरः) **दारुण**=असह्य, छाती फाड़नेवाला, कठिन।

अर्थ—जिस विधाताने मुझे रामविमुख किया उसीने फिर यह कठिन दुःख दिया॥ ५॥ यदि मन, वचन और तनसे मेरा श्रीराम-चरणकमलमें निष्कपट प्रेम हो॥ ६॥ यदि श्रीरघुनाथजी मुझपर प्रसन्न हों, तो यह वानर श्रम और पीड़ासे रहित हो जावे॥ ७॥ यह वचन सुनते ही कपिराजकी हनुमान्‌जी 'कोशलपतिकी जय हो, जय हो' यह कहते हुए उठ बैठे॥ ८॥

नोट—१ *'दारुण दुख'* 'भागवत-बधरूपी बड़ा लाञ्छन लगा'। *'रामबिमुख कीन्हा'* अर्थात् श्रीरामजीसे वियोग कराया। (पं०)। नोट—२ ☞विधिको दूषण दिया क्योंकि सरस्वतीद्वारा मति फेरी गयी थी, यथा—*'कीन्हि मातु मिस काल कुचाली'*। यही बात श्रीरघुनाथजीसे उन्होंने कही थी। यथा—*'बिधि न सकेउ सहि मोर दुलारा। नीच बीच जननी मिस पारा॥'* (अ० २६१)

नोट—३ *'जौं मोरे मन बच अरु काया।.........'* इति। (क) रा० प्र०—जब सब उपाय करके हार गये और मूर्च्छा न गयी तब अपने निश्चयपर श्रीरामजीकी शरण गये, अमोघ शपथहीको एकमात्र जीवनदानका उपाय निश्चित किया। (ख) *'जौं मोरे'* यह शपथकी रीति है, यथा—

श्रीसीताजी—*'जौं मन बच क्रम मम उर माहीं। तजि रघुबीर आन गति नाहीं॥'* (१०८। ७)
श्रीलक्ष्मणजी—*'जौं तेहि आजु बधे बिनु आवउँ। तौ रघुपति सेवक न कहावउँ॥'* (७४। १३)
,, *'जौं सत संकर करहिं सहाई। तदपि हतौं रघुबीर दोहाई॥'* (७४। १४)
,, *'जौं सहाय कर संकर आई। तौ मारउँ रन राम दोहाई॥'* (अ० २३०। ८)
,, *'जौं न करौं प्रभुपद सपथ कर न धरौं धनु भाथ॥'* (१। २५३) इत्यादि।
तथा यहाँ—*'जौं मोरे मन बच अरु काया', 'जौं मोपर रघुपति अनुकूला।'*

☞भक्त अपने भजनका गर्व कदापि नहीं करते चाहे वे कैसे ही अद्वितीय भक्त क्यों न हों। गर्व आया कि गिरे। भक्त अपनेको सदा भक्तिहीन ही समझता है। इसीसे तो भगवान् शङ्कर ऐसे भक्त कि *'सेवक स्वामि सखा सिय पी के'* होकर भी बारंबार भक्तिका वर माँगते ही रहते हैं। अतः *'जौं'* संदिग्ध वचनका प्रयोग उचित है।

नोट—४ *'तौ कपि होउ बिगत श्रम सूला'* दीपदेहरी है। *'जौं मोपर रघुपति अनुकूला'* यह दूसरी शपथ है। पूर्व (अयोध्याकाण्डमें) चित्रकूटमें रघुनाथजीकी अनुकूलता और कृपा अपने ऊपर देख चुके हैं, यथा—*'देखेउँ पाय सुमंगल मूला। जानेउँ स्वामि सहज अनुकूला॥ कृपा अनुग्रह अंग अघाई। कीन्हि कृपानिधि सब अधिकाई॥'* (२। ३००। ३। ५) फिर भी डरते हैं, अतः प्रभुकी अनुकूलताकी शपथ की। अनुकूलतापर विश्वास है। क्योंकि प्रभु तो शत्रुपर भी अनुकूल ही रहते हैं—*'जासु सुभाय अरिहि अनुकूला'* तब मैं तो छोटा भाई ही हूँ, प्रेम न होनेपर भी अनुकूल तो अवश्य ही होंगे।

'सुनत बचन उठि बैठ कपीसा।'

पंजाबीजी लिखते हैं कि इससे जान पड़ता है कि हनुमान्‌जी बाणसे मूर्च्छित न हुए थे, वे केवल भरतकी भक्तिकी परीक्षा-हेतु मूर्च्छित बन गये थे। जब भरतजीको मन-कर्म-वचनसे भक्त जाना तब उठ बैठे। नहीं तो मूर्च्छा थी तो सुना कैसे?

पं० विजयानन्दत्रिपाठीजी लिखते हैं कि प्रश्न यह उठता है कि जब अनेक प्रकारसे जगानेपर नहीं जगे, तब हनुमान्‌जीने *'तौ कपि होउ बिगत श्रम सूला। जौ मोपर रघुपति अनुकूला॥'* इस वचनको सुना कैसे? बात यह है कि पहिले हृदयमें भाव उठता है, तब पीछेसे वह बैखरी रूपमें व्यक्त होता है। श्रीभरतजीको, बहुत जगानेपर भी, हनुमान्‌जीके न जागनेका बड़ा दुःख हुआ। तब अन्तिम उपायको काममें लाये, रामपद प्रेमका आश्रयण किया, उसका ऐसा सच्चा प्रभाव, हनुमान्‌जीके हृदयपर पड़ा कि उनकी मूर्च्छा जाती रही, और बैखरीमें व्यक्त हुए भावको उन्होंने सुन लिया।'

बाबा हरीदासजी कहते हैं कि हनुमान्‌जी भरतजीकी रामपद-प्रीतिके बलसे जगे। इससे कर्म, उपासना और ज्ञानको रामपद-प्रेमके सामने निरर्थक जनाया। अपने अपराधकी यह ओषधि दी।

हनु० १३। २६ में मूर्च्छा ऐसी दिखायी गयी है कि उनमें पुरुषार्थ न रह गया था, वे शिथिल हो गये थे, पर बोलते, सुनते थे। उसी अवस्थामें उन्होंने शक्ति-प्रसंग सुनाया। तत्पश्चात् वसिष्ठजीने पर्वतसे ही ओषधि लेकर उनकी मूर्च्छा दूर कर दी।

'सर्वे निशम्य सहलक्ष्मणरामनाम तत्रोपगम्य हनुमत्पदयोर्निपेतुः।
वृत्तं च तस्य वचनादपनीय शल्यं मूर्च्छां जहार स मुनिर्गिरिजौषधीभिः॥'

मानसकी यह कथा हनुमन्नाटकसे भिन्न है। पंजाबीजीका मत ठीक मानें तो उसमें यह आपत्ति आती है कि अपनेसे उठ बैठनेसे भरतजीकी शपथ और उनके बाणका प्रभाव कुछ भी न रह जायगा। मानसके मतानुसार तो रामकृपासे ही मूर्छा छूटी।' गीतावली ६। १० से भी इसी भावका समर्थन होता है, यथा—*'जाइ भरत भरि अंक भेंटि निज जीवन दान दियो है'* भरतजीने प्रार्थना की कि मेरी आयुसे इसको आयु दी जाय। वैसे ही यहाँ भरतजी अपने विशुद्ध रामप्रेम और अपनेपर श्रीरघुनाथजीकी अनुकूलतारूपी दान देकर हनुमान्‌जीकी मूर्छा दूर कर रहे हैं।

प्र० स्वामीजी भी मुझसे सहमत हैं। वे लिखते हैं कि मूर्छा रामकृपासे ही छूटी, जैसे श्रीसीताजीने जो *'प्रेमपन ठाना'* वह *'कृपानिधान राम सब जाना'* वैसे ही यहाँ भरतजीने जो प्रेमपन ठाना वह कृपानिधानने सुना। श्रीसीताजीने मनमें ही प्रेमपन ठाना था अतः वहाँ कृपानिधानका जानना कहा और यहाँ वैखरीसे ही प्रेमपन ठाना, अतः *'सुनत'* कहा।

☞'कोसलाधीस' पद दिया क्योंकि इस समय वे कोसलपुरीमें हैं।

सो०—लीन्ह कपिहि उर लाइ पुलकित तनु लोचन सजल।
प्रीति न हृदय समाइ सुमिरि राम रघुकुलतिलक॥५८॥

अर्थ—भरतजीने कपिको हृदयसे लगा लिया। उनका शरीर पुलकित हो गया। नेत्रोंमें जल भर आया। रघुकुल शिरोमणि श्रीरामचन्द्रजीका स्मरण कर-करके हृदयमें प्रीति नहीं समाती॥ ५८॥

नोट—१ *'लीन्ह कपिहि उर लाइ'*। पूर्व कहा था कि *'बिकल बिलोकि कीस उर लावा'* बीचमें हटाना कहा नहीं, यहाँ फिर कैसे कहा कि *'लीन्ह उर लाइ'?* उत्तर यह है कि भरतजी छातीसे लगाये हुए थे पर मूर्छा हटनेपर हनुमान्‌जी उठकर बैठ गये, यथा—*'सुनत बचन उठि बैठ कपीसा।'* तब दोनों अलग हो गये। अतएव फिर हृदयसे लगाया। पुनः *'जागत नहिं बहु भाँति'* से हटना सम्भावित हो सकता है। सम्भव है कि मूर्छा हटानेके उपाय करते समय इनको लिटा दिया हो। बं० पा० जी लिखते हैं कि प्रथम बार दुःखके मारे हृदयसे लगाया था और अब सुखसे हृदय लगाया। नोट—२ *'प्रीति न हृदय समाइ'* अर्थात् वह प्रेम, अश्रु और पुलकाङ्ग आदि सात्त्विक अनुभावोंद्वारा पूर्णावस्थाको प्राप्त होकर बाहर निकल पड़ता है।—*'कह्यौ न परत जेहि भाँति दुहूँ भाइन सनेह सों सो उर लाइ लियो है'*—(गी० लं० ११)। उत्तरकाण्डमें जब हनुमान्‌जीने प्रभुके आगमनका संदेश कहा है, उस समय भी भरतजी इसी प्रेमसे मिले हैं, यथा—*'मिलत प्रेम नहिं हृदय समाता। नयन स्रवत जल पुलकित गाता॥'*

पु० रा० कु०—*'सुमिरि राम रघुकुलतिलक'* इति। पुलकाङ्ग, अश्रुपात और प्रेम ये सब कपिके उठनेपर श्रीरामजीकी कृपालुताके स्मरणसे हुए। वे श्रीरामजीके कृतज्ञ हो रहे हैं कि उन्होंने हमारा लाञ्छन (कलङ्क) मिटाया। क्यों न हो! वे रघुकुल-शिरोमणि हैं, वे हमें कैसे लाञ्छन लगने देते? जिससे कुलभर कलङ्कित हो जाता।

तात कुसल कहु सुखनिधान की। सहित अनुज अरु मातु जानकी॥ १॥
कपि सब चरित समास बखाने। भए दुखी मन महुँ पछिताने॥ २॥

शब्दार्थ—**समास**=संक्षेप, थोड़ेमें।

अर्थ—हे तात! छोटे भाई (लक्ष्मणजी) और माता जानकीजीसहित सुखसागर रघुनाथजीका कुशल कहो॥ १॥ (शीघ्रताके कारण) कपिने सब चरित संक्षेपमें कहे सुनकर वे दुखी हुए और मनमें पछताने लगे कि—॥ २॥

पु० रा० कु०—१ *'कुसल कहु सुखनिधान की'* इति। सुखसागर हैं ही तब उनकी कुशल पूछना कैसा? यह प्रीतिकी रीति है। यथा—*'जद्यपि अवध सदैव सुहावनि। राम पुरी मंगलमय पावनि॥ तदपि प्रीति कै रीति सुहाई। मंगल रचना रची बनाई॥'* (१। २९६। ५-६)

पु० रा० कु०—२ (क) *'सब चरित'* अर्थात् सीताहरणसे शक्तितक। (ख) *'भए दुखी मन महुँ·······'* इति। यहाँ भरत उपलक्षण मात्र हैं। इससे कौसल्यादि सबका ग्रहण है। यथा—

'सुनि रन घायल लषन परे हैं। स्वामिकाज संग्राम सुभट सों लोहे ललकि लरे हैं॥
सुवन सोक संतोष सुमित्रहि रघुपति भगति बरे हैं। छिन छिन गात सुखात छिनहिं छिन हुलसत होत हरे हैं॥
कपि सों कहत सुभाय अंब के अंबक अंबु भरे हैं। रघुनंदन बिनु बंधु कुअवसर जद्यपि धनु दुसरे हैं॥
तात जाहु कपि सँग रिपुसूदन उठि कर जोरि खरे हैं। प्रमुदित पुलकि पैत पूरे जनु बिधि बस सुढर ढरे हैं॥(गी० ६। १२)

नोट—*'भए दुखी·······'*। सीताहरण और लक्ष्मण-शक्ति सुनकर दुःख हुआ। इन दोनोंकी कुशल पूछी थी सो यह समाचार मिला। आगे कवि स्वयं पश्चात्ताप लिखते हैं।

सि० ति०—गी० १० से १४ तक में जो कहा है उसके द्वारा यह दिखाया गया है कि जैसे कृष्ण-भगवान्‌ने प्रियभक्त उद्धवजीको गोपियोंके पास प्रेमकी दीक्षा करनेके लिये ज्ञानोपदेशके मिष भेजा है, वैसे ही यहाँ श्रीरामजीने इन्हें प्रेमकी पराकाष्ठा प्राप्त करनेके लिये प्रेरणा करके श्रीअयोध्याजी भेजा है।

अहह दैव मैं कत जग जाएउँ। प्रभु के एकहु काज न आएउँ॥ ३॥
जानि कुअवसरु मन धरि धीरा। पुनि कपि सन बोले बलबीरा॥ ४॥

शब्दार्थ—**कत**=क्यों। **जाएउँ**=पैदा किया गया, जन्म हुआ।—*'कोसलेस दसरथ के जाए·······'* **बलबीर**=जो बलमें दूसरोंसे बहुत बढ़कर हो। **वीर**=किसी काममें जो बढ़कर हो।

अर्थ—हा दैव! मैं जगत्‌में क्यों (व्यर्थ) पैदा हुआ जो प्रभुके एक (कोई) भी काम न आया॥ ३॥

फिर कुसमय जानकर मनमें धीरज धरकर बलवीर श्रीभरतजी पुनः हनुमान्‌जीसे बोले॥ ४॥

नोट—१ *'प्रभु के एकहु काज न आयउँ'* इति। (क) प्रभुका भाव कि वे समर्थ हैं, उनको सहायताकी जरूरत नहीं। पर सेवकका काम है सेवा करना, नहीं तो सेवक कैसा?—*'सेवक सो जो करै सेवकाई।'* (१। २७१), *'स्वामी संकट हेतु हौं जड़ जननि जनम्यौ जाय। समउ पाइ कहाइ सेवक घट्यौं तौ न सहाय॥'* (गी० १४) वे सेवककी सेवाको ग्रहण करते हैं और बहुत मानते हैं—*'जानत प्रीति रीति रघुराई।'* नहीं तो *'सिंधु कि तोष जल अंजलि दिए'?* लोग सिन्धुको जल देते, सूर्यको अर्घ्य देते और दीपक दिखाते हैं—यह सब सेवक-प्रेमका धर्म है। प्रभुके अर्थ काम आनेसे अपना जीवन तो सफल हो जाता, यह सोचकर भक्तशिरोमणि भरतजी पछताते हैं।

नोट—२ *'जानि कुअवसर मन धरि धीरा'* इति। (क) *'कुअवसर'* यह कि लक्ष्मणजी रणभूमिमें घायल पड़े हैं, हनुमान्‌जी औषध लाये हैं, इनको तुरंत वहाँ पहुँचना चाहिये जिसमें वे जीवित हो जायँ, इन्हें वहाँ पहुँचा दूँ। यदि मैं शोकमें पड़ गया तो सभी शोक करने लगेंगे, औषध वहाँ न पहुँचनेसे लक्ष्मणजीके प्राण जायँगे; यह समय शोकका नहीं है, कर्तव्य करनेका है। (ख) *'कुअवसर'* में धैर्य धारण करनेसे ही कार्य बनता है, यथा—*'धीरजु धरिय त पाइय पारू। नाहि त बूड़िहि सब परिवारू॥'* (१। १५४), *'तात हृदय धीरज धरहु करहु जो अवसर आजु॥'* (२। १६९) यह जानकर सज्जन धैर्य धरते हैं, यथा—*'कृपासिंधु प्रभु होहिं दुखारी। धीरजु धरहिं कुसमउ बिचारी॥'* (२। १४१। ५), *'धीरजु धरेउ कुअवसर जानी। सहज सुहृद बोली मृदु बानी॥'* (अ० ७४। १) अतः हमें भी धैर्य धारण करना चाहिये। (ग) *'मन धरि धीरा'* से जनाया कि पहिले अधीर हो गये थे। *'भए दुखी मन महुँ पछिताने।'* पुनः *'अहह दैव मैं कत जग जाएउँ।'*'''''''' इत्यादि विचारोंने बिलकुल अधीर कर दिया; यथा—*'कहत सिथिल सनेह भो जनु धीर घायल धाय। भरत गति लखि मातु सब रहि ज्यों गुड़ी बिनु बाय॥'* (गी० लं० १४) धैर्य किया कि अभी मैं इनको पहुँचाता हूँ, लक्ष्मणजी उठेंगे, संदेह नहीं। विश्वाससे धैर्य होता है। यथा—*'सकुची व्याकुलता बड़ि जानी। धरि धीरजु प्रतीति उर आनी॥'* (१। २५९। ३)

नोट—३ *'पुनि कपि सन बोले बलबीरा।'* (क) पुनि=धीरज धरकर तब बोले। दूसरे, प्रथम एक बार बोल चुके हैं, यथा—*'तात कुसल कहु सुखनिधान की।'*'''''''' अतः अब *'पुनि'* बोलना कहा। (ख)—*'बलबीर'* पद साभिप्राय दिया गया है क्योंकि आगे बाणपर हनुमान्‌जीको पर्वतसहित सवार कराके लङ्कापुरीमें श्रीरामजीके समीप पहुँचानेको कहेंगे। असाधारण बलवान् ही ऐसा कर सकता है।

☞ देखिये, प्राचीन भारतकी बाणविद्या! कहाँपर लङ्कामें श्रीरामजी हैं और कहाँ श्रीभरतजी! बिना उस स्थानको जाने अथवा देखे ठीक उसी स्थानपर हनुमान्‌जीको पर्वतसहित क्षणभरमें पहुँचा देनेको कहते हैं।

तात गहरु होइहि तोहि जाता। काजु नसाइहि होत प्रभाता॥ ५॥
चढ़ु मम सायक सैल समेता। पठवौं तोहि जहँ कृपानिकेता॥ ६॥

शब्दार्थ—गहरु=(गहर)=देर, विलम्ब।

नोट—हे तात! तुमको जानेमें देर होगी और सबेरा होनेसे काम बिगड़ जायगा॥ ५॥ अतः तुम पर्वतसहित मेरे बाणपर चढ़ जाओ मैं तुमको जहाँ दयासागर श्रीरामचन्द्रजी हैं वहीं पहुँचा दूँ॥ ६॥

नोट—१ *'काजु नसाइहि होत प्रभाता'* इति। हनुमान्‌जीने *'सब चरित समास'* में कहते हुए यह भी कहा था कि सुषेणने कहा है कि प्रभात हो जानेपर फिर ओषधि भी काम न देगी, वे जीवित न हो सकेंगे। यथा—*'जियै कुवँर निसि मिलै मूलिका कीन्ही बिनय सुषेन। उठ्यो कपीस सुमिरि सीतापति चल्यो सजीवन लेन॥'* (गी० लं० ९), *'समाचार कहि गहरु भो तेहि ताप तयो है।'* (गी० लं० ११)

नोट—२ हनुमन्नाटकके हनुमान्‌जीने भरत-बाहुबलकी जिज्ञासाके निमित्त यह भी कहा है कि—मैं श्रान्त हो गया हूँ, इस पर्वतको ले जानेकी शक्ति नहीं रह गयी, आप इसे तुरंत वहाँ पहुँचा दें। इसपर भरतजीने

उन्हें बाणपर चढ़ाया है*। पर यहाँ पूज्य कविके भरतजी यह जानकर कि सबेरे ओषधि काम न देगी, स्वयं ही उनसे कहते हैं कि 'तुमको देर लगेगी। तुम हमारे बाणपर सवार हो जाओ।' इससे भरतजीके भ्रातृस्नेहकी सरसता भी कैसी झलक रही है और हनुमान्‌जीको सर्वज्ञ प्रभुने परीक्षा भी करा दी। यहाँ भरतके वचन सुननेपर अभिमान उत्पन्न हुआ है, परीक्षाकी बात केवल ध्वनिसे निकलेगी, इस तरह हनुमान्‌जीके भक्तिभावकी पूर्ण रक्षा भी हो रही है—ये विशेषताएँ हैं। अभिमान उठकर वहीं दब जाता है, कर्ममें परिणत नहीं होने पाता।

नोट—३ *'जहँ कृपानिकेता।'* भाव कि हमपर कृपा की, तुम्हें इस मिष भेज अपना समाचार दिया, हमें भागवतापराध लगा। उससे निवृत्ति की, यह सेवा भी इसी बहाने कृपा करके ले रहे हैं।

वि० त्रि०—*'चढ़ु मम सायक"""निकेता'* इति। भरतजी हनुमान्‌जीको शैलसमेत बाणपर चढ़ाकर रामजीके पास भेजनेको तैयार हो गये, पर ऐसे समयमें अपने जानेका कोई उपक्रम नहीं किया। सुमित्राजीने शत्रुघ्नजीको हनुमान्‌जीके साथ जानेकी आज्ञा दी, (यथा—*'तात जाहु कपि संग रिपुसूदन उठि कर जोरि खरे हैं। प्रमुदित पुलक पैंत पूरे जनु बिधि बस सुढर ढरे हैं॥'*) सो वह भी नहीं होने पाया। इसका कारण यही मालूम होता है कि भरतजीने देखा कि सरकारकी इच्छा नहीं है कि अयोध्यासे कोई सहायता ली जाय। नहीं तो द्रोणाचल लानेके लिये उन्हें आदमी मिला, पर हम लोगोंके पास समाचार भेजनेको कोई न मिला। वे अपने व्रतपर दृढ़ हैं, चौदह वर्षतक राज्यसे उदासीन रहेंगे, उसमें हस्तक्षेप करना उचित नहीं है।

सुनि कपि मन उपजा अभिमाना। मोरे भार चलिहि किमि बाना॥ ७॥
राम प्रभाव बिचारि बहोरी। बंदि चरन कह कपि कर जोरी॥ ८॥

अर्थ—भरत-वचन सुनकर हनुमान्‌जीके मनमें अभिमान उत्पन्न हुआ कि मेरे भार (बोझा) से बाण कैसे चलेगा?॥ ७॥ परन्तु फिर श्रीरामचन्द्रजीका प्रताप विचारकर वे हाथ जोड़कर और चरणोंकी वन्दना करके बोले॥ ८॥

नोट—१ *'राम प्रताप"""।'* आप प्रभाव खूब जानते हैं और मानसमें ही कई बार आपने उसे कहा है, वही प्रभाव यहाँ भी विचारा। यथा—*'प्रभु प्रताप ते गरुड़हिं खाइ परम लघु ब्याल।'* (श्रीसीताजीसे) *'ताकहँ प्रभु कछु अगम नहिं जापर तुम्ह अनुकूल। तव प्रभाव बड़वानलहिं जारि सकै खलु तूल॥'* (श्रीरामजीसे) यहाँ प्रभुकी अनुकूलता भरतजीपर देख ही चुके हैं कि मूर्च्छा उनके शपथ करते ही दूर हो गयी।

---

* 'जिज्ञासया भरतबाहुपराक्रमस्य रामस्तुतस्य युधि लक्ष्मणशक्तिभेदे।
श्रान्तोऽहमित्यथ गिरिं नय तं कुमारं वाक्यं जगाद हनुमान्भरतं सरोषः॥
श्रुत्वेति तस्य वचनं भरतः शराग्रे साद्रिं कपिं समधिरोप्य गुणे नियोज्य।
मोक्तुं दधे झटिति कुण्डलिनं चकार तुष्टाव तं परमविस्मयमागतः सः॥
उत्तीर्य बाणात्कुशलं गृहीत्वा सम्पूज्य बाहुं भरतस्य वाग्भिः।
मनो दरिद्रस्य यथा दिगन्तं तथा हनूमाञ्छिविरं जगाम॥' (१३। २७—३०)

अर्थात् भरत-बाहुबलकी परीक्षाके विचारसे उन्होंने कहा कि मैं थक गया, मुझे पर्वतसहित पहुँचाओ""""उनके वचन सुनकर भरतजीने प्रत्यञ्चा आरोपण कर पर्वतसहित उनको बाणपर चढ़ाकर प्रत्यञ्चा धनुषमें लगा जब छोड़नेके लिये (धनुषको) थामा तभी झट कानतक खींचा, जिससे भगवान् मारुति (सफलतासे) संतुष्ट और (पराक्रम देख) परम विस्मित हुए। बाणसे कुशलपूर्वक उतरकर भरतके बाहुबलकी प्रशंसा और कृतज्ञता ज्ञापन करके वाणीद्वारा पूजा की। हनुमान्‌जी (अवधसे लङ्कामें अपने) शिविरको ऐसे वेगसे पहुँच गये जैसे दरिद्रका मन (मनोरथ करते हुए दिग्) दिगन्तको पहुँच जाता है।—(गौड़जीकृत अर्थ)

[पं० व्रजरत्न भट्टाचार्यजीका भाषानुवाद अस्पष्ट है। यदि यह भाव मान लिया जाय कि भरतजीने जब कानतक तान लिया तब हनुमान्‌जी उतर पड़े तो यह स्थिति असंगत होती है। खिंची हुई कमान छोड़नी ही पड़ती है, नहीं तो बाण निष्फल जाता है। यहाँ भाव यह है कि बाणसमेत हनुमान्‌जी लङ्का पहुँच गये और कुशलपूर्वक वहीं बाणसे उतरे। बाण अपना काम करके भरतजीके निषंगमें लौट गया। हनुमान्‌जी शिविरकी ओर गये।]

यथा—'*तौ कपि होउ बिगत श्रम सूला। जौं मोपर रघुपति अनुकूला॥ सुनत बचन उठि बैठ कपीसा।*' अतएव निश्चय हो गया कि वे अवश्य बाणपर चढ़ाकर मुझे वहाँ पर्वतसमेत पहुँचा देंगे।* [बं० पा०—यह प्रभाव अभी देख चुके हैं कि वज्र-ललाटपर भी बाण लगते ही मूर्च्छित हो गिर पड़े। बाणने अभिमानका अंक मानो ललाटसे मिटा दिया (५८-२) देखिये]।

पु० रा० कु०—जब समुद्र लाँघकर लङ्कामें गये तब इन्हें अभिमान न हुआ था। वहाँ '*बोला बचन बिगत अभिमाना*' यह पद कविने दिया है। वहाँ हनुमान्‌जीने कहा था—'*सो सब तव प्रताप रघुराई। नाथ न कछू मोरि प्रभुताई॥*' (५। ३३) पर जब संजीवनी लेने चले तब अभिमान हुआ—'*चलेउ प्रभंजनसुत बल भाषी।*' द्रोणपर्वत ले आनेपर आज यहाँ पुनः अभिमान हुआ कि—'*मोरे भार चलिहि किमि बाना।*' उस अभिमानको प्रभुने इस प्रसङ्गमें छुड़ा दिया।

नोट—२ '*बंदि चरन कह……कर जोरी*' इति। यह चलनेके समयका प्रणाम है। '*कर जोरी*' में यह भी ध्वनि है कि मुझसे बड़ा अपराध हुआ कि मैंने आपकी परीक्षा ली, आप अपराध क्षमा करें।

दो०—तव प्रताप उर राखि प्रभु जैहौं नाथ तुरंत।
अस कहि आयेसु पाइ पद बंदि चलेउ हनुमंत॥
भरत बाहुबल सील गुन प्रभुपद प्रीति अपार।
मन महुँ जात सराहत पुनि पुनि पवनकुमार॥५९॥

अर्थ—हे नाथ! हे प्रभो! आपका प्रताप (एवं आपका प्रताप और प्रभुको) हृदयमें रखकर मैं तुरंत जाऊँगा। ऐसा कहकर आज्ञा पाकर चरणोंमें प्रणाम करके हनुमान्‌जी चल दिये। भरतजीके अपार बाहुबल, शील, गुण और अपार प्रभुपद प्रेमकी बारंबार मनमें सराहना करते हुए पवनकुमार हनुमान्‌जी चले जा रहे हैं॥ ५९॥

नोट—१ '*तव प्रताप उर राखि प्रभु………।*' इति। आप प्रभु अर्थात् समर्थ हैं। समर्थका प्रताप स्मरण करनेसे ही बड़े-बड़े काम सहज ही सिद्ध हो जाते हैं। इसीसे '*प्रभु प्रताप कपि चले असंका।*' (३८। ९) और लक्ष्मणजी—'*प्रभु प्रताप उर धरि रन धीरा। बोले घन इव गिरा गँभीरा॥*' विशेष ४३ (१-३), ७४ (१२) देखिये। आपका प्रताप स्मरण करता जाऊँगा, उससे तुरंत पहुँच जाऊँगा।

नोट—२ '*अस कहि आयेसु पाइ*' से जनाया कि वचन सुनकर भरतजीने आज्ञा दी। आज्ञा पानेपर पुनः प्रणाम किया।

नोट—३ हनु० १३। ३० के '**सम्पूज्य बाहुं भरतस्य वाग्भिः**' का भाव '*भरत बाहु बल………जात सराहत*' में आ गया।

'बाहुबल' १—'*चढ़ु मम सायक सैल समेता। पठवउँ तोहि जहँ कृपानिकेता॥*'
२—'*बिनु फर सायक मारेउ………परेउ मुरछि महि लागत सायक।………*'
शील—'*बिकल बिलोकि कीस उर लावा। जागत नहिं बहु भाँति जगावा॥*'
'*प्रिय बचन सुनि आतुर धाए*', तात सम्बोधन—'*तात कुसल कहु।*'
'प्रभुपद प्रीति अपार'—प्रसङ्गभरमें है, उसीकी शपथ करनेपर हनुमान्‌जीकी मूर्छा गयी।
—'*प्रीति न हृदय समाइ सुमिरि राम रघुकुलतिलक*' इत्यादि।

नोट—४ मनमें सराहनेका कारण गी० लं० ११ में यों दिया है—
'*तीरतें उतरि जस कह्यो चहै गुनगननि जयो है। धन्य भरत धनि भरत करत भयो मगन मौन रह्यो*

* गी० लं० ११ में अभिमान होनेपर तीरपर चढ़ना कहा है—'कुधर सहित चढ़ो बिसिख बेगि पठवौं सुनि हरि हिय गर्व गूढ़ उपयो है॥३॥ तीर ते उतरि जस कह्यो चहै गुन गनन जयो है।' हनु० २७—३० का ऐसा अर्थ भी करते हैं।

मन अनुराग रयो है॥ यह जलनिधि खन्यो मथ्यो लंघ्यो बाँध्यो अचयो है। तुलसीदास रघुबीरबंधु महिमाको सिंधु तरि को कबि पार गयो है॥'

अर्थात् तीरसे उतर भरतजीके गुणगण कहना चाहा, पर उनके गुणगणोंने इनको ऐसा जीत लिया कि ये कहनेको समर्थ न हुए। धन्य भरत! कहकर उनके अनुरागसे मन रँगकर आनन्दमें मग्न हो गये और वे मौन रह गये।

☞इस भरत-हनुमान्-प्रसङ्गमें एक बात स्मरण रखने योग्य है कि हनुमान्‌जीके अवधपुरीके ऊपर आनेके समयसे जबतक उनका अभिमान दूर नहीं हुआ, तबतक बराबर बहुत छोटा पद 'कपि' या कीस ही उनके लिये प्रयुक्त हुआ है। श्रीरामजीका जय-जयकार करते समय 'कपीश' पद दिया गया है। पर हनुमान्, पवनकुमार आदि अभिमान, बल वा वेगके सूचक नाम नहीं दिये गये हैं। इससे जनाया कि इस प्रसङ्गमें इनके बल-वेगका अभिमान चूर्ण हो जायेगा।

प्रभुप्रतापके स्मरणके पश्चात् फिर हनुमंत और पवनकुमार नाम दिये गये। हनुमान् नाम अर्थात् 'मान' संयुक्तवाला नाम यहाँ भी नहीं दिया गया। चलते समय भरतजीको प्रणाम करनेपर *'हनुमंत'* कहा और लङ्कामें पहुँचनेपर हनुमान् शब्द देंगे। *'पवनकुमार'*—दोहा ५४ देखो।

नोट—५ *'पुनि पुनि सराहत',* यह भी प्रेम और आनन्दका द्योतक है। भरतजीके गुण ऐसे ही हैं, उनका प्रेम देख सभी मुग्ध हो जाते हैं। श्रीरामचन्द्रजी ही उनकी सराहना बारंबार करते हैं, यथा—*'तेहि राति पुनि पुनि करहिं प्रभु सादर सरहना रावरी॥'* (अ० २०१), *'लखन राम सीतहिं अति प्रीती। निसि सब तुम्हहि सराहत बीती॥'* (अ० २०८)

तब भला हनुमान्‌जी गुणोंको देख मुग्ध हो रहे तो आश्चर्य क्या?

नोट—६ *'पवनकुमार'* का भाव कि 'बुद्धि, विवेक, विज्ञान-निधान' हैं अत: ये सराहना कर सकते हैं, नहीं तो दूसरोंकी सामर्थ्य कहाँ। यथा—*'और करिहि को भरत बड़ाई। सरसी सीप कि सिंधु समाई''॥* एवं इस नामको देकर बड़े वेगसे जाना भी सूचित किया है।

* श्रीरामविलाप *

उहाँ राम लछिमनहि निहारी। बोले बचन मनुज अनुसारी॥ १॥

शब्दार्थ—**अनुसारी**=सदृश, समान। अनुसरण करते हुए।

अर्थ—उधर लक्ष्मणजीको देखकर श्रीरामजी प्राकृत मनुष्योंके समान वचन बोले॥ १॥

नोट—१ ☞ इस स्थानपर *'उहाँ'* पद देकर जनाया कि कवि इस समय श्रीहनुमानजीके साथ हैं। जहाँका चरित अब लिखते हैं, वहाँसे वे बहुत दूर हैं।

नोट—२ आगे उत्पन्न होनेवाली शङ्काओंकी निवृत्तिके लिये यहाँ प्रसङ्गके आदिमें ही *'मनुज अनुसारी'* पद देकर जनाया कि *'जस काछिय तस चाहिय नाचा';* अत: शङ्काएँ न करना। दोहा ६० देखिये।

नोट—३ *'निहारी'* से जनाया कि आधी रात्रितक सावधान रहे कि पवनसुत शीघ्र ही ओषधि लेकर आते हैं। आधी रात बीतनेपर चिन्ता हुई; भाईकी ओर देखा तो शोकका उद्दीपन हो आया।

नोट—४ यहाँ भाईको देखकर दु:खके वचन बोलनेमें *'लछिमन'* नाम दिया। भाव कि ये लक्षणधाम हैं, श्रीरामजीके प्रिय हैं, जगदाधार हैं। यथा—*'लच्छनधाम रामप्रिय सकल जगत आधार। गुरु बसिष्ट तेहि राखा लछिमन नाम उदार॥'* प्रभु इनके लक्षणोंको याद करके दु:खी होंगे।

तुलसीदासजीकी भावुकता

पं० रा० चं० शुक्लजी—शोकका चित्रण भी गोस्वामीजीने अत्यन्त हृदयद्रावक पद्धतिसे किया है। शोकके स्थल तुलसीवर्णित रामचरितमें दो हैं—एक तो अयोध्यामें रामवनगमनका प्रसङ्ग और दूसरा लङ्कामें लक्ष्मणको शक्ति लगनेका। रामके वन जानेपर जो दु:ख फैला, वह शोक ही माना जायगा; वह प्रियका प्रवासजन्य दु:खमात्र

नहीं है। अभिषेकके समय वनवास बड़े दुःखकी बात है—*'कैकयिनंदनि मंदमति कठिन कुटिलपन कीन्ह। जेहि रघुनंदन जानकिहि सुख अवसर दुख दीन्ह॥'* अतः परिजनों और प्रजाका दुःख, रामकी दुःख-दशा समझकर भी है, केवल रामका अलग होना देखकर नहीं—*'राम चलत अति भएउ बिषादू। सुनि न जाइ पुर आरत नादू॥'*

यह विषाद (जो शोकका संचारी है) और यह आर्त्तनाद शोकसूचक है। प्रियके दुःख वा पीड़ापर जो दुःख हो, वह शोक है। प्रियके कुछ दिनोंके लिये वियुक्त होनेमात्रका जो दुःख हो वह विरह है। अतः रामके इस दुःखमय प्रवासपर जो दुःख लोगोंको हुआ वह, शोक और वियोग दोनों है।……शोक या करुणाकी व्यंजना इस प्रकारके वाक्योंमें समझिये—

'मृदु मूरति सुकुमारि सुभाऊ। ताति बाउ तन लाग न काऊ॥
ते बन सहहिं बिपति सब भाँती। निदरे कोटि कुलिस एहि छाती॥' इत्यादि।

दशरथके मरणपर यह शोक अपनी पूर्ण दशापर पहुँच जाता है। उस समयकी अयोध्याकी दशाके वर्णनमें पाठकोंको करुणाकी ऐसी धारा दिखायी पड़ती है, जिसमें पुरवासियोंके साथ वे भी मग्न हो जाते हैं—

'लागति अवध भयावनि भारी। मानहु काल राति अँधियारी॥' से
'सुनि बिलाप दुखहू दुख लागा। धीरजहू कर धीरज भागा॥' तक।

गोस्वामीजीद्वारा चित्रित राजकुलका यह शोक ऐसा शोक है जिसके भागी केवल पुरवासी ही नहीं, मनुष्यमात्र हो सकते हैं; क्योंकि यह ऐसे आलम्बनके प्रति है जिसके थोड़ेसे दुःखको भी देख मनुष्य कहलानेवालेमात्र न सही तो मनुष्यता रखनेवाले सब करुणार्द्र हो सकते हैं।

दूसरा करुणादृश्य लक्ष्मणको शक्ति लगनेपर रामका विलाप है। इस विलापके भीतर शोककी व्यंजना अत्यन्त स्वाभाविक रीतिसे की गयी है। उसके प्रवाहमें एक क्षणके लिये सारे नियम, व्रत, सारी दृढ़ता बही जाती-सी दिखायी देती है—

'जौं जनतेउँ बन बंधु बिछोहू। पिता बचन मनतेउँ नहिं ओहू॥'

भाव—दशाका तात्पर्य न समझनेवाले, नीतिके नामपर पाखंड धारण करनेवाले, इसे चरित्रग्लानि समझेंगे या कहेंगे। पर ऐसे प्रियबन्धुका शोक जिसने एक क्षणके लिये भी विपत्तिमें साथ न छोड़ा, यदि एक क्षणके लिये सब बातोंका विचार छुड़ा देनेवाला न होता तो रामके हृदयकी वह कोमलता कहाँ दिखायी पड़ती, जो भक्तोंकी आशाका अवलम्ब है? यह कोमलता, यह सहृदयता सब प्रकारके नियमोंसे परे है। नियमोंसे निराश होकर, 'कर्मवाद' की कठोरतासे घबराकर, परोक्ष 'ज्ञान' और परोक्ष 'शक्ति' मात्रसे पूरा पड़ता न देखकर ही तो मनुष्य परोक्ष 'हृदय' की खोजमें लगा और अन्तमें भक्तिमार्गमें जाकर उस परोक्ष हृदयको उसने पाया। भक्तलोगोंका ईश्वर अविचल नियमोंकी समष्टिमात्र नहीं है, वह क्षमा, दया, उदारतादिका अनन्त समुद्र है। लोकमें जो कुछ क्षमा, दया, उदारता आदि दिखायी देती है, वह उसी समुद्रका एक बिंदु है।—(तुलसीग्रन्थावली)

अर्ध राति गइ कपि नहिं आएउ। राम उठाइ अनुज उर लाएउ॥ २॥
सकहु न दुखित देखि मोहि काऊ। बंधु सदा तव मृदुल सुभाऊ॥ ३॥

अर्थ—आधी रात बीत गयी, कपि नहीं आया। (यह कहते हुए) श्रीरामचन्द्रजीने छोटे भाई लक्ष्मणको उठाकर छातीसे लगा लिया॥ २॥ (और बोले) हे भाई! तुम्हारा स्वभाव तो सदासे ही कोमल रहा है, तुम तो मुझे कभी दुःखी नहीं देख सकते थे॥ ३॥

नोट—१ (क) *'अर्ध राति गइ……।'* इति। भाव कि रात्रि रहते ही ओषधि न आ गयी तो लक्ष्मणजी न जिलाये जा सकेंगे—५९ (५) देखो। हनुमान्‌जी तो कहकर गये थे कि हम सरसोंके तैलाग्निमें फूटनेमें जितनी देर होती है उतनेमें जाकर लायेंगे, फिर भी इतना विलम्ब हो गया। कोई विघ्न न उपस्थित हो गया हो—दोहा ५४ देखिये। (ख) *'कपि'* का भाव कि कपि चंचल होते हैं, यथा—*'कपि चंचल सबही बिधि हीना।'* इसलिये कहीं रुक न गया हो। *'राम उठाइ……'* इति। मारे विरह-शोक और प्रेमके लोग प्रियको उठाकर छातीसे लगा लेते हैं, वही इन्होंने किया।

पु० रा० कु०—'**अनुज**' इति। भाव कि छोटे भाई हो, छोटेको पीछे मरना चाहिये, बड़ेको पहिले। यथा—'**भुक्ते मयि प्रथममत्सि फलानि वत्स सुप्ते करोषि शयनं मयि जीवति त्वम्। प्राणाञ्जहासि सुरलोकसुखाय किं वा सापत्नभावमहह प्रकटीकरोषि॥**' (हनु० १३। १०) अर्थात् हे वत्स! तुम तो मेरे भोजन करनेपर फलोंको खाते थे और मेरे सो जानेपर सोया करते थे; सो अब क्या स्वर्गलोकका सुख भोगनेके लिये मेरे जीवित रहते ही तुम प्राणोंको छोड़ते हो? '*सकहु न दुखित देखि*……' इति। भाव कि इसीसे दुःख देख तुम वनमें साथ आये।

माताका यही उपदेश था। यथा—'*जेहि न राम बन लहहिं कलेसू। सुत सोइ करेहु इहइ उपदेसू॥*' और वैसा ही इन्होंने किया भी, यथा—'*आश्रम देखि जानकी हीना। भये बिकल जस प्राकृत दीना॥ ……लछिमन समुझाए……*', '*सुमिरि मातु पितु परिजन भाई।……कृपासिंधु प्रभु होहिं दुखारी। लखि सिय लषनु बिकल होइ जाहीं। जिमि पुरुषहिं अनुसर परिछाहीं॥*' (१४१। ४६), '**उत्तिष्ठ पश्य किं शेषे दीनं मां पश्य चक्षुषा। शोकार्तस्य प्रमत्तस्य पर्वतेषु वनेषु च॥ विषण्णस्य महाबाहो समाश्वासयिता मम॥**' (वाल्मी० १०१। २२-२३)

अर्थात् उठो! कैसे सो रहे हो! देखो, हम दीन-दुःखी हैं। जब हम पर्वतों और वनोंमें शोकातुर हो प्रमत्तकी तरह घूमते थे और उदास हो जाते थे तब तुम हमें समझाया करते थे। भाव यह कि आज भी हमें उठकर समझाओ।

नोट—२ '*सकहु न दुखित देखि*' के साथ '*बंधु*' पद देनेका भाव कि दुःखमें बन्धु काम आते हैं, तुम भी वैसे ही काम आते थे, अब क्यों नहीं दुःखमें सहाय होते, यथा—'*होहिं कुठाँय सुबंधु सहाये। ओड़ियहि हाथ असनिहु के धाये॥*' (अ० ३०६) मिलान कीजिये—'*राम लषन डर लाइ लए हैं। भरे नीर राजीव नयन सब अङ्ग-अङ्ग परिताप तये हैं। कहत ससोक बिलोकि बंधु मुख बचन प्रीति गुथये हैं। सेवक सखा भक्ति-भायप-गुन चाहत अब अथये हैं॥ जिन कीरति करतूति तात तुम सुकृती सकल जये हैं। मैं तुम्ह बिनु तनु राखि लोक अपने अपलोक लये हैं॥ मेरे पनकी लाज इहाँ लौं हठि प्रिय प्रान दये हैं।*' (गी० ६। ५)

नोट—३ दुःखी न देख सकना कहकर उसका कारण कहते हैं कि तुम्हारा स्वभाव अत्यन्त कोमल है। कोमल स्वभाववाला दुःख नहीं देख सकता।

मम हित लागि तजेहु पितु माता। सहेहु बिपिन हिम आतप बाता॥ ४॥
सो अनुराग कहाँ अब भाई। उठहु न सुनि मम बच बिकलाई॥ ५॥

अर्थ—हमारे हितके लिये तुमने पिता और माताका त्याग किया और वनमें शीत, (जाड़ा-पाला) घाम और वायु सब सहन किया॥ ४॥ हे भाई! तुम्हारा वह प्रेम अब कहाँ है? मेरे व्याकुलताके वचन सुनकर उठते क्यों नहीं?*॥ ५॥

नोट—१ '*मम हित लागि तजेहु पितु माता*' इति। (क) यहाँ '*हित*' पद दिया और आगे कहते हैं '*सो अनुराग कहाँ।*' इस प्रकार हित और अनुराग पर्याय शब्द हुए। हित-स्नेह, प्रेम, अनुराग। '**हित**' का अर्थ 'भलाई', 'कल्याण' भी है।'*मम हित लागि*' अर्थात् हमारे प्रेमसे हमारी सेवाके लिये साथ आये; और इसीसे माता-पिताका साथ छोड़ा। यथा—'*राम बिलोकि बंधु कर जोरे। देह गेह सब सन तृन तोरे॥*' (२। ७०। ६), '*मन क्रम बचन चरन रत होई। कृपासिंधु परिहरिय कि सोई॥*' (अ० ७२। ८), '*जौं पै सीय राम बन जाहीं। अवध तुम्हार काज कछु नाहीं॥*' (२। ७४। ४), '*सकल प्रकार बिकार बिहाई। मन क्रम बचन करेहु सेवकाई॥*' (अ० ७५। ६)

(ख) ध्वनि यह है कि जैसे तुम हमारे लिये माता-पिता-भाई-गृह—सबका त्यागकर वनमें आये वैसे ही तुम्हारे लिये मैं स्त्री, राज्य और प्राणोंको त्याग दूँगा। यथा—'**यथैवं मां वनं यान्तमनुयातो महाद्युतिः। अहमप्यनुयास्यामि तथैवैनं यमक्षयम्॥**' (वाल्मी० ४९। १७)

* 'विलपन्तं च मां भ्रातः किमर्थं नावभाषसे।' (वाल्मी० १०१। २०), 'उत्तिष्ठ पश्य किं शेषे………' अर्थात् मुझ विलाप करते हुएसे क्यों नहीं बोलते? उठो।

नोट—२ *'सहेहु बिपिन हिम आतप बाता'* इति। यहाँ *'बाता'* पद अन्तमें देकर जाड़ा, गर्मी और वर्षा तीनों ऋतुओंकी (ठंड, गर्म, और वर्षाके झँकोरोंवाली) वायु सूचित कर दी। यहाँ वर्षाका नाम नहीं दिया पर भरतजीके वाक्य भरद्वाज प्रति हैं कि *'बसि तरुतर नित सहत हिम आतप बर्षा बात॥'* (अ० २११) एक बार पूर्व कह आये वैसा ही यहाँ समझ लेना चाहिये। वा, चौमासेमें एक ही स्थानपर रह जाना होता है, अत: उसको न कहा।

जौं जनतेउँ बन बंधु बिछोहू। पिता बचन मनतेउँ नहिं ओहू॥ ६॥

अर्थ—यदि जो मैं जानता कि वनमें भाईका वियोग होगा तो पिताके उन वचनोंको भी न मानता॥ ६॥

पांड़ेजी—*'ओहू'* का इशारा उन वचनोंकी ओर है, जो उन्होंने सुमन्तजीसे कहे थे कि *'रथ चढ़ाइ देखराइ बन फिरेहु गये दिन चारि।'* (२। ८१) भाव यह कि यदि यह जानते कि भाईका विछोह होगा तो १४ वर्ष तो बहुत होते हैं, वह दूर रहें, हम चार दिनवाली यह आज्ञा भी न मानते।—(*'ओहू'* शब्दसे यह अर्थ ध्वनित हो सकता है)।

पु० रा० कु०—*'ओहू'* अर्थात् केकयीमाताका भी। भाव कि माता-पिता दोनोंके वचन न मानता।

बं० पा०—ये वचन भक्त-सम्बन्धसे कहे, जैसे भरतसे कहा था कि *'तासु बचन मेटत अति सोचू। तेहि त अधिक तुम्हार सकोचू॥'*

शीला—*'ओहू'* का भाव कि जैसे वनगमन-समय बहुत-से वचन पिताने कहे, पर मैंने न माने वैसे ही ये वनवासके वचन भी न मानता।

गौड़जी—मर्यादा-पुरुषोत्तमके लिये *'पिता बचन'* पूर्ण महत्त्वका कर्त्तव्य है, कदापि उल्लङ्घन नहीं हो सकता है, उसकी कीमत चक्रवर्ती राज्यसे, जवानीकी अवस्थामें गृहस्थीके सुखोपभोगसे, माता-पिता, परिवार और भरत-सरीखे आदर्श भाईके वियोगसे कहीं अधिक है। *'ओहू'* वह भी मैं न मानता। एक *'ओहू'* शब्द कहकर पिता-वचनके आत्यन्तिक महत्त्वका बोध कराया है। परंतु बंधु-वियोगका शोक! उफ्! यह तो इतना कठिन, इतना असह्य है कि मैं इस समय प्रतीत कर रहा हूँ कि बनके एकमात्र सङ्गी बन्धुका बिछोह जानता तो ऐसे महत्त्वपूर्ण पिताके वचन भी न मानता। यहाँ बन्धु-प्रेमकी पराकाष्ठा दिखानेमें, शोकावेशकी पूर्णता प्रकट करनेमें पुरुषोत्तमताका पूर्ण आदर्श दिखाया गया। इससे ध्वनिद्वारा मर्यादाभावकी पुष्टि होती है। शोकमें, प्रलापमें मर्यादापुरुषोत्तम कैसा आचरण करता है, वही यहाँ विलक्षण रीतिसे कविने प्रकट किया।*

नं० प०—जैसे 'एहू' दोका बोधक है और संनिकटको सूचित करता है, वैसे ही ओहू-शब्द दोका बोधक है और दूरको सूचित करता है। अतएव *'ओहू'* से जनाया कि जो पहला है जिसकी दूरमें गिनती है उसे नहीं मानता। जो दूसरा है जिसकी नगीचमें गिनती है उसे मानता। यदि कोई कहे कि पिताके वचनको न माननेमें दोष है तो उत्तर यह है कि पिताके वचनके साथ *'ओहू'* शब्द लगा है, जिसका अर्थ है कि वह वचन न मानते। भाव कि यही वचन मानते। यह दूसरा वचन है *'बन देखाइ सुरसरि अन्हवाई। आनेहु फेरि बेगि दोउ भाई॥'* यह नीति है कि पिताके अन्तिम वचनको पुत्र माने और श्रीरामजी अन्तिम वचन माननेको कहते हैं तब उनको पिताके पहिले वचन न माननेमें दोष कैसे लग सकता है?

---

* कुछ टीकाकारों और व्यासोंने स्वयं शङ्काएँ करके अनेक समाधान किये हैं। पाठकोंकी जानकारीके लिये कुछ लिखे जाते हैं—१—पिताका वचन मानता, पर उसको (सीताके वचनको कि—'राखिय अवध जो अवधि लगि रहत जानियहि प्रान' न मानता। न वह साथ आती न यह कष्ट सहना पड़ता। २—'नहिं ओहू' अर्थात् उस बंधु लक्ष्मणके वचन न मानता कि 'मन क्रम बचन चरन रत होई। कृपासिंधु परिहरिय कि सोई॥' ३—पिताके ये वचन मान लेता जो उन्होंने चलते समय कहे थे कि—'सुनहु तात तुम्ह कहँ मुनि कहहीं। राम चराचर नायक अहहीं॥' से 'राय राम राखन हित लागी। बहुत उपाय कीन्ह छल त्यागी॥' तक। और उन बचनोंको न मानता। ४—पिताके वचनको मान लेता कि 'रथ चढ़ाइ देखराइ बन फिरहु गये दिन चारि।' 'लषन राम सिय आनेहु फेरी। संसय सकल संकोच निबेरी॥' पर पिताके पहले वचनको न मानता जो कैकयीद्वारा कहे गये थे।)

कोई कहते हैं कि 'दुःखमें पड़कर श्रीरामजीने असत्य भाषण किया है कि पिताका वचन न मानते।' परंतु ऐसा कहना अयोग्य है, अबोधसूचक है, अनर्थ है। श्रीरामजी स्वप्नमें भी असत्य भाषण करनेवाले नहीं हैं, दुःख पड़नेपर भी वे सत्य ही कहते हैं।

नोट—पूज्य कविने आदिमें कह दिया है कि *'बोले बचन मनुज अनुसारी'* और अन्तमें *'नरगति भगत कृपालु देखाई'* कहकर तब प्रभुके इन वचनोंको *'प्रलाप'* विशेषण दिया है—*'प्रभु प्रलाप सुनि कान बिकल भए बानर निकर।'* *'प्रलाप'* का अर्थ है—'निरर्थक बात, अनाप-शनाप, '**प्रलापोऽनर्थकं वचः**' (अमरकोश)। ज्वर आदिके वेगमें लोग कभी-कभी प्रलाप करते हैं। वियोगियोंकी दस दशाओंमेंसे एक यह भी है।' इति। (हिन्दी-शब्द-सागर)

व्यवहारमें श्रीराजेन्द्र सिंहजीने ठीक ही कहा है कि 'विद्वानोंकी राय है कि देवता मनुष्यका आदर्श नहीं हो सकता। मनुष्योंका अनुकरणीय होनेके लिये देवता और ईश्वरको भी अपना देवत्व एक ओर रखकर मनुष्य-सदृश बर्ताव करना पड़ता है। इसीके अनुसार तुलसीदासजीके श्रीरामचन्द्र ईश्वर होते हुए भी मनुष्योचित कार्य करते हैं। उनका देवत्व उनके मनुष्यत्वको दबा नहीं देता। यही चित्रण-चातुरी है। इसके विपरीत अध्यात्मरामायणके रामके चरित्रोंमें इतना अधिक देवत्व भर दिया है कि वह उनके मनुष्यचरित्रको कभी-कभी दबा देता है। उनके ईश्वरत्वको छोड़कर उसमें स्वभावके दूसरे भागोंपर बहुत कम दृष्टि रखी गयी है। परंतु तुलसीके राम आदर्श तपस्वी, आदर्श नरपति, आदर्श भ्राता, आदर्श पति आदि सब कुछ हैं।'

यदि राममें अपने छोटे भाईके लिये, कि जो उनके प्रेममें सब नाते तृणवत् तोड़ उनके कष्टोंमें सहायक और साथी हुआ था, वैसा ही अन्योन्य प्रेम न देख पड़ता तो वे हमारे लिये 'आदर्श भ्राता' कैसे हो सकते? उनका यह प्रलाप ही उनका अतिशय प्रेम प्रकट कर रहा है। यदि देवत्वके कारण प्रलापके शब्दोंके खींच-खाँचकर अर्थ कर भी लें तो वह तुलसीदासजीके इस चरित्र-चित्रणके प्रतिकूल ही होगा।

☞इस विषयमें मित्रवर श्रीगौड़जी एवं वीरकविजीके विचारोंसे भी मैं पूर्ण सहमत हूँ कि 'यहाँ रघुनाथजीने जो कुछ कहा है वह नरत्व और प्रलाप-दशामें कहा है। इसलिये पाठकोंको विषयकी सचाईपर ध्यान नहीं देना चाहिये, वरन् रघुनाथजीकी नरलीला और काव्यके रसाङ्गपर ध्यान देना चाहिये। फिर किसी प्रकारकी शङ्काकी गुंजाइश ही नहीं रह जाती।' 'यहाँ मानुषीय प्रकृतिके अनुसार रामचन्द्रजीकी व्याकुलता और शोक प्रदर्शित करना कविको अभीष्ट है, इसीसे उन्होंने जान-बूझकर कुछ ऐसी असङ्गत बातें कहलायी हैं, जिनका ठीक-ठीक अर्थ करना असम्भव-सा प्रतीत होता है।'

☞ईश्वरमें प्रलाप नहीं हो सकता। इसीसे *'मनुज'* और *'नर'* पद दिया है, जिसका भाव ही है कि मनुष्य ऐसा प्रलाप करते हैं। रावणकी मृत्यु नरके हाथ है। ब्रह्माके वचन सत्य करनेके लिये यहाँ नरवत् प्रलाप दिखाया है। पिताका वचन भी न मानता, इस कथनसे भ्रातापर पिता-मातासे भी अधिक स्नेह दर्शित किया है। पिताका वचन इस सम्बन्धमें क्यों न मानते, इसका कारण अगली चौपाइयोंमें है। (पं०)

सुत बित नारि भवन परिवारा। होहिं जाहिं जग बारहिं बारा॥ ७॥
अस बिचारि जिय जागहु ताता। मिलै न जगत सहोदर भ्राता॥ ८॥

अर्थ—पुत्र, धन, स्त्री, परिवार (कुटुम्ब) संसारमें बारंबार होते और जाते हैं॥ ७॥ पर, हे तात! जगत्में सहोदर भ्राता (बार-बार) नहीं मिलते, ऐसा जीसे विचारकर होशमें आ जाओ॥ ८॥

नोट—१ *'सहोदर'* का अर्थ है—एक पेटसे, एक मातासे उत्पन्न। यथा—'**समानोदर्यसोदर्यसगर्भ्यसहजाः समाः**, इति (अमरकोश)'—(पु० रा० कु०)। वाल्मीकीयमें इन चौपाइयोंका समानार्थक श्लोक है। उसमें भी *'सहोदर'* शब्द आया है। यथा—'**देशे देशे कलत्राणि देशे देशे च बान्धवाः। तं तु देशं न पश्यामि यत्र भ्राता सहोदरः॥**' (१०१। १४)

प्रचलित और लोकमान्य अर्थ यही है जो ऊपर दिया गया। *'मनुज अनुसारी'* और *'प्रलाप'* होनेसे शङ्काकी जगह नहीं रह जाती।

नोट—२ **'शक्या सीता समा नारी मर्त्यलोके विचिन्वता। न लक्ष्मणसमो भ्राता सचिवः साम्परायिकः॥'** (अर्थात् मर्त्यलोकमें ढूँढ़नेसे सीता-सी स्त्री मिल सकती, पर युद्धमें सहायक—सलाह देनेवाला लक्ष्मणसमान भाई न मिलेगा।), वाल्मी० ४९। ६ के इस श्लोकका भाव यदि ***'सहोदर'*** में लें तो उसकी व्युत्पत्ति यों कर सकते हैं—**'सह उदरं यस्य'** जिसका पेट एक हो, अर्थात् जो एक मनके हों, निष्कपट हों। यह भाव पांडेजीने दिया है। पर यह अर्थ लोकमान्य नहीं है।*

रा० बा० दा० जी इस अर्थके प्रमाणमें यह श्लोक देते हैं—**'साहसी गुणसम्पन्नो निद्राविगतकल्मषः। ज्येष्ठानुशासने लग्नः सहोदराभिधीयते॥'**, ये सब लक्षण लक्ष्मणजीमें हैं, अतः सहोदर कहा।

☞एक बात यह स्मरण रखने योग्य है कि लक्ष्मणजी ही प्रायः सर्वत्र 'रामानुज' कहे गये हैं। अन्य भाइयोंके लिये प्रायः इस शब्दका प्रयोग नहीं हुआ है। 'रामानुज' से लक्ष्मणजीहीका अर्थ प्रायः समझा जाता है। देखिये चारों भाइयोंके एक ही स्थानपर होनेपर भी विश्वामित्रजीने क्या कहा है—***'अनुज समेत देहु रघुनाथा।'*** इससे जनाया कि मुख्य रामानुज यही हैं। 'रामानुज' शब्द इनके लिये रूढ़ है। रामचन्द्रिकामें इनके लिये तो 'सोदर' शब्दका बहुत ही प्रयोग हुआ है।

गौड़जी लिखते हैं कि ऐसा भी कहा जा सकता है कि रघुनाथजीकी माताओंमें अभेदबुद्धि है, अर्थात् उनमें अपने-परायेपनका विचार नहीं है। इसी भावको लेकर सहोदर शब्दका प्रयोग किया है।

नं० प०—***'मिलै न जगत सहोदर भ्राता'*** इति। भाव कि पिताका स्वर्गवास हो गया है और पितासे ही सहोदर भ्राता पैदा होकर मिलता है। अतः जगत्में सहोदर भाई अब नहीं मिल सकता। ये वचन श्रीरामजी अपने ही लिये कह रहे हैं कि 'सुत' वित्त आदि यदि ये नष्ट हो जायँगे, तो संसारमें हमको बारम्बार होंगे, परंतु अब हमको सहोदर भ्राता नहीं मिलेगा क्योंकि पिताका स्वर्गवास हो गया है। यह प्रसङ्ग समष्टिके अर्थमें नहीं है।'

'सहोदर भ्राता' पिताके सम्बन्धसे कहा, क्योंकि 'पिता-माता दोनोंके उदरसे जन्म होता है। रज और वीर्यका स्थान उदर है। पिताके ही सम्बन्धसे सहोदर भाईका मिलना भी असम्भव कहा है, नहीं तो माता तो मौजूद ही है।'

वे० भू०—***'सहोदर भ्राता'*** का प्रश्न उठाकर जमीन आसमानके कुलाबे मिलाये जाते हैं। श्रीरामजी यह नहीं कहते कि 'तुम मेरे सहोदर भ्राता हो' या 'हे सहोदर भ्राता' प्रत्युत वे कहते हैं—***'सो अपलोक सोक सुत तोरा।'*** इसमें स्पष्टरूपसे वे ***'सुत'*** सम्बोधन कर रहे हैं। तो क्या श्रीलक्ष्मणजी श्रीरामजीके पुत्र थे? वस्तुतः उस पूरे प्रसङ्गपर विचार करनेसे यही निश्चित होता है कि यह सब विलाप-प्रलाप नर-गति है।

'मर्यादापुरुषोत्तमका वचन है ***'मृषा न कहउँ मोर यह बाना'*** तब वे असत्य कैसे कहेंगे?' ऐसा तर्क लोग करते हैं पर वे यह नहीं विचारते कि मर्यादापुरुषोत्तमता है क्या चीज? सृष्ट्यारम्भ-कालसे जगत्के लिये लोक-वेदके अनुसार बँधे नियमका नाम मर्यादा है। उन सामयिक नियमोंके ठीक-ठीक पालन करनेका नाम मर्यादापुरुषोत्तमता है। अनेक नियमोंमें एक यह भी प्रख्यात नियम है कि—**'विषादे विस्मये कोपे हास्ये दैन्यमेव च। गोब्राह्मणरक्षायां वृत्त्यर्थे प्राणसंकटे। स्त्रीषु नर्मविवाहेषु नानृतं स्याज्जुगुप्सितम्॥'** (धर्मविवेकमाला)

विषादकी दशामें मनुष्य मूर्छित तो कम होते हैं, परन्तु विक्षिप्त प्रायः हो जाते हैं और उस दशामें

* प्रलाप न माननेवाले यों समाधान करनेकी चेष्टा करते हैं—१—पिताके पक्षसे दोनों भाई सहोदर हैं—(पां०)। २—अर्थ यह है कि विमातृज होकर भी जैसे तुम हमारे भाई हो, ऐसे जगत्में सहोदर भ्राता भी नहीं होते। (पां०) ३—सब भाई पायससे ही उत्पन्न हुए, अतः सहोदर हैं। ४—सुमित्राजीने पायसभाग कौसल्याजीके हाथसे पाया, वह मुख्य भाग कौसल्याका ही ठहरा। इस भावसे सहोदर कहा। (वै०) ५—शेषोपनिषद्में उल्लेख है कि प्रथम लक्ष्मणजी ८ मास कौसल्याजीके उदरमें रहे, पीछे प्रभुकी आज्ञासे योगमायाने आकर्षण कर उन्हें सुमित्राजीके उदरमें प्रविष्ट कर दिया। इस प्रकार सहोदर हुए। (वै०, रा० प्र०, पां०) 'श्रुतिगर्भोऽपि यो देवोऽनुससार'—(बं० पा०)। जिस प्रकार कृष्णावतारमें शेषावतार बलरामजी पहिले देवकीजीके उदरमें थे। पीछेसे आकर्षणद्वारा रोहिणीजीके गर्भमें आये—(गौड़जी)।

जब कि आधा ही होश-हवास (चैतन्यता) रहता है—'**मुग्धेऽर्धसम्पत्तिः परिशेषात्।**' (वे० द० ३। २। १०) उस शोकाभिभूत मुग्धा (परीक्षिप्ता) अवस्थामें, अर्ध चेतनावस्थामें मुँहसे निकला हुआ मिथ्या दोषावह नहीं माना जाता। अतः वह प्रमाणीभूत नहीं। इसलिये यहाँ विषादजन्य मुग्धावस्थामें श्रीरामजीने 'सहोदर, सुत, एक कुमार, सौंपेसि, तेहि, उठहु, सुनहु' आदि बोलकर मानुषी मर्यादाका पालन करते हुए मर्यादापुरुषोत्तमताहीको चरितार्थ किया है।

जथा पंख बिनु खग अति दीना। मनि बिनु फनि करिबर कर हीना॥ ९ ॥
अस मम जिवन बंधु बिनु तोही। जौं जड़ दैव जिआवै मोही॥ १०॥

अर्थ—जैसे पंख बिना पक्षी, मणि बिना सर्प और सूँड़के बिना श्रेष्ठ हाथी अत्यन्त दीन-दुःखी होकर रहते हैं॥ ९॥ हे भाई! तुम्हारे बिना मेरा जीवन भी ऐसा ही होगा, यदि कहीं जड़ विधाताने मुझे जीता रखा॥ १०॥

नोट—१ (क) *'पंख बिनु खग अति दीना'* इति। यथा—*'कर मीजहिं सिर धुनि पछिताहीं। जनु बिनु पंख बिहँग अकुलाहीं॥'* (२। ७६। ५), *'लेत सोच भरि छिनु छिनु छाती। जनु जरि पंख परेउ संपाती॥'* (अ० १४८) (ख) *'मणि बिनु फणि'*-जीवन, यथा—*'प्रान कंठगत भएउ भुआलू। मनि बिहीन जनु ब्याकुल ब्यालू॥'* (अ० १५३), *'मनि लिये फनि जिये ब्याकुल बेहाल रे'*—(विनय०)। (ग)—*'करिबर, कर हीना।'* सूँड़हीन होनेसे भोजन बन्द रहेगा, वह मर जायगा। (पु० रा० कु०)

नोट—२ *'अस मम जिवन.......'* अर्थात् यदि जीता रहा तो पक्षरहित पक्षीकी तरह व्याकुल बना रहूँगा, जन्मभर पश्चात्ताप रहेगा और शोकसे छाती जला करेगी; तथा मणिरहित सर्पकी तरह विह्वल हो तड़पा करूँगा और शुण्डरहित हाथीकी तरह भोजन आदि न करके प्राण दे दूँगा।

नोट—३ *'जौं जड़ दैव जिआवै.......।'* (क) भाव कि मैं जी तो सकता नहीं, अवश्य प्राण दे दूँगा—*'गिरि कानन जैहहिं साखामृग हौं पुनि अनुज सँघाती'* (गी०)। पर यदि दैवने न मरने दिया, क्योंकि जीवन-मरण उसके हाथ है,—*'हानि लाभ जीवन मरन जस अपजस बिधि हाथ'*, तो मेरा जीवन ऐसा रहेगा।—*'जौं पै प्रिय बियोग बिधि कीन्हा। तौ कस मरनु न माँगे दीन्हा॥ धिग जीवन.......।'* (अ० ८६। ६) (ख) पु० रा० कु०—*'जड़'* क्योंकि अविवेकी है। यथा—*'बिधि गति बड़ि बिपरीत बिचित्रा। जो सृजि पालइ हरइ बहोरी। बालकेलि सम बिधि मति भोरी॥'* (२८२। १-२) [मयनाजीने भी इसीसे *'बिधि'* को जड़ कहा था, यथा—*'जेहि बिधि तुम्हहि रूपु अस दीन्हा। तेहि जड़ बर बाउर कस कीन्हा॥'* (१। ९६) भाव कि उसे कुछ विधि-अविधिका विचार नहीं है। ऐसी दशामें हमको जीवित रखना अयोग्य है।]

पं०—शोकसे अत्यन्त व्याकुलताके कारण दैवको जड़ कहा।

☞ यहाँ लक्ष्मणजी पक्ष, मणि और शुण्डके, और श्रीरामजी पक्षी, फणि और हाथीके स्थानपर हैं। पक्ष बिना पक्षीका, मणिके बिना मणि-सर्पका और शुण्ड बिना हाथीका जीवन मरणसे भी अधिक कष्टदायक है। इन उदाहरणोंसे जनाते हैं कि तुम्हारे बिना हम युद्ध कैसे करेंगे? पक्षरहित होनेपर जटायुका वध हुआ, सम्पाती पराक्रमहीन हो गया। वैसे ही मेरा पुरुषार्थ न रह जायगा। हाथीके शरीरमें बलवाला अङ्ग शुण्ड ही है। इसीसे उसका सारा पुरुषार्थ है। वैसे ही तुम मेरे बल थे, तुम्हारे न रहनेसे मैं बलहीन हो जाऊँगा। भुजाओंको सूँड़की उपमा बहुत जगह दी गयी है, यथा—*'काम कलभ कर भुजबल सींवा'*, *'करिकर सरिस सुभग भुजदंडा'* (बा० १४७) अतएव शुण्डरहित होना करहीन होना है। हाथ ही न रहेगा तब पुरुषार्थ कैसा?

मिलान कीजिये—*'मेरो सब पुरुषारथ थाको। बिपति बँटावन बंधु बाहु बिनु करौं भरोसो काको॥ सुनु सुग्रीव साँचेहूँ मो पर फेर्‌यो बदन बिधाता। ऐसे समय समर संकट हौं तज्यौ लषन सो भ्राता॥ गिरि कानन जैहैं साखामृग हौं पुनि अनुज सँघाती। ह्वै हैं कहा बिभीषन की गति रही सोच भरि छाती॥'* (गी० लं० ७)

घायल लषनलाल लखि बिलखाने राम, भई आस सिथिल जगन्निवास दील की।
भाई को न मोह छोह सीय को न तुलसीस कहैं 'मैं बिभीषन की कछू न सबील की॥'
लाज बाँहबोलेकी नेवाजे की संभारसार साहेब न राम से बलैयाँ लेउँ सील की॥ (क० ६। ५२)

कवितावलीके इस उद्धरणके समस्त भाव इन तीन उदाहरणोंसे सूचित किये गये हैं—कि तुम्हारे बलका भरोसा था, दूसरा कोई सहायक नहीं, विभीषणको राज्य कैसे मिलेगा? मिलान कीजिये—

'मो पै तौ न कछू ह्वै जाई। और निबाहि भली बिधि भायप चल्यो लषन सों भाई॥
पुर, पितु मातु सकल सुख परिहरि जेहि बन बिपति बँटाई। ता सँग हौं सुरलोक सोक तजि सक्यो न प्रान पठाई॥
जानत हौं या उर कठोर ते कुलिस कठिनता पाई। सुमिरि सनेह सुमित्रा-सुत को दरकि दरार न जाई॥ (गी० ६। ६)

नं० प०—तीन उदाहरणोंसे जनाया कि इस वनमें हमारे हाथ, पैर और नेत्र तुम्हीं हो। तुम्हारे न रहनेसे मैं बिना हाथ, पैर और नेत्रका हो जाऊँगा। श्रीलखणलालजी श्रीरामजीके हाथ, पैर और नेत्र इस प्रकार हैं कि—लषणलाल श्रीरामजीके अनन्य सेवक हैं। सेवक तीन इन्द्रियोंसे होता है, हाथ, पैर और नेत्रसे। यथा—*'सेवक कर पद नयन से मुख सों साहिब होइ।'* अत: श्रीलक्ष्मणजी हाथ, पैर और नेत्र हैं। हाथीकी उपमा हाथके लिये है, यथा—*'करिबर कर हीना।'* खगकी उपमा पैरके लिये है क्योंकि पक्षी पंखके बलहीसे उड़ता है। मणि-सर्पकी उपमा नेत्रके लिये है।

जैहौं अवध कवन मुह लाई। नारि हेतु प्रिय भाइ गँवाई॥ ११॥
बरु अपजसु सहतेउँ जग माहीं। नारि-हानि बिसेष छति नाहीं॥ १२॥
अब अपलोक सोकु सुत तोरा। सहिहिं निठुर कठोर उर मोरा॥ १३॥

अर्थ—स्त्रीके कारण प्यारे भाईको खोकर मैं कौन-सा मुँह लेकर अवधको जाऊँगा?॥ ११॥ संसारमें मैं भले ही यह अपयश सहता (कि असमर्थ थे, स्त्री गँवा बैठे, पुरुषार्थ होता तो रावणको मारकर ले न आते। इत्यादि) क्योंकि स्त्रीकी हानि (इसके आगे) कुछ विशेष हानि नहीं है॥ १२॥ हे पुत्र! अब तो मेरा निठुर और कठोर हृदय यह अपयश और तेरा शोक दोनों ही सहन करेगा॥ १३॥

नोट—१ *'जैहौं अवध·······।'* वाल्मी० १०१ का यह समास वर्णन है—

'किं नु वक्ष्यामि कौसल्यां मातरं किं नु कैकयीम्॥ भरतं किं नु वक्ष्यामि शत्रुघ्नं च महाबलम्।
सह तेन वनं यातो विना तेनागत: कथम्॥ इहैव मरणं श्रेयो न तु बन्धुविगर्हणम्।
किं मया दुष्कृतं कर्म कृतमन्यत्र जन्मनि॥' (१६-१८)—इन श्लोकोंका सब भाव इन चरणोंमें है।

अर्थात् मैं कौसल्या और कैकेयीसे जाकर क्या कहूँगा? महाबल भरत और शत्रुघ्नके पूछनेपर कि लक्ष्मणके साथ वन गये थे, उनके बिना कैसे आये, मैं क्या उत्तर दूँगा? भाई-बन्धुसे निन्दित होनेकी अपेक्षा यहीं मर जाना भला है। हा! मैंने अन्य जन्ममें कौन-सा पाप किया था (जो आज भोगना पड़ा)।

नोट—२ *'नारि हेतु प्रिय भाइ गँवाई'* का इस प्रकार भी भाव लगा सकते हैं कि 'जब वे सब पूछेंगे तो क्या उत्तर दूँगा कि स्त्रीके लिये मैंने प्यारे भाईको खो दिया!' पुन, सब यही निन्दा करेंगे कि स्त्रीके लिये प्यारे भाईको खो दिया, यद्यपि जानते हैं कि ये तो *'होहिं जग बारहिं बारा'* और भाई कहाँ मिल सकता है।

नोट—३ ☞ यहाँ सुमन्त्रजीका अवधको लौटते समयका पछतावा मिलान करने योग्य है।

'बचन न आव हृदय पछिताई। अवध काह मैं देखब जाई॥
धाइ पूछिहहिं मोहि जब बिकल नगर नरनारि। उतरु देब मैं सबहि तब हृदय बज्र बैठारि॥' (अ० १४५)

'पुछिहहिं दीन दुखित जब माता। कहब काह मैं तिन्हहिं बिधाता॥
पुछिहहिं जबहिं लषन महतारी। कहिहौं कवन सँदेस सुखारी॥
जोइ पूछिहि तेहि ऊतरु देबा। जाइ अवध अब यह सुख लेबा॥

हृदय न बिदरेउ पंक जिमि बिछुरत प्रीतम नीर। जानत हौं मोहि दीन्ह बिधि यह जातना सरीर॥' (अ० १४६)

'अब अपलोक सोक सुत तोरा' इति। (क) यहाँ *'सुत'* शब्द अत्यन्त वात्सल्य भाव प्रकट कर रहा है। माताने तो कहा ही था कि राम ही तुम्हारे पिता हैं और स्वयं लक्ष्मणजीने यही कहा कि *'मोरे सबुइ एक तुम्ह स्वामी'* तथा *'गुरु पितु मातु न जानउँ काहू।'''''''''*; पर आज श्रीरघुनाथजीने भी उस भावकी स्वीकारता जना दी।—**'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।'** (ख) अपलोक, यथा—*'जानत हौं या उर कठोर ते कुलिस कठिनता पाई। सुमिरि सनेह सुमित्रासुत को दरकि दरार न जाई॥ तात मरन तिय हरन गृद्धबध भुज दाहिनी गँवाई। तुलसी मैं सब भाँति आपने कुलहि कालिमा लाई॥'* (गी० ६)

वाल्मीकीयमें रावणवधके पश्चात् प्रभुने सीताजीसे कहा है कि मैंने जो रावण-वधमें परिश्रम किया, वह केवल तुम्हारे लिये नहीं किया किंतु अपना अपवाद मिटाने और अपने वंशकी कीर्ति स्थिर रखनेके लिये भी उसे मारा है। यथा—**'रक्षता तु मया वृत्तमपवादं च सर्वतः। प्रख्यातस्यात्मवंशस्य न्यङ्गं च परिमार्जता॥'** (वाल्मी० ११५। १६)

'नारि-हानि बिसेष छति नाहीं'

पं० रा० चं० दूबे—जो स्त्री विरक्तोंके लिये रामभक्तिकी बाधक है, वही गृहस्थोंको ईश्वर-सम्मुख करती है। वही आत्मत्यागकी शिक्षा देती है, वही परोपकारिताका पाठ पढ़ाती है। श्रीरामचन्द्रजीका यह उपदेश—*'प्रमदा सब दुखखानि'* किसी साधारण मनुष्य या गृहस्थीके लिये होता तो स्वयं श्रीरामजी सीताके लिये इतना विलाप न करते-फिरते और न राम-रावणका युद्ध ही होता और न *'प्रमदा सब दुखखानि'* का पता न मिलनेसे आप ऐसे आपेसे बाहर होते कि सुग्रीवके लिये यहाँतक कह बैठते कि *'जेहि सायक मारा मैं बाली। तेहि सर हतौं मूढ़ कहँ काली॥'* उस दुःखकी खानिके लिये ऐसा विलाप करनेसे लाभ? जबतक उससे बचे रहते तभीतक गनीमत थी। जान-बूझकर कौन अपने गलेमें फाँसी डालता है। पर सच यह है कि ऐसे भावोंसे गृहस्थीका कर्तव्य दिखाया है।

दो दृष्टिकोणसे हम इस विषयपर मनन कर चुके हैं। एक पहलूसे यह प्रश्न और भी देखा जा सकता है। कवि अपना आदर्श दिखाता है। वह यह भी बतानेका प्रयत्न करता है कि मेरे आदर्श और मेरी समकालीन अवस्थामें कितना अन्तर है। यदि वह ऐसा न कर सके तो कवि ही क्या। न वह अपने कालका प्रतिनिधि ही समझा जा सकता है।

गुसाईंजीका प्रादुर्भाव जिस समय हुआ, उस समय मुसलमानी सभ्यताका प्राबल्य अपने उच्च शिखरकी ओर शीघ्रगामी हो रहा था और उसका प्रभाव आर्य सभ्यतापर जितना पड़ना था, पड़ चुका था। हमारे आचार-विचारमें बहुत कुछ परिवर्तन हो गया था। इस्लामने नारिजातिको विचारमें (In theory) चाहे कैसा ही पद क्यों न दिया हो, पर उसने व्यवहारमें उनको जरखरीद गुलामके दर्जेसे ऊपर नहीं उठने दिया।''''''''विधर्मियोंद्वारा स्त्रीजातिपर अत्याचार करनेमें, जैसा कि ऊपर कह चुके हैं, नारिजातिके गौरवका, उनकी पवित्रताका विनाश किया। इधर शिवाजी और राजसिंह, कोई मुसलमानी उनके हाथमें पड़ जानेपर उसको आदरके साथ उसके घर पहुँचानेका प्रयत्न करते हैं। उधर अलाउद्दीन आदि किसी परी जमाल हिन्दुस्थानीके उनके हाथमें पड़ जानेपर उस अबलाको हरमसरामें दाखिल करते हैं। पाठक विचार सकते हैं कि किस जातिकी दृष्टिमें नारि-जातिका उच्चतर स्थान है।

इस्लामके ८०० वर्षके दौर-दौरेमें सिर्फ ३ स्त्रियाँ ही हिन्दमें इस्लामके स्टेजपर दृष्टिगोचर होती हैं। रजिया, चाँदबीबी (जो अपने दोनों सरदारोंके हाथ कत्ल हुईं क्योंकि पठान सरदार औरतके जर हुकूमत रहना तौहीन समझता है) और नूरजहाँ जिसकी मजारपरका कुतबा बता रहा है कि उसका जीवन कैसा निराशमय हुआ।''''''''इधर हिन्दू-समाजमें अनेक वीराङ्गनाओंके नाम स्वतः स्मरण हो आते हैं—केरलकी तारा, पद्मा, कलावती, दुर्गावती''''''''।

अनेक यूरोपियन यात्री इस समय भारतमें आये और उन्होंने यहाँकी दशाका वर्णन किया है। मनुकची नामक एक इटली-निवासीने मुगल सम्राट्‌की हरमसराका जो वर्णन किया है, उसको पढ़कर शरीर काँप उठता है। वे शाही महल थे या रण्डीखाने? जो बहिश्त होने चाहिये थे, वही दोजखका नजारा दिखाते हैं। इन महिलाओंको फरिश्ताखसलत कहा जाय या शैतानसीरत? अस्तु! विशेष कहनेकी जरूरत नहीं। सारांश यह है कि इस पतित आदर्शका प्रभाव भारतपर पड़ा और खूब पड़ा। स्त्री विलासिताकी सामग्री, मनोरञ्जकताका खिलौना और पाँवकी जूती बन गयी। वह एक सुलभ वस्तु हो गयी। तभी तो कविने रघुनाथजीसे भी कहला दिया कि—*'नारि हानि बिसेष छति नाहीं।'* और दूसरी जगह सागरद्वारा यह सूत्र बनवा दिया कि—*'ढोल गँवार सूद्र पसु नारी। ये सब ताड़न के अधिकारी॥'*

निज जननी के एक कुमारा। तात तासु तुम्ह प्रान अधारा॥ १४॥

शब्दार्थ—एक=प्रधान, अद्वितीय, मुख्य—**'एकोऽन्ये प्रधाने।'** (अमरकोश) **'एके संख्यान्तरे श्रेष्ठे केवलेतरयोस्त्रिषु प्रमुखे प्रथमे मुख्ये।'**

अर्थ—हे तात! तुम अपनी माताके एक ही पुत्र और उसके प्राणाधार हो॥ १४॥*

पु० रा० कु०—*'तात'* अर्थात् अपनी मातापर अनुकम्पा करो। **'तातो भ्राता पिता तातस्तातो विस्तारकारकः। तातः पुत्रोऽनुकम्प्यश्च सखा तात उदाहृतः॥'** (अनेकार्थशब्दमाला)

नोट—सुमित्राजीके दो पुत्र लक्ष्मण और शत्रुघ्न हैं। पर यहाँ प्रभु कहते हैं कि *'निज जननी के एक कुमारा'।* यहाँ *'एक'* का अर्थ 'प्रधान' है। माता सुमित्राजी अपनेको इन्हींके जन्मसे पुत्रवती और बड़ी भाग्यवान् मानती हैं—*'भूरि भाग भाजन भयहु मोहि समेत बलि जाउँ। जौं तुम्हरे मन छाँड़ि छल कीन्ह रामपद ठाउँ॥'* (अ० ७४) *'पुत्रवती जुवती जग सोई। रघुपति भगत जासु सुत होई॥'* उन्होंने लक्ष्मणजीसे यहाँतक कहा है कि मैं तुम्हें अपना पुत्र तब जानूँगी, जब तुम राम-सेवामें सरस निकलोगे। यथा—*'सिय रघुबर सेवा सुचि होइहौ तब जानिहौं सही सुत मेरो।'* (गीतावली)

लक्ष्मणजीको मानो वे अपना एकमात्र पुत्र मानती थीं तभी तो 'सौमित्र' और *'सुमित्रानन्दवर्द्धनः'* ये दोनों शब्द केवल लक्ष्मणजीके लिये जहाँ-तहाँ सर्वत्र प्रयुक्त हुए हैं। वाल्मीकि, अध्यात्म, हनुमन्नाटक, मानस आदि कई ग्रन्थोंमें जहाँ-जहाँ ये शब्द आये हैं, वहाँ उनसे 'लक्ष्मण' का ही अर्थ लिया जाता है। यथा—**'कथं वक्ष्याम्यहं त्वम्बां सुमित्रां पुत्रवत्सलाम्॥ उपालम्भं न शक्ष्यामि सोढुं दत्तं सुमित्रया।'** (वाल्मी० १०१। १६-१७), **'परित्यक्ष्याम्यहं प्राणान् वानराणां तु पश्यताम्। यदि पञ्चत्वमापन्नः सुमित्रानन्दवर्धनः॥'** (वाल्मी० ४८। ७)

उपर्युक्त कारणोंसे *'एक कुमारा'* कहा गया है। 'एक' शब्दके कई अर्थ हैं। उनमेंसे जो अर्थ यहाँ घटित हो वही लेना चाहिये। यथा—**'एकोऽन्यार्थे प्रधाने च प्रथमे केवले तथा। साधारणे समानेऽल्पे संख्यायां च प्रयुज्यते॥'** (दिनकरी)

यदि 'एक' का अर्थ 'एकलौता' संख्यावाचक 'एक' लें तो इसको भी प्रलाप ही कहेंगे। पर 'एक' का अर्थ 'प्रधान' 'अद्वितीय' मानसमें ही बहुत ठौर आया है, इससे यह अर्थ भी यहाँ लिया जा सकता है और उसमें शङ्काकी भी निवृत्ति हो जाती है। प्राचीन सभी टीकाकारोंने इसी अर्थको प्रधानता दी है।

पं० नारायणप्रसाद मिश्रजी लिखते हैं कि—यद्यपि पायसांशानुसार सुमित्राजीके दो पुत्र हुए तथापि माता सुमित्राजीका प्रेम लक्ष्मणजीपर विशेष इस कारण था कि वे जैसा लक्ष्मणजीसे अपनेको पुत्रवती मानती थीं, वैसा शत्रुघ्नजीसे नहीं। और वनवासके समय उन्होंने इस अपने गूढ़ रहस्यको लक्ष्मणजीसे स्पष्टाक्षरोंमें प्रकट भी बता दिया—*'भूरि भाग भाजन भयहु……।'* इत्यादि लक्ष्मणजी इसीलिये अपनी माताके नामसे विख्यात थे। इसी गूढ़ाभिप्रायको लक्ष्यमें रखकर गोस्वामिपाद प्रथम वन्दनामें लिखते हैं—*'कृपासिंधु सौमित्रि गुनाकर'।……'* शत्रुघ्नजीके लिये कहीं भूलकर भी 'सौमित्रि' शब्दका प्रयोग नहीं किया। अतएव माताके

---

* नं० प० जीका अर्थ—'हे भाई! हमारी माता, तिसको आप एक कुमार प्रानके अधार हो।'

उपर्युक्त भावको प्रकट करते हुए श्रीरामचन्द्रजीका लक्ष्मणजीके प्रति *'निज जननी के एक कुमारा'* कहना युक्तियुक्त और सामञ्जस्य ही है। असङ्गत एवं शङ्कास्पद कुछ भी नहीं है।

पं० चन्द्रिकाप्रसाद वाजपेयी, श्रीराममन्दिर, काशी (तु० प० ५। १५) का मत है कि 'अपनी माताके जो एक ही कुमार, सो हे तात! उसके तुम प्राणके अवलम्ब हो।' यह शब्दार्थ है। उपर्युक्त चौपाईमें *'तासु'* शब्दसे श्रीरामचन्द्रपर भावना नहीं घट सकती। कारण कि *'कबिहि अरथ आखर बल साँचा। अनुहर ताल गतिहिं नट नाचा॥'* अतएव श्रीरामसम्बन्धमें यह चौपाई लगाना ठीक न होगा, क्योंकि श्रीरामविलापमें सात प्रकरण हैं, उसे देखना चाहिये।

प्रकरण १-*'उहाँ राम लछिमनहि निहारी'* से *'राम उठाइ अनुज उर लावा'* तक कविका वचन है। आगे प्रकरण २-*'सकहु न दुखित देखि मोहि काऊ'* से *'उठहु न सुनि मम बच बिकलाई'* तक श्रीलक्ष्मणजीके सम्बन्धमें विलाप है। प्रकरण ३-*'जो जनतेउँ बन बंधु बिछोहू'* से *'मिलहिं न जगत सहोदर भ्राता'* तक पिताके सम्बन्धका प्रलाप है। प्रकरण ४-*'जथा पंख बिनु खग अति दीना'* से *'जो जड़ दैव जिआवै मोही'* तक अपने ऊपर कहा है। प्रकरण ५-*'जैहौं अवध कवन मुह लाई'* से *'सहिहि कठोर निठुर उर मोरा'* तक अवध नगरपर कथन है। प्रकरण ६-*'निज जननी-के एक कुमारा। तात तासु तुम्ह प्रान अधारा॥'* श्रीभरतजीपर कथन हुआ है। प्रकरण ७-*'सौंपेउ मोहि तोहि गहि पानी'* से *'उठि किन मोहि सिखावहु भाई'* तक।

छठा प्रकरण भरतजीपर है। श्रीलषनलालजीका भी वनगमन सुनकर वे अपनेको कैसा धिक्कारते हैं—*'लालन जोग लषन लघु लोने। भे न भाइ अस अहहिं न होने॥ पुरजन प्रिय पितु मातु दुलारे। सिय रघुबीरहिं प्रान पिआरे॥ मृदुमूरति सुकुमार सुभाऊ। तात बाउ तन लाग न काऊ॥ ते बन सहहिं बिपति सब भाँती। निदरे कोटि कुलिस एहि छाती॥'* (अ० २००। १—४) अतएव लक्ष्मणजीपर उनका प्रेम जानकर श्रीरामजी कह रहे हैं कि श्रीभरतजी यदि यह दशा सुनेंगे तो अपने प्राणका अवलम्ब न देखते क्या नहीं करेंगे। लक्ष्मणजी श्रीभरतजीको प्राणप्रिय हैं, यह और भी प्रसङ्गोंसे प्रमाणित होता है—वे हनुमान्‌जीसे पूछते हैं *'तात कुसल कहु सुखनिधान की। सहित अनुज अरु मातु जानकी॥'* (लं० ५९) फिर उत्तरकाण्डमें देखिये, जबतक हनुमान्‌जीने *'सीता अनुज सहित प्रभु आवत'* नहीं कहा, तबतक वे सुखी न हुए।

गौड़जी—*'कथा प्रबंध बिचित्र बनाई'* मानसकारने विचित्र रीतिसे चार कल्पोंकी कथाएँ एकमें गुम्फित की हैं। परात्पर परतम पुरुषोत्तमके अवतारमें कैकेयीके तीन संतानें हुईं—शान्ता, भरत और शत्रुघ्न। पुत्रोंके जन्मकालमें पहले श्रीकौसल्याजीके रामजी हुए; श्रीसुमित्राजीके लक्ष्मणजी और फिर श्रीकैकेयीजीके भरत और शत्रुघ्न। शान्ताके जन्मके प्रसङ्गमें तो मानसकार चुप हैं, रामचरितसे उसका सम्बन्ध अत्यन्त थोड़ा है। परंतु पुत्र-जन्म-प्रकरणमें मानसकारने जान-बूझकर शेष तीनों भाइयोंकी माताओंका निर्देश नहीं किया है। जन्म-प्रकरणमें न करते तो नामकरणके प्रसङ्गमें तो कह सकते थे कि किसके पुत्रका क्या नाम रखा गया। परन्तु उन्होंने जान-बूझकर कुछ नहीं कहा। क्योंकि कल्पभेदका निदर्शन करना पड़ता और कथन-सौन्दर्य नष्ट हो जाता। अतः कहीं 'रामानुज', कहीं 'सौमित्रि', कहीं, *'निज जननी के एक कुमारा'* आदि कहकर इस कल्पकी जन्मकथाका निर्देश किया है। अन्य कल्पोंकी कथाएँ तो वाल्मीकि आदिके अनुरूप ही हैं। प्रस्तुत प्रसङ्गमें मेरे निजी मतसे 'एक' का वाच्यार्थ ही लेना यथार्थ है। भाव यह कि श्रीलषनलालजी अपनी माताके एक ही पुत्र हैं। एक शब्दके और कोई अर्थ लेना न केवल जटिलता है, प्रत्युत कथा-प्रसङ्गकी विचित्रता समझनेमें त्रुटिका परिचायक है। इसी तरह आगेका सौंपना भी व्याजसे कहा गया है। चलती बेर पहले कौसल्याजीसे फिर कैकेयीजीसे श्रीरघुनाथजी मिले हैं। श्रीसुमित्राजीके चरण छुये बिना कैसे जाते? इस समय अन्तिम विदामें, सुमित्राजीके सामने तीनों आये। सुमित्राजीने तभी लक्ष्मणजीको सरकारकी सेवाके लिये सौंपा। सुमित्राजीकी रामभक्ति विशिष्ट प्रकारकी है।

और भी अर्थ टीकाकारोंने किये हैं, पाठक स्वयं विचार देखें।—

१-मैं अपनी माताका एक हूँ और तुम उसके (मेरे) प्राणाधार हो।

२-मा० म०—(क) एक=ज्येष्ठ, बड़े। अर्थात् तुम बड़े पुत्र हो, यद्यपि एक पुत्र और है परंतु तुम उसके प्राणाधार हो। पुनः, (ख) कौसल्याके हम एक ही पुत्र हैं, तिसके प्राणके भी तुम आधार हो। एवं इस प्रकार दोनोंके प्राणके आधार तुम ही हो और तुम्हारी रक्षाके निमित्त तुमको मुझे सौंप दिया, अतः तुम्हारी रक्षा करना मेरा कर्तव्य है।

३-*'निज जननी के एक कुमारा'* ठीक है, लक्ष्मणजी सुमित्राजीके एकलौते पुत्र हैं, भरत, शत्रुघ्न कैकेयीके पुत्र हैं। यह मत आनन्दरामायणका है।—पर मानस और गीतावलीका मत यह नहीं है, यथा—*'लखि रिस भरेउ लखन लघु भाई। बरत अनल घृत आहुति पाई॥'* (अ० १६३), *'तात जाहु कपि सँग रिपुसूदन उठि कर जोरि खरे हैं। प्रमुदित पुलकि पैंत पूरे जनु बिधि बस सुढर ढरे हैं॥'* (गी० १३)—ये वचन सुमित्राजीके हैं, वे जेठे पुत्रके घायल होनेपर अपने दूसरे पुत्रको जानेकी आज्ञा देती हैं। पुनः, यथा—*'भेंटेउ बहुरि लखन लघु भाई।'* (अ० १६५) माता कौसल्याके पास जब भरतजी और शत्रुघ्नजी गये तब कविके ये वचन हैं। रामाज्ञा-प्रश्नसे भी इसीकी पुष्टि होती है। यथा—*'सुमिरि सुमित्रा नाम जग जे तिय लेहिं सनेम। सुवन लखन रिपुदवन से पावहिं पतिपद प्रेम॥'* (७। १८) इस विषयपर पूर्व विस्तृत लेख आ चुका है। पाठक वहीं देखें। रामरहस्योपनिषद्में भी शत्रुघ्नजीको सुमित्राजीका ही पुत्र कहा है। यथा—**'द्विभुजं स्वर्णवर्णाभं रामसेवापरायणम्। लवणासुरहन्तारं सुमित्रातनयं भजे॥'** (अध्याय २। १०४)

सौंपेसि मोहि तुम्हहि गहि पानी। सब बिधि सुखद परम हित जानी॥ १५॥
उतरु काह दैहौं तेहि जाई। उठि किन मोहि सिखावहु भाई॥ १६॥

अर्थ—सब प्रकारसे सुख देनेवाला और परम हितकारी जानकर मुझे उसने तुम्हारा हाथ पकड़कर सौंपा था॥ १५॥ मैं उसे जाकर क्या उत्तर दूँगा! हे भाई! तुम उठकर मुझे सिखाते क्यों नहीं?॥ १६॥*

पु० रा० कु०—*'सौंपेसि······'* इति। इससे सूचित हुआ कि जब रामजी वनको चले तब श्रीसुमित्राजीने हाथ पकड़कर लक्ष्मणको उनको सौंप दिया था। यद्यपि यह बात वहाँ नहीं कही तथापि यहाँके इस वाक्यसे योजना कर लेना कर्त्तव्य है। कविकी शैली है कि वे ग्रन्थमें आगे वा पीछे वा उसी जगह एक बार प्रसङ्ग कह देते हैं, बार-बार नहीं दुहराते। यथा—१*'सियनिंदक अघ ओघ नसाये'* यह उत्तरकाण्डका प्रसङ्ग बालमें कहा है। २—*'रामानुज लघु रेख खचाई'* यह अरण्यका प्रसङ्ग लङ्कामें कहा है। ३—बालकाण्डमें रावणका दिग्विजय कहते समय किसीसे हार नहीं कही। वह बात लङ्काकाण्डमें अङ्गद-रावण-संवादमें लिखकर जहाँ-तहाँ हार जना दी।

नोट—१ *'सब बिधि सुखद परम हित जानी'* इति। (क) यहाँ श्रीसुमित्राजीके *'तात तुम्हारि मातु बैदेही। पिता राम सब भाँति सनेही॥'* (अ० ७४। २), *'तुम्ह कहँ बन सब भाँति सुपासू। सँग पितु मातु रामसिय जासू॥'* (७५। ७), *'राम प्रानप्रिय जीवन जी के। स्वारथ रहित सखा सब ही के॥'* (७४। ६) इन वचनोंपर लक्ष्य है।

(ख) भाव कि माताने यह समझकर साथ किया कि हमारे साथ तुमको सब प्रकार सुख रहेगा और तुम्हारी रक्षा भी होगी। मुझे धिक्कार है कि मैंने तुम्हारी रक्षा भी न की, तुम्हें लड़ने भेज दिया—

जैसे वचन लक्ष्मणजीसे सुमित्रा अम्बाजीने कहे, लगभग विश्वामित्रजीको सौंपते समय दशरथजीने भी ऐसे ही वचन कहे थे, यथा—*'तुम मुनि पिता आन नहिं कोऊ'* पर वहाँ दोनों सामने उपस्थित थे और सौंपा भी था, यथा—*'सौंपे भूप रिषिहि सुत······'*। और, यहाँ श्रीसुमित्राजीका सामने आना ग्रन्थमें नहीं पाया

* 'कथमम्बां सुमित्रां च पुत्रदर्शनलालसाम्॥ विवत्सां वेपमानां च वेपन्तीं कुररीमिव। कथमाश्वासयिष्यामि यदि यास्यामि तं विना॥' (वाल्मी० ४९। ८-९) अर्थात् पुत्रके दर्शनकी लालायित सुमित्रा अम्बासे मैं क्या कहूँगा। अयोध्या जाकर पुत्ररहित कुररीके समान काँपती हुई माताको मैं कैसे समझाऊँगा?

जाता। इसपर एकका मत है कि भला वह कब बिना देखे रह सकती थीं और दूसरेका मत यह है कि वे कब यह वियोगदृश्य सहन कर सकती थीं कि आकर प्रिय श्रीरामजीको मुनिवेषसे वनको जाते देखतीं? दूसरे, यदि वे आकर फिर हाथ पकड़कर सौंपतीं तो उनके उपदेशके प्रतिकूल होता—*'तात तुम्हारि मातु बैदेही·······'*। जब माता वैदेही हैं तब वे आकर इस तरह कैसे सौंपती? और किसी-किसीका मत है कि *'सौंपेसि मोहि·······'*, यह अम्बा कौसल्याजीकी ओर इशारा है कि उन्होंने तुमको मेरे सुपुर्द किया पर इसका भी कोई प्रमाण नहीं मिला। दूसरे, कौसल्याजीके सामने भी दोनों भाइयोंका एक साथ उपस्थित होना मानसमें नहीं पाया जाता। हाँ! गीतावलीमें कौसल्याजीने हनुमान्‌जीद्वारा सन्देश भेजा है कि भाईको साथ लेकर आना। यथा—*'भेंट कहि कहिबो कह्यो यों कठिन मानस माय। लाल लोने लषन सहित सुललित लागत नाय॥'* (१४) अर्थात् तुम्हारी शोभा उनके साथ ही है। पर यह संदेसा तो विलापके पीछे पहुँचेगा। रा० प्र० का मत है कि *'तात तुम्हारि मातु बैदेही। पिता राम सब भाँति सनेही॥'*, यही हाथ पकड़ सौंपना है। प्रत्यक्ष हाथ पकड़ानेसे तात्पर्य नहीं।

एक महानुभाव कहते थे कि पद्मपुराणमें कथा है कि उर्मिलाजीने श्रीजानकीजीसे कहा था कि मैंने प्रण किया था कि जीवनपर्यन्त आपकी सेवा करूँगी पर मेरे प्राणनाथ आपके साथ जाते हैं, मेरे साथ जानेसे उनकी सेवामें त्रुटि पड़ेगी, इससे मैं न जाऊँगी पर आप मेरे सौभाग्यकी रक्षा करें। यहाँ उसीकी ओर इशारा है कि उन्होंने सौंपा था, मैं क्या उत्तर दूँगा। इसी प्रकार और भी कुछका मत है कि यहाँ पाणिग्रहणकी चर्चाके साथ इशारा उर्मिलाजी और सीताजीकी ओर करके कहते हैं कि *'उतरु ताहि'* अर्थात् जनकजीको या उर्मिलाजीको क्या उत्तर देंगे! इसपर गौड़जीने ठीक ही कहा है कि 'व्याख्या संगत है अवश्य, परन्तु पूर्व पदोंसे सम्बन्ध नहीं है।'

'प्रलाप' से तो यह कठिन शंका भी दूर हो जाती है। यदि इसे प्रलाप न लें तो रा० प्र० का समाधान किसी हदतक उत्तम जान पड़ता है।

पं० नारायणप्रसाद मिश्रजी भी लिखते हैं कि अयोध्याकाण्डमें जो *'तुलसी प्रभुहिं सिख देइ आयसु दीन्ह पुनि आसिष दई।'* कहा है, उससे सुमित्राजीका लक्ष्मणजीको हाथ पकड़कर उपदेश, आज्ञा, आशीर्वादादि दानपूर्वक श्रीरामचन्द्रजीकी सेवाके अर्थ समर्पण करना अथवा सौंपना स्पष्ट सिद्ध है। यहाँ *'प्रभुहिं'* शब्द सम्प्रदान अर्थमें प्रयुक्त हुआ है और उसका अर्थ है 'प्रभुके लिये, प्रभुके निमित्त, प्रभुके अर्थ' आदि। यद्यपि यह प्रसंग श्रीरामचन्द्रजीकी अनुपस्थिति-दशाका है तथापि सर्वान्तर्यामी होनेसे अपने हितकी, परोक्षमें हुई बातोंसे भी अपनेको आभारी मानते हुए वे उन्हीं बातोंको कृतज्ञतापूर्वक नरनाट्य विलापके समय प्रकट करते हैं।—*'करत सुरति सय बार हिए की।'* कविने *'गहि पानी'* का अर्थ छन्दमें उसी तरह गुप्त रखा है और श्रीरामविलापके प्रसंगमें स्पष्ट किया है, जिस प्रकार शृङ्गवेरपुर पहुँचकर गुह निषादराजको श्रीरामचन्द्रजीका हृदयसे लगा लेनेकी बात उस प्रसङ्गमें न कहकर वही बात भरतजीके प्रसंगमें देवताओंके मुखसे प्रकट करायी—*'यहि तो राम लाइ उर लीन्हा।'* समस्त रामचरितमानस व्यास-समास-रूपसे वर्णित है और इसीलिये कविने स्पष्ट कह दिया है कि *'जे गावहिं यह चरित सँभारे। ते यहि ताल चतुर रखवारे॥'*

बहु बिधि सोचत सोचबिमोचन। स्रवत सलिल राजिव दल लोचन॥ १७॥
उमा एक अखंड रघुराई। नर गति भगत कृपाल देखाई॥ १८॥

शब्दार्थ—**एक**=अकेला। **अखंड**=पूर्ण।

अर्थ—शोचके छुड़ानेवाले श्रीरघुनाथजी बहुत प्रकारसे सोच कर रहे हैं, उनके कमलदल-समान नेत्रोंसे जल (आँसू) गिर रहा है॥ १७॥ हे उमा! रघुराई श्रीरामचन्द्रजी एक (अद्वितीय) हैं, अखण्ड हैं; भक्तोंपर कृपा करनेवाले उन प्रभुने (प्राकृत) मनुष्योंकी दशा दिखायी है॥ १८॥

पु० रा० कु०—*'बहु बिधि सोचत·······।'* से प्रभुमें मायिकत्वका आरोप होता है, अतः इसके निवारणार्थ आगे कहा कि *'उमा एक·······'*। ☞ यह कविकी शैली है कि जहाँ प्रभुकी लीलामें अधिक माधुर्य

आ जाता है जिससे हृदयमें मोह उत्पन्न होनेका भय होता है, वहाँ तुरंत ही वे ऐश्वर्य प्रकट कर देते हैं। इसी भावसे यहाँ *'सोचत'* कहकर *'सोच बिमोचन'* पद दिया है। भाव कि जो दूसरोंके शोक-मोहादिको छुड़ानेवाला है, उसे स्वयं शोक कैसे सम्भव है?

नोट—१ *'एक अखंड'*—**'तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः'** (श्रुति)। एक भगवान्‌में मोह-शोककी क्या कथा? लक्ष्मणजी भगवान्‌से भिन्न तो नहीं हैं, साथ ही उनके जीवनका अन्त भी नहीं हो सकता है? लक्ष्मणजी अंश नहीं, प्रत्युत वही स्वयं हैं। **'पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥'** (ईश० शान्तिपाठ) पूर्णसे पूर्ण निकाला, निकला भी पूर्ण, बचा भी पूर्ण। इस प्रकार अखण्ड भगवान्‌का न नाश हो सकता है न संयोग और वियोग। अतः 'अखण्ड' और 'एक' परमात्मामें शोक-मोह कहाँ। यहाँ तो मनुजलीला दिखा रहे हैं। भक्तपर किस दरजेकी कृपालुता इस अभिनयमें है। विशेष भाव बाल और अयोध्यामें लिखे जा चुके हैं।

नोट—२ *'नर गति'*। भाव कि मनुष्य इसी प्रकार शोकमें प्रलाप करते हैं।

नोट—३ *'भगत कृपाल'* पदसे जनाया कि यह विलाप उनका भक्तोंपर उनकी असीम कृपा दर्शित करनेके लिये हुआ है। इससे भक्तको विश्वास होगा कि प्रभु उनके दुःखमें कैसे दुःखी हो जाते हैं। यह बात हनु० ना० १३ एवं गीतावलीमें खूब दिखायी है। मूर्च्छा छूटनेपर श्रीरामजीके प्रश्नपर यह लक्ष्मणजीका उत्तर है कि मैं तो इस वेदनाको किंचिन्मात्र ही जानता हूँ और भलीभाँति तो राघव ही जानते होंगे। कारण कि वेदना तो राघवको ही है, हम तो केवल घायल ही हैं, यथा—

'ईषन्मात्रमहं वेद्मि स्फुटं यो वेत्ति राघवः। वेदना राघवेन्द्रस्य केवलं व्रणिनो वयम्॥' (३८)

'हृदय घाउ मेरे पीर रघुबीरै। पाइ सजीवन जागि कहत यों प्रेम पुलकि बिसराय सरीरै॥'

'मोहि कहा बूझत पुनि पुनि जैसे पाठ अरथ चरचा कीरै। सोभा सुख छति लाहु भूप कहँ केवल कांति मोल हीरै॥

तुलसी सुनि सौमित्रि बचन सब धरि न सकत धीरौ-धीरै। उपमा रामलषनकी प्रीतिकी क्यों दीजै खीरै नीरै॥' (गी० लं० १५)

बं० पा०—कृपालुने भक्ति दिखायी कि जो मुझे भजते हैं, उनको मैं भी भजता हूँ।

वि० त्रि०—*'उमा अखंड .... देखाई'* इति। सरकारकी इस प्रकारकी विकलताके वर्णनसे उमाको फिर संदेहका उदय न हो, इसलिये शिवजी उनका सम्बोधन करके रामजीके ऐश्वर्य-भावका स्मरण दिखाते हैं, और इस प्रकारके भावप्रदर्शनका कारण कहते हैं। रघुराई तो अखण्ड हैं अर्थात् पूर्ण हैं, और पूर्णात्मस्वभावका त्यागसे योग नहीं होता, अर्थात् कोई वस्तु उससे पृथक् नहीं होती, क्या मेघनाद, क्या लक्ष्मण, क्या शक्ति-कोई उनके स्वरूपसे पृथक् नहीं है, वे एक हैं, देहादि-भेदसे शून्य हैं। यहाँ शोकका कारण ही नहीं है। (यथा—*'इहाँ सोक कर कारन नाहीं। रबि सनमुख तम कबहुँ कि जाहीं॥'*) फिर भी जो इतनी विकलता दिखायी पड़ती है, वह-नर भावका अभिनयमात्र है। उसे भी कृपालुने जगत्‌के कल्याणके लिये दिखाया कि भाईके प्रेमके सामने पितृप्रेम या स्त्रीप्रेमका दर्जा भी कम है। (यथा—*'जौं जनतेउँ बन बंधु बिछोहू। पिता बचन मनतेउँ नहिं ओहू॥ बरु अपजस सहतेउँ जग माहीं। नारि हानि बिसेष छति नाहीं॥'*) बुद्धिके ऊपर भी प्रेमका विजय दिखलाया, (यथा—*'प्रभु प्रलाप सुनि कान बिकल भये बानरनिकर'*) जिस भक्तमें यह भाव है कि *'गुरु पितु मातु न जानउँ काहू। कहउँ सुभाउ नाथ पतियाहू॥ धर्मनीति उपदेसिय ताही। कीरति भूति सुगति प्रिय जाही॥'* उसके लिये सरकारके सारे नियम, व्रत और सारी दृढ़ताके वही जाती-सी दिखायी पड़नेमें ही शोभा है।

नोट—४ *'बहु बिधि सोचत।'* इसमें वाल्मी० सर्ग १०१-१०२ और वाल्मी० ४९। ५—२३ तथा गीतावली आदि ग्रन्थोंमें, यहाँ लिखे हुएके अतिरिक्त जो अनेक प्रकारके शोकके वचन कहे हैं, वे सब आ गये। यथा—ऐसे इष्ट बन्धु, नित्य हमारे सेवक और आज्ञाकारी लक्ष्मण आज हमारे ही अनीति और अनाड़ीपनसे इस दशाको प्राप्त हुए हो, बहुमूल्य शय्यापर सोनेयोग्य आज पृथ्वीपर लेटे हो, हम सत्त्वहीन

हो गये। इसलिये सुग्रीव! तुम सेनासहित लौट जाओ, नहीं तो रावण तुम्हारा निरादर करेगा। अब विजय और स्त्रीकी चाह हमें नहीं है इत्यादि।

सो०—प्रभु प्रलाप सुनि कान बिकल भए बानर निकर।
आइ गएउ हनुमान जिमि करुना महँ बीररस॥ ६०॥

अर्थ—प्रभुका प्रलाप कानोंसे सुनकर वानरसमूह विकल हो गये। उसी समय हनुमान्‌जी ऐसे आ गये जैसे करुणामें वीररस आ गया हो॥ ६०॥

पु० रा० कु०—१ करुणाका स्थायी भाव शोक है, सो रामसमेत सभी शोकमें मग्न हैं। उसी समय हनुमान्‌जी आये। उनको देख सबके मनमें उत्साह हुआ जो वीररसका स्थायी भाव है। पर्वतसहित हनुमान्‌जी और वीररस उपमेय-उपमान हैं। २—इससे यह भी जनाया कि यहाँतक करुणरस कहा, आगे वीररस कहेंगे। *'मनहु करुनरस कटकई उतरी अवध बजाइ।'* (अ० ४६) देखिये।

नोट—१ सब वानर रोने लगे, शोक सबके हृदयमें समा गया, सबके मुख सूख रहे हैं, यह करुणारसका स्वरूप है। यथा—*'मुख सुखाहिं लोचन स्रवहिं सोक न हृदय समाइ। मनहु करुनरस कटकई उतरी अवध बजाइ॥'* (अ० ४६), *'बिकल'* से यह दशा जनायी। श्रीरामचन्द्रजीका सम्पूर्ण विलाप करुणरससे प्लावित है ही। उसमें वानरोंका विलाप भी मिलनेसे वह पूरा समाज करुणरसका स्वरूप हो गया। यहाँ 'उदाहरण अलंकार' है। हनुमान्‌जी और वीररस उपमेय-उपमान हैं। वाल्मी० रा० में यही दशा नागपाश होनेपर सबकी दिखायी है, यथा—**'सर्वे ते वानरश्रेष्ठाः ससुग्रीवमहाबलाः। परिवार्य महात्मानौ तस्थुः शोकपरिप्लुताः॥'** (यु० ४९। २)

नोट—२ हनुमान्‌जी अर्धरात्रिके बाद ही आ पहुँचे। यथा—**'अद्रिं रुद्रावतारः प्रलयसमुदितद्वादशार्कानुकारं द्रोणं दोष्णा दधानः कटकनिकटतामागतोऽप्यर्धरात्रे।'** (हनु० १३। ३१) अर्थात् प्रलयकालमें उदित हुए १२ सूर्योंका अनुकरण करनेवाले द्रोणपर्वतको भुजापर धारण किये हुए रुद्रावतार हनुमान्‌जी अर्द्धरात्रिमें कटकके निकट आये।

बं० पा०—इस दोहेभरमें प्रलाप-दशाकी प्रधानता है, इसीसे इस दोहेभरमें कई विपर्यय अर्थ आ पड़े हैं। प्रलापमें इन बातोंका विचार न करना चाहिये। जैसे किसीका अतिप्रिय मरणासन्न हो और वह पुरुष बेखबर (बेसुध) होकर रोवे, तब यदि दूसरा कोई कहे कि यह क्या असत्य, अशुद्ध विलाप करता है तो कहनेवालेकी ही अपंडिताई (मूर्खता) पायी जाती है। वैसे ही यहाँ कोई ईश्वरता कहे तो वह ठीक नहीं है क्योंकि इस प्रकरणमें कविने उपक्रम और उपसंहार दोनोंमें माधुर्यको मुख्य कहा। प्रलापदशा मनुषयत्वमें ही घटती है, ईश्वरत्वमें नहीं। प्रलाप, यथा—*'बिनु समुझे कछु बकि उठै कहिए ताहि प्रलाप। देह घटै मनमें बढ़ै बिरह व्याधि संताप॥'* (भाषाभूषण)

प० प० प्र०—प्रलापकी बातें यदि सुसंगत हों तो प्रलाप शब्दकी वैयर्थकता ही सिद्ध होगी। *प्रलाप*=**'अनर्थकं वचः।'** (अमरकोश), **'प्रयोजनशून्यस्य उन्मत्तादिवचनस्य।'** (अमरव्याख्यासुधा) यह प्रलाप शब्द देकर कविने यहाँके कुछ वचनोंकी अयथार्थता ही सूचित की है। और पण्डितों, पाठकोंको सचेत कर दिया है कि इन वचनोंकी असंगतिका निरास करनेका प्रयत्न करनेसे कुछ लाभ न होगा।

नं० प० का मत है कि *'बिलाप'* पाठ जो कोदोरामजीकी प्रतिमें, है वही गोस्वामीजीकी हस्तलिखित चौथी प्रतिका पाठ है जो सं० १९५२ में छपा। वे कहते हैं कि *'प्रलाप'* का अर्थ है 'ऊँचे स्वरसे बोलना' जैसा—*'एहि बिधि करत प्रलाप कलापा। आए अवध भरे परितापा॥'* (२। ८६) और *'सुनेउ न श्रवन अलीक प्रलापी।'* इन उद्धरणोंसे सिद्ध है कि *'प्रलाप'* का अर्थ यदि 'ऊँचे स्वरसे रोना' लें तो भी रोनेकी व्याकुलतामें बेसुध चित्त रहना स्वाभाविक है, जिससे उक्त बातोंमें हेर-फेर हो जाना ठीक ही है। अन्यथा करुणाकी पूर्णता ही नहीं समझी जायगी। अत्यन्त करुणा एवं विरहमें प्रलापकथन स्वाभाविक है (सि० ति०)।

वे० भू०—महर्षि जैमिनिने शङ्का-समाधान करनेका एक नियम लिखा है कि—**'संदिग्धं तु वाक्यशेषात्'**

(मीमांसादर्शन) प्रकरणके अन्तिम वाक्यसे सन्देहकी निवृत्ति करनी चाहिये। इसीको दार्शनिकोंने स्पष्ट करनेके लिये नियम बनाया कि—**'उपक्रमोपसंहारावभ्यासोऽपूर्वता फलम्। अर्थवादोपपत्ती च लिंगं तात्पर्यनिर्णये॥'** (अर्थमीमांसा) इस प्रकार उपक्रमोपसंहारादि नियमोंसे विचारनेपर लक्ष्मणमूर्च्छाजन्य रामप्रलाप-सम्बन्धी शंकाओंका समाधान हो जाता है। यह तो मानस-प्रेमियोंसे अविदित है ही नहीं कि—*'नटकृत कपट चरित रघुराया।'*, *'जस काछिय तस चाहिय नाचा।'*, *'कहु करहु जस प्राकृत राजा।'* *'प्रलाप'* के उपक्रम-(आरम्भ-) में कहा गया कि—*'उहाँ राम लछिमनहिं निहारी। बोले बचन मनुज अनुसारी॥'* उपसंहार (अन्त) में कहा गया कि—*'उमा अखंड एक रघुराई। नरगति भगत कृपालु देखाई॥'* अपूर्वता तो स्पष्ट ही है कि प्रभु होकर प्रलाप करना।

फल-(प्रलापके परिणाम-) में कहा गया है कि—*'स्रवत सलिल राजिवदल लोचन।'*, *'बिकल भये बानर निकर।'* *'उठहु न सुनि मम बच बिकलाई।'*, *'उठि किन मोहि सिखावहु भाई।'* इत्यादि, मृतकसे सुनने और उठनेको कहना ही प्रभुके लिये अर्थवाद है।

प्रभु यहाँ प्रलाप कर रहे हैं। कारण नरगतिका प्रदर्शन करना है। वियोगजन्य या किसी प्रकारके दुःखमें भी मनुष्य जब विलाप करने लगता है तो शोक-वेग बढ़ते-बढ़ते वही विलाप-रोदन प्रलापके रूपमें परिणत हो जाता है। उस समय तो मुँहसे यथार्थ-अयथार्थ सब तरहकी बातें निकलने लगती हैं। वही दशा यहाँ है।

☞*'बोले बचन मनुज अनुसारी'* उपक्रम और *'नर गति भगत कृपालु देखाई'* उपसंहार है।

हरषि राम भेंटेउ हनुमाना। अति कृतज्ञ प्रभु परम सुजाना॥ १॥

अर्थ—श्रीरामचन्द्रजी प्रसन्न होकर हनुमान्‌जीसे गले लगकर मिले क्योंकि प्रभु परम सुजान और अत्यन्त कृतज्ञ हैं॥ १॥

नोट—*'अति कृतज्ञ'* का भाव कि कृतज्ञ तो और भी हुए हैं। पर ये सबसे अधिक हैं। इनके समान कृतज्ञ पुरुष दूसरा नहीं है—*'नीति प्रीति परमारथ स्वारथ। कोउ न राम सम जान जथारथ।'* कोई किंचित् भी उपकार क्या एक प्रणाममात्र करता है तो उसका इतना उपकार मानते हैं कि सिर नीचा कर लेते हैं कि हम इसका बदला दे नहीं सकते, यथा—*'सकृत प्रनाम प्रनत जस बरनत कहत सुनत फिर गाउ'*—(वि०) *'सनमुख होइ न सकत मन मोरा।'* पुनः अतिकृतज्ञ, यथा—*'ज्यों सब भाँति कुदेव कुठाकुर सेये बपु बचन हिये हूँ। त्यों न राम सुकृतज्ञ जो सकुचत सकृत प्रनाम किये हूँ॥'* (विनय), **'कदाचिदुपकारेण कृतेनैकेन तुष्यति। न स्मरत्यपकाराणां शतमप्यात्मवत्तया॥'** (वाल्मी० अ० १। ११)

पु० रा० कु० *'अति कृतज्ञ प्रभु·······'* इति। भाव कि—(क) कृतज्ञ भी हो, पर सामर्थ्य न हो तो किस कामका। अतः कृतज्ञ कहकर *'प्रभु'* कहा। वा, (ख) वे तो स्वयं समर्थ हैं। पर भक्त जो कुछ भी उनकी कृपासे करता है उसके लिये भी वे कृतज्ञ ही होते हैं। (ग) *'परम सुजान'* हैं, यथा—*'जान सिरोमनि कोसलराऊ।'* (१। २८), नहीं तो कृतज्ञ न होते। कृतज्ञ हैं अतएव 'भेंटे'। हृदयसे लगाना कृतज्ञता सूचित करता है। यथा—*'पवनतनय के चरित सुहाए। जामवंत रघुपतिहि सुनाए। सुनत कृपानिधि मन अति भाए। पुनि हनुमान हरषि हिय लाए॥'* (सुं० ३०), *'कपि उठाइ प्रभु हृदय लगावा॥ कर गहि परम निकट बैठावा॥'* (सुं० ३३)

☞प्रायः जहाँ-तहाँ प्रणाम करनेपर ही 'भेंटना', हृदय लगाना, पाया जाता है, यथा—*'परे सकल कपि चरनन्हि जाई।'* (सुं० २८। ८), *'·········प्रीतिसहित सब भेंटे·······'* (सुं० २९); *'चरन परेउ प्रेमाकुल'* (सुं० ३२);*'·········कपि उठाइ प्रभु हृदय लगावा।'* (सुं० ३३। ४); *'अस कहि परेउ चरन अकुलाई।'* (कि० ३। ५), *'तब रघुपति उठाइ उर लावा।'* (कि० ३। ६)

पर यहाँ लौटनेपर हनुमान्‌जीका प्रणाम नहीं कहा गया। इसका कारण यह है कि प्रभुने उन्हें प्रणाम करनेका अवसर ही न दिया। तुरंत उनको छातीसे लगा लिया—यह कृतज्ञताकी सीमा है।—सीता-शोधके बाद हनुमान्‌जीने लौटनेपर प्रणाम किया है। कारण कि वहाँ उस समयतक यह नहीं बताया गया कि इन्होंने

कार्य किया है और यहाँ कार्य प्रत्यक्ष देखा है। ☞ अति कृतज्ञताका स्वरूप हनु० ना० एवं वाल्मी० उ० ४० में खूब दिखाया है, यथा—'**एकैकस्योपकारस्य प्राणान् दास्यामि ते कपे। प्रत्यक्षं क्रियमाणस्य शेषस्य ऋणिनो वयम्॥ अङ्गेष्वेव जरां यातु यत्त्वयोपकृतं कपे। भवान् प्रत्युपकारार्थमापत्सु लभतां पदम्॥**' (हनु० १३। ३६)

अर्थात् हे वानर! प्रत्यक्ष तुम्हारे किये हुए एक-एक उपकारके अर्थ मैं प्राण-दान कर दूँ और बाकी तुम्हारे उपकार जो मुझपर हैं उनके हम ऋणी ही हैं (भाव कि हम प्रत्युपकार नहीं कर सकते)। आपके उपकार हमारे शरीरमें ही जीर्ण हो जायँ और आपके प्रत्युपकारके लिये आपत्तियोंमें स्थान न पावें (भाव कि तुमपर कभी आपत्ति ही न पड़े कि हम प्रत्युपकार करें)। पुनः मिलान कीजिये—'**मारुतिं प्राह वत्साद्य त्वत्प्रसादान्महाकपे। निरामयं प्रपश्यामि लक्ष्मणं भ्रातरं मम॥**' (अ० रा० ७। ३९) अर्थात् हे मारुति! तुम्हारी कृपासे आज मैं अपने भ्राताको नीरोग देख रहा हूँ, कृतज्ञता कैसी! देखिये तो, प्रथम भेंटे तब ओषधि सेवन करायी गयी।

वि० त्रि०—अभी न तो ओषधि ली गयी, न कोई उपाय हुआ, न लक्ष्मणजी सचेत हुए, पर हनुमान्‌जीने जो कहा था, उसे कर दिखाया, अतः सुजान प्रभु हर्षित होकर मिले। संसारमें तो यही नियम देखनेमें आता है कि प्रभु लोग किसीके कृतज्ञ नहीं होते। '**राजामित्रं केन दृष्टं श्रुतं वा।**' यदि उनमें कृतज्ञता या गुणग्राहकता देखी जाय तो बड़ी बात है। किसीके प्राण दे देनेपर भी प्रभु लोगोंको यही धारणा होती है कि उसने अपना कर्तव्य-पालन किया, यहाँ भाईके बिना स्वास्थ्य लाभ किये ही, उसे बिना गले लगाये ही हनुमान्‌जीसे हर्षित होकर मिलना प्रभुकी अति कृतज्ञता और सुजानताका द्योतक है।

तुरत बैद तब कीन्हि उपाई। उठि बैठे लछिमन हरषाई॥ २॥
हृदय लाइ प्रभु भेंटेउ भ्राता। हरषे सकल भालु कपि ब्राता॥ ३॥

शब्दार्थ—'**ब्राता**' (व्रात)=समुदाय, दल।

अर्थ—तब (हनुमान्‌जीके आते ही) तुरंत वैद्यने उपाय किया जिससे लक्ष्मणजी सद्यः प्रसन्न होकर उठ बैठे॥ २॥ प्रभु भाईको हृदयसे लगाकर मिले। सब कपिदल एवं भालुओंका समूह हर्षित हो गया॥ ३॥

नोट—१ '***तुरत बैद तब कीन्हि उपाई***' इति। (क) उपायमें मत-भेद है। कोई ऋषि ओषधि पिसवाकर लेपन करना कहते हैं और कोई बूटीका नासमात्र देना लिखते हैं*। अतएव मानस-कविने यही पद देकर सब मतोंकी रक्षा की है। (ख) '***तुरत***' क्योंकि प्रभु बहुत व्याकुल हैं। यहाँ 'तीसरा सम' अलंकार है।

नोट—२ '***उठि बैठे लछिमन हरषाई***' इति। '***हरषाई***' का भाव कि (क) जैसे कोई सुखकी नींद सोकर प्रसन्न उठता है, वैसे उठे मानो कोई कष्ट था ही नहीं। (ग) ये पूर्वके वीररसमें पगे हुए उठे, मानो अभी उससे युद्ध कर ही रहे थे, उसे भागता देख कह रहे हैं कि खड़ा रह, खड़ा रह, कहाँ जाता है? मैं तेरा अभी वध करता हूँ। यथा—'**ततः सुप्तोत्थित इव बुद्ध्वा प्रोवाच लक्ष्मणः॥ तिष्ठ तिष्ठ क्व गन्तासि हन्मीदानीं दशानन। इति ब्रुवन्तमालोक्य मूर्ध्न्यवघ्राय राघवः॥**' (३७-३८) हनु० ना० के '**लङ्कापतेः कुपितकाल इवोपतस्थौ।**' (१३। ३७) और अ० रा० के दोनों भावोंका समावेश इसमें है।

* 'आलेपितो हनुमता गिरिजौषधीभिर्मूर्च्छां विहाय सशरं धनुराददानः। रामारविन्दतरणिर्धरणीधरात्मा लंकापतेः कुपितकाल इवोपतस्थौ॥' (हनु० १३। ३७) 'ततः संक्षोदयित्वातामोषधीं वानरोत्तमः। लक्ष्मणस्य ददौ नस्तः सुषेणः सुमहाद्युतेः॥ सशल्यः स समाघ्राय लक्ष्मणः परवीरहा। विशल्यो विरुजः शीघ्रमुदतिष्ठन्महीतलात्॥' (वाल्मी० १०१। ४३-४४)' अर्थात् हनुमान्‌जीद्वारा पर्वतकी ओषधियोंका लेपन किये जानेसे मूर्च्छाका परित्याग करके धनुष-बाण धारण किये हुए रामजीके मुखकमलके लिये सूर्यवत् शेषावतार लक्ष्मणजी रावणके क्रोधितकालके समान उठ बैठे।—(हनु० १३)। वानरोत्तम महाद्युतिमान् सुषेणने उस ओषधिका चूर्ण बनाकर लक्ष्मणजीकी नासिकामें लगाया (सुँघाया); ओषधि सूँघते ही वे नीरोग हो उठ खड़े हुए।

हनुमन्नाटकमें द्रोणाचल लेने जानेके पूर्व ही सुषेण लङ्कामें पहुँचा दिये गये थे। अतः मानसका मत वाल्मी० के अनुसार जान पड़ता है।

नोट—३ (क) *'हृदय लाइ प्रभु भेंटेउ भ्राता',* यह परम प्रेमाकुलता जनाता है, यथा—*'लिए सनेह बिकल उर लाई। गै मनि मनहुँ फनिक फिरि पाई॥'* (अ० ४४) वाल्मी० १०१। ४६ में लिखा है कि प्रभुने यह कहा कि 'लक्ष्मण! यहाँ आओ' और उनको प्रेमसे लपटा लिया, उनके नेत्र प्रेमाश्रुसे भर गये—'**एह्येहीत्यब्रवीद् रामो लक्ष्मणं परवीरहा। सस्वजे गाढमालिङ्ग्य बाष्पपर्याकुलेक्षणः॥**'

नोट—४ *'हरषे सकुल भालु……'* *'हरषे'* का भाव कि—(क) सब प्रसन्न होकर बड़े प्रेमसे साधु-साधु कह उनकी प्रशंसा करने लगे। यथा—'**तमुत्थितं तु हरयो भूतलात्प्रेक्ष्य लक्ष्मणम्। साधु साध्विति सुप्रीता लक्ष्मणं प्रत्यपूजयन्॥**' (वाल्मी० १०१। ४५) (ख) अब रणसागरके पार हुए इसमें सन्देह नहीं, यथा—*'मुदित भालु कपि कटक लह्यो जनु समर पयोनिधि पार॥'* (गी० ६। ९)

कपि पुनि बैद तहाँ पहुँचावा। जेहि बिधि तबहिं ताहि लै आवा॥ ४॥

अर्थ—तदनन्तर हनुमान्‌जीने वैद्यको, जिस प्रकार पूर्व उन्हें ले आये थे, उसी प्रकार वहीं पहुँचा दिया॥ ४॥

नोट—१ (क) *'तहाँ पहुँचावा'* इति। *'तहाँ'* से 'जहाँ' से ले आये थे', इस पदका अध्याहार कर लेना होगा। *'तहाँ'* अर्थात् लङ्कामें, यथा—*'लंका रह को पठई लेना'* (ख)*'जेहि बिधि'* अर्थात् छोटा रूप धरकर, भवनसमेत पहुँचाया। पूर्व कहा कि लघुरूप धारण किया, अब यहाँ *'कपि'* शब्द देकर जनाया कि छोटे वानररूपसे गये थे। इसीसे यहाँ शब्द भी छोटा दिया। नोट—२ ☞ *'जामवंत कह बैद सुषेना।……धरि लघुरूप गयउ हनुमंता।'* (५४। ९-१०) उपक्रम और *'कपि पुनि बैद……'* उपसंहार है।

'सुषेण'—सुषेणका प्रकरण वाल्मी० १०१ में आता है। परन्तु यह सुषेण भगवान्‌की सेनाका एक वानर है जो वैद्य-विद्यामें दक्ष है। यह कहींसे लाया नहीं गया और न पहुँचाया जाता है। सर्गके आरम्भमें श्रीरामचन्द्रजीका लक्ष्मणजीको मूर्छित देखकर सुषेणसे सीधे विषादयुक्त वार्तालाप करना बिलकुल स्वाभाविक है '**विसृजन्नेव बाणौघान् सुषेणमिदमब्रवीत्॥**' (२) जान पड़ता है कि सुषेण वानरसेनाका वैद्य है। प्रभुके विलापपर वह आश्वासन देता है और समझाता है कि लक्ष्मणजीके शरीरके लक्षण मृत्युके नहीं हैं, हृदयकी गति मौजूद है और श्वास भी चल रही है, केवल मूर्छा है। इतना कहकर पास ही उपस्थित हनुमान्‌जीसे सुषेण बोले कि आपसे वीर जाम्बवान्‌ने जिस ओषधिकी पूर्वमें चर्चा की थी, शीघ्र जाकर पर्वतके दक्षिणसे लाइये। यहाँ न पर्वतका उल्लेख है न उसका पता बताया गया है, क्योंकि सर्ग ७४ श्लोक २९—३४ में ये सब बातें विस्तारसे वर्णित हैं। पर्वतशिखरको लाकर हनुमान्‌जी सुषेणको हरिपुङ्गव कहकर सम्बोधन करते हैं और कवि स्वयं सुषेणको वानरश्रेष्ठ कहता है। फिर मेघनादवध होनेपर भी रामचन्द्रजीने समीपस्थित सुषेणसे कहा है कि जो घायल हैं सबको जिला दो। उन्होंने तुरंत परमौषधि सुँघाकर सबको अच्छा कर दिया। यह कथा वाल्मी० ९२ (२०—२३) में है। इन बातोंसे तनिक भी सन्देह नहीं रह जाता कि वाल्मीकिके सुषेण वानरी सेनाके वैद्य हैं और श्रीरामचन्द्रजीके पक्षके वानर हैं जो सेनाके साथ बराबर मौजूद रहते हैं। परन्तु हनुमन्नाटक, गीतावली—*('आन्यो सदनसहित सोवत ही जौलौं पलक परै न')* और मानसके सुषेण लङ्कासे सुषुप्त-अवस्थामें उठा लाये जाते हैं। ये रावणके वैद्य हैं और काम हो जानेपर फिर पहुँचा दिये जाते हैं। '**नीत्वा लंकां सुषेण**……'—(हनु० १३। २०)। इनपर जाम्बवन्त और रामचन्द्रजीका पूर्ण विश्वास है कि शत्रुके वैद्य होकर भी ये यथार्थ ही कहेंगे। सच्चे वैद्योंका यह शास्त्रप्रसिद्ध लक्षण है कि वे शत्रु हो या मित्र—दोनोंको समान दृष्टिसे देखते हैं। सुषेण प्रसिद्ध वैद्यशिरोमणि हुए हैं। सुषेणसंहिता इन्हींकी बनायी कही जाती है।

लक्ष्मण-शक्ति-प्रसंग समाप्त हुआ।

'कुम्भकर्ण-बल-पौरुष-संहार-प्रकरण'

यह बृत्तांत दसानन सुनेऊ। अति बिषाद पुनि पुनि सिर धुनेऊ॥ ५॥
ब्याकुल कुंभकरन पहिं आवा। बिबिध जतन कर ताहि जगावा॥ ६॥

शब्दार्थ—**वृत्तान्त**=बीती हुई बातका विवरण, समाचार, हाल।

अर्थ—जब यह समाचार रावणने सुना तब अत्यन्त विषाद (खेद, दुःख) से बारम्बार अपना सिर पीटने लगा॥ ५॥ व्याकुल (दशामें) कुम्भकर्णके पास आया और अनेक उपाय करके उसको जगाया॥ ६॥

नोट—१ (क) ***'दसानन सुनेऊ'*** यथा—पूर्व—***'उहाँ दूत एक मरम जनावा'*** तथा यहाँ गुप्तचरोंद्वारा सुना। ***'अति बिषाद पुनि पुनि सिर धुनेऊ'*** इति। ***'अति बिषाद'*** का स्वरूप और भाव यथा—***'सुनि भये बिकल सकल नर नारी। बेलिबिटप जिमि देखि दवारी॥ जो जहँ सुनइ धुनइ सिरु सोई। बड़ बिषाद नहिं धीरज होई॥ मुख सुखाहिं लोचन स्रवहिं सोक न हृदय समाइ॥'*** (अ० ४६)

यह कहकर जनाया कि रावण जीवनसे निराश होने लगा, उसका धैर्य जाता रहा, मुँह सूख गया। कुम्भकर्णने आगे कहा ही है—***'काहे तव मुख रहेउ सुखाई'*** इत्यादि। पुनः (ख) भाव कि पुत्र और आधे कटकके नाशसे विषाद हुआ—***'प्रथमहि तासु तनय कपि मारा। सो सुनि रावन भएउ दुखारा॥………'***। और, अब शत्रुके जीवित हो जानेसे ***'अति विषाद'*** हुआ। (ग) विषाद होनेका कारण भी है कि हमारे दलके इतने मरे कोई न जीवित हुआ, उधर एक लक्ष्मण मरे सो भी जी उठे और वह भी हमारे ही वैद्यद्वारा! हम जानते तो सुषेण वहाँ जाने ही न पाता। और अब तो वहाँ कोई मरेगा ही नहीं। (घ) जैसा अधिक भरोसा होता है वैसा ही अधिक दुःख। रावणको मेघनादके बलका एवं कालनेमिकी मायाका बड़ा भरोसा था, अतः ***'अति बिषाद'*** हुआ।

नोट—२ ***'ब्याकुल………आवा'***। अति विषाद होनेसे अबतक धैर्य न हुआ, कुम्भकर्णके पास आनेतक व्याकुलता बनी हुई है। इससे यह भी जनाया कि उसे पूर्ण विश्वास है कि कुम्भकर्ण हमारी व्याकुलताकी एकमात्र ओषधि है, उसके बलपर पूर्ण भरोसा है—***'कुंभकरन अस बंधु मम'***। पुनः यथा—**'भविष्यति न मे शोकः कुम्भकर्णे विबोधिते॥'** (वाल्मी० ६०। २०), वाल्मी० ६० (५-१२) में लिखा है कि रावण बड़ा दुःखी होकर राक्षसोंसे कहने लगा कि—हमारा तप व्यर्थ हो गया, हम साधारण मनुष्यसे हार गये। ब्रह्माका वचन सत्य जान पड़ता है कि मनुष्यसे तुमको भय है। जान पड़ता है कि अनरण्यका शाप ही फल फलनेको रामजन्म हुआ है, एवं वेदवतीने जानकीरूपसे हमारे नाशके लिये जन्म लिया है और उमा, नन्दीश्वर, वरुणकी कन्या आदिके शाप ही आ उपस्थित हुए हैं। अब कुम्भकर्णको जगाना उचित है। गीतावलीसे भी ***'अति बिषाद'*** का यही भाव समर्थित होता है—***'तुलसीदास सुधि पाइ निसाचर भये मनहुँ बिनु प्रान'***।

☞ वाल्मी०, अ० रा०, हनु०—इत्यादि कई ग्रन्थोंमें रावणका कुम्भकर्णके पास स्वयं जाना नहीं देखा जाता। मानसमें स्वयं जाना कहकर रावणकी अत्यन्त व्याकुलता और कुम्भकर्णपर अत्यन्त विश्वास प्रकट किया है।

नोट—३ ***'बिबिध जतन करि ताहि जगावा'*** इति। ***'जगावा'*** से जनाया कि सो रहा था ***'बिबिध जतन करि'*** का भाव कि—(क) उसकी निद्रा पूरी नहीं हुई थी, वह हालहीमें सोया था।* (ख) देवमाया वा शापके कारण सोतेमें वह मृतकवत् रहता था, इसीसे साधारणतया वह जाग न सकता था। उसके लिये विविध यत्न करने पड़े, जिनका उल्लेख वाल्मी० ६० में २५ श्लोकोंमें है।

वाल्मी० ६१ में लिखा है कि ब्रह्माने उसे शाप दिया कि तुम आजसे मृतकके समान होकर बराबर सोते रहो। यथा—**'तस्मात्त्वमद्यप्रभृति मृतकल्पः शयिष्यसे॥'** (२३) रावणकी प्रार्थनापर ब्रह्माने जागने-सोनेका समय नियत कर दिया कि छः महीने सोकर एक दिन जागेगा फिर सो जायगा। मानसमें देवमायासे मोहित हो छः मास नींदका वर माँगना वर्णित है।

प्र० स्वामीजी कहते हैं कि श्रीएकनाथजीकृत मराठी भावार्थरामायणमें रावणका कुम्भकर्णके पास जाकर जगाना बड़ी रोचकता, हास्यरस तथा विस्तारपूर्वक लिखा है।

---

* वाल्मी० १२। २७—३४ में उल्लेख है कि जब वानर-सेना समुद्रके उत्तरतटपर थी और विभीषणजी रावणको उपदेश कर रहे थे उस दिन वह जागा हुआ था।

जागा निसिचर देखिअ कैसा। मानहु कालु देह धरि बैसा॥ ७॥
कुंभकरन बूझा कहु भाई। काहे तव मुख रहेउ सुखाई॥ ८॥

अर्थ—निशाचर कुम्भकर्ण जागा। वह कैसा दीखता है मानो काल ही निशिचर-शरीर धारण करके बैठा है (अर्थात् बड़ा विकराल भयंकर रूप था)॥ ७॥ कुम्भकर्णने पूछा—हे भाई कहो, तुम्हारा मुख क्यों सूख रहा है?॥ ८॥

नोट—१ *'जागा मानहु काल'* इति। मिलान कीजिये—**'रूपमुत्तिष्ठतस्तस्य कुम्भकर्णस्य तद्बभौ। युगान्ते सर्वभूतानि कालस्येव दिधक्षतः॥ तस्य दीप्ताग्निसदृशे विद्युत्सदृशवर्चसी। ददृशाते महानेत्रे दीप्ताविव महाग्रहौ॥'** (वाल्मी० ६०। ६०-६१) अर्थात् उठते हुए कुम्भकर्णका रूप युगान्तमें सब प्राणियोंको भस्म करते हुए कालका-सा दिखायी दिया। अग्निकी दीप्तिके समान प्रकाशित बिजलीके समान तेजस्वी उसके नेत्र ग्रहोंके समान दिखायी देते थे।

नोट—२ *'काहे तव मुख रहेउ सुखाई'।* इति। पूर्व कह आये हैं कि *'ब्याकुल कुंभकरन पहिं आवा'* वह व्याकुलता अभीतक मुँहपर छायी है। इसीसे मुख सूख गये हैं। नोट—३ यहाँ 'अनुक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा' है। क्योंकि काल किसीके सामने शरीर धारण करके नहीं बैठता।

कथा कही सब तेहिं अभिमानी। जेहि प्रकार सीता हरि आनी॥ ९ ॥
तात कपिन्ह सब निसिचर मारे। महा महा जोधा संघारे॥ १०॥

अर्थ—अभिमानी रावणने अभिमानपूर्वक उससे सब कथा, जिस तरह सीताजीको हर लाया था, कही (फिर कहा)॥ ९॥ हे तात! वानरोंने सब राक्षस मार डाले, बड़े विकट-विकट योद्धाओंका संहार कर डाला॥ १०॥

नोट—१ *'कथा कही सब तेहि अभिमानी'* इति। (क) *'सब'* अर्थात् विस्तारपूर्वक कही। शूर्पणखासे राम-लक्ष्मणका परिहास और उसकी नाक-कान काटे जानेसे लेकर जिस प्रकार सीताहरण किया वह सब कथा पूरी कही। शेष कथाएँ हनुमान्‌जीका आना, सेतुबंध आदि संक्षेपसे कहीं। (ख) *'अभिमानी'* का भाव कि यदि मैं सीताहरण न करता तो मेरा मान कैसे रहता? मैंने अपनी बहिनका बदला लिया। (पं०)। नोट—२ *'तात कपिन्ह सब निसिचर मारे।'* इति। (क) रावण कुम्भकर्णको प्यारसे पुत्रवत् सम्बोधित करता है, कारण कि इससे अपना दुष्ट स्वार्थ सधना है। खलोंकी यह रीति ही है—*'नवनि नीच कै अति दुखदाई।'* (प० प० प्र०) (ख) ये वचन दीनताके हैं। यह *'काहे तव मुख रहेउ सुखाई'* का उत्तर है। इस कथनका भाव यह है कि मुख्य-मुख्य सब निशिचर मारे गये और वानरोंका संहार न हुआ, इससे हम भयभीत हैं, भयसे हमारी यह दशा हो रही है इससे हमारी रक्षा करो, सबको आज ही वध करके हमें सुखी करो। यथा—**'ये राक्षसा मुख्यतमा हतास्ते वानरैर्युधि'''''''' ॥ तदेतद्भयमुत्पन्नं त्रायस्वेह महाबल। नाशय त्वमिमानद्य तदर्थं बोधितो भवान्॥'** (वाल्मी० ६२। १६-१७) नोट—३ *'महा महा जोधा'* कहा, क्योंकि धूम्राक्ष-हनुमान्-युद्ध पूरे सर्ग ५२ में वर्णित है, मायावी वज्रदंत-अङ्गद-युद्ध ५३-५४ दो सर्गोंमें है और प्रहस्त-वानरोंका युद्ध ५८-५९ दो सर्गोंमें है।

दुर्मुख सुररिपु मनुज अहारी। भट अतिकाय अकंपन भारी॥ ११॥
अपर महोदर आदिक बीरा। परे समर महि सब रनधीरा॥ १२॥

शब्दार्थ—**अपर**=और, दूसरे। **परे**=गिरे, मारे गये।

अर्थ—दुर्मुख, देवशत्रु (देवान्तक), मनुष्यभक्षक (नरान्तक), भारी योद्धा अतिकाय और अकंपन, और भी महोदर आदि रणधीर वीर सभी रणभूमिमें मारे गये॥ ११-१२॥

नोट—१ *'महा महा जोधा संघारे'* जो कहा था उन्हींका अब नाम बताया है। ये सब बड़े वीर

थे। वाल्मीकीयमें इनके युद्ध विस्तृतरूपसे वर्णित हैं। अ० रा० में 'देवशत्रु' और 'नरान्तक' नाम जो आये हैं वे ही यहाँ *'सुररिपु'* और *'मनुजअहारी'* हैं। यथा—'**अतिकायः प्रहस्तश्च महानादमहोदरौ॥ देवशत्रुर्निकुम्भश्च देवान्तकनरान्तकौ। अपरे बलिनः सर्वे ययुर्युद्धाय वानरैः॥''''''''रामेण निहताः केचित्सुग्रीवेण तथापरे। हनूमता चाङ्गदेन लक्ष्मणेन महात्मना॥''''''''यूथपैर्वानराणां ते निहताः सर्वराक्षसाः॥**' (अ० रा० ५। ७९—८५) ये प्रथम युद्धहीमें काम आये। अकम्पन बड़ा मायावी था—*'अनिप अकंपन अरु अतिकाया। बिचलित सेन कीन्ह इन्ह माया॥'* अकम्पन-हनुमान्-युद्ध वाल्मी० ५५-५६ में है। महोदर-सुग्रीव-युद्ध वाल्मी० ९८ में है। प्रहस्तके मन्त्री नरान्तकको द्विविदने मारा (वाल्मी० ५८)।

नोट—२ (क) पूर्व कहा कि वानरोंने सेनाओं—योद्धाओंको मारा। फिर कुछ नाम गिनाये। अन्तमें कहा कि *'परे समर महि सब रनधीरा'* इससे जो श्रीराम-लक्ष्मणद्वारा मरे उनकी गणना हो गयी। (ख) *'समर महि परे'* का भाव कि वे रणधीर थे, पैर पीछे हटानेवाले न थे, इसीसे इन्होंने उनसे सम्मुख युद्ध किया; पर सब मारे गये। इन सबोंके नाम गिनानेमें, अपना दुखड़ा रोनेमें रावणका आन्तरिक अभिप्राय कुम्भकर्णको युद्धके लिये उत्तेजित करनेका था—इस तरह यहाँ 'गूढ़ोत्तर अलङ्कार' है।

पं०—*'परे समर महि'* में यह भी भाव है कि इतने राक्षस मरे कि उठाना असम्भव था, वे जहाँ-के-तहाँ पड़े ही रह गये।

दो०—सुनि दसकंधर बचन तब कुंभकरन बिलखान।
जगदंबा हरि आनि अब सठ चाहत कल्यान॥ ६१॥

अर्थ—तब रावणके वचन सुनकर कुम्भकर्ण बहुत दुःखी हुआ और बोला कि 'शठ! जगज्जननी श्रीसीताजीको हर लाकर अब भी तू कल्याणकी इच्छा करता है!' (भाव कि अब कल्याण नहीं है।)॥ ६१॥

पं०—बिलखानेका कारण—१ महोदरादिका वध। २ राक्षसकुलका नाश देखकर भी बोध न हुआ। ३ जिनकी अनुकूलतासे कल्याण होता—(**सर्वश्रेयस्करीं सीतां नतोऽहं रामवल्लभाम्**)—उन्हींके प्रतिकूल है अतएव कुलमात्रका नाश अनिवार्य है। (इसीसे शठ कहा।)

(नारदजीने ज्ञान दिया था उसको स्मरण करके भी बिलखना सम्भव है यह समझकर कि होनहार प्रबल है। यथा—*'सुनहु भरत भावी प्रबल बिलखि कहेउ मुनिनाथ।'* ☞ मन्दोदरी, विभीषणादि सबने रामका जगत्पति होना कहा और इसने 'सीताजी' का जगज्जननी होना भी बता दिया।)

प० प० प्र०—*'जगदंबा''''''''*' ये वचन कुम्भकर्णने बिलखनेमें मनमें ही कहा है, यह *'चाहत'* शब्दसे स्पष्ट है अन्यथा *'चाहसि'* पद आवश्यक होता। पूर्व डाँटा था, अतः *'सठ'* शब्दका प्रयोग किया, ऐसा कहना भ्रमजनित कल्पनामात्र है।

भल न कीन्ह तैं निसिचरनाहा। अब मोहि आइ जगाएहि काहा॥ १॥
अजहूँ तात त्यागि अभिमाना। भजहु राम होइहि कल्याना॥ २॥

अर्थ—हे निशिचरराज! तुमने अच्छा न किया। अब आकर मुझे क्यों जगाया है?॥ १॥ हे तात! अब भी अभिमान छोड़कर श्रीरामजीका भजन करो तो भी कल्याण होगा॥ २॥

नोट—१ अब क्यों जगाया? इसका भाव कि सीताहरणके पूर्व जगाता और सलाह पूछता तो मैं रोक देता, कुलका नाश बच जाता। ये तुम्हारे सब कर्म अयोग्य हुए हैं। यथा—'**यदा तु रामस्य सलक्ष्मणस्य प्रसह्य सीता खलु सा इहाहृता। सकृत्समीक्ष्यैव सुनिश्चितं तदा भजेत चित्तं यमुनेव यामुनम्॥ सर्वमेतन्महाराज कृतमप्रतिमं तव। विधीयेत सहास्माभिरादावेवास्य कर्मणः॥**' (वाल्मी० १२। २८-२९) अर्थात् जब राम-लक्ष्मणके आश्रमसे सीता तुम हरकर लाये थे, तभी हम सबसे पूछकर इसका विचार करते, जैसे यमुना पहलेसे ही अपने हदका सेवन करती हैं। हे महाराज! ये सब कर्म तुम्हारे अयोग्य हुए हैं, इस दुष्कर्मको करनेसे पूर्व ही आपको हमसे सलाह करना था।